पीअर रिव्यूड छमाही हिंदी ई-जर्नल
A SIX MONTHLY PEER REVIEWED HINDI E-JOURNAL
जनवरी-जून 2020

कंचनजंघा

भाषा, साहित्य एवं संस्कृति का साझा उपक्रम

KANCHANJANGHA

Confluence of languages,literature and culture

प्रवेशांक

संपादक : प्रदीप त्रिपाठी

कंचनजंघा

भाषा, साहित्य एवं संस्कृति का साझा उपक्रम

प्रवेशांक

वर्ष 01, अंक 01, जनवरी-जून, 2020

संपादक

प्रदीप त्रिपाठी

पत्राचार का पता

सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
नीयर इंडियन ओवरसीज़ बैंक काज़ीरोड
सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक पिन - 737102

स्थायी पता

ग्राम/पोस्ट - महेशपुर, जिला-आज़मगढ़
उत्तर प्रदेश, पिन कोड – 276137

संपर्क- 6294913900 ईमेल-kanchanjanghapatrika@gmail.com

परामर्श मंडल

राजेश जोशी
संपर्क- 9424579277
rajesh.isliye@gmail.com

तेजेन्द्र शर्मा
संपर्क-00-44-7400313433
tejinders@live.com

शिवमूर्ति
संपर्क- 9450178673
shivmurti.shabad@gmail.com

श्रीप्रकाश मिश्र
संपर्क- 9451142647
spm1950@rediffmail.com

अनामिका
संपर्क-9810737469
poetryanamika@gmail.com

ओम जी उपाध्याय
संपर्क- 9452735221
omjee25@gmail.com

देवराज
संपर्क- 7599045113
dr4devraj@gmail.com

निर्मला पुतुल
संपर्क-9060654643
bajateshabd@gmail.com

हरिश्चंद्र मिश्र
संपर्क-9434375497
profharishchandramishra@gmail.com

किरन हजारिका
संपर्क- 9859973647
hazarikakiran68@gmail.com

ए. एस. चंदेल
संपर्क- 9452735221
nehushgmzu07@gmail.com

अनिल राय
संपर्क- 9415080500
anilraigkpu@gmail.com

संपादक मंडल

प्रो. भरत प्रसाद
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग
संपर्क- 9774125265
deshdhar@gmail.com

प्रो. संजय कुमार
मिजोरम विश्वविद्यालय, आइज़ोल, मिजोरम
संपर्क- 9774517465
sanjaykumarmzu@gmail.com

प्रो. जय कौशल
असम विश्वविद्यालय (दीफू परिसर) असम
संपर्क- 9612091397
jaikaushalaudc@gmail.com

प्रो. ब्रज रतन जोशी
लेखक, संपा. (मधुमती), अनुवादक एवं जल-अध्येता
संपर्क: 9414020840
drjoshibr@gmail.com

डॉ. अखिलेश शंखधर
मणिपुर विश्वविद्यालय, मणिपुर
संपर्क- 9612354531
shankhdharak@gmail.com

डॉ. मिलनरानी जमातिया
त्रिपुरा विश्वविद्यालय, त्रिपुरा
संपर्क- 8974009245
milanrani08@gmail.com

डॉ. रूपेश कुमार सिंह
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
संपर्क- 9404549085
dr.roopeshsingh@gmail.com

डॉ. चुकी भूटिया
सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक, सिक्किम
संपर्क- 9064224852
cbhutia01@cus.ac.in

डॉ. गोविंद प्रसाद वर्मा
महात्मा गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, बिहार
संपर्क- 9064224852
govindvillage@gmail.com

डॉ. अनुज कुमार
नागालैंड विश्वविद्यालय, कोहिमा, नागालैंड
संपर्क- 7903367410
anujkumarg@gmail.com

डॉ. जमुना बीनी तादर
राजीव गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, ईटानगर, (अ. प्र)
संपर्क- 9436044327
jamunabini@gmail.com

कुँवर रवींद्र
कवि एवं कला संपादक
संपर्क- 9425522569
kunwar.ravindra@gmail.com

डॉ. पंकज कुमार सिंह
अध्येता- गांधी चिंतन एवं तकनीकी विशेषज्ञ
संपर्क- 9823696685
gandhikhadi@gmail.com

डॉ. राहुल
अध्येता- जेंडर स्टडीज़ एवं मीडिया
संपर्क- 8669037004
rahul.or.nishant@gmail.com

डॉ. कुमार गौरव
झारखंड केंद्रीय विश्वविद्यालय, झारखंड
संपर्क- 8805408656
kumar.mishra00@gmail.com

कुमार मंगलम
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
संपर्क-8840649310
mangalam1509@gmail.com

आशीष कुमार
संपादक, सृजन समय, वर्धा
संपर्क- 9420037240
baajve@gmail.com

डॉ.अखिल मिश्र
दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर
संपर्क- 9718550437
akhilmishra777@gmail.com

इस अंक में

संपादकीय

स्मरण

फणीश्वरनाथ रेणु : संभवंति युगे-युगे... शिवमूर्ति

लेख

सिक्किम की लोक संस्कृति पर कंचनजंघा का प्रभाव छुकी लेप्चा
रंगभेद, नस्ल और अश्वेत समस्या गोपाल प्रधान
मणिपुर में हिंदी पत्रकारिता का अभियान देवराज
हिंदी बाल साहित्य का स्वातंत्र्योत्तर स्वरूप: बहस और विमर्श दिविक रमेश
असमिया लोक साहित्य में राम अनुशब्द
हिंदी एवं नागा जनजाति की भाषाओं का अंतर्संबंध थुन्बई
परिस्थिति और निर्मिति : मोहन से महात्मा राजीव रंजन गिरि
त्रिपुरा की लोक कथाओं में नारी: कॉकबरक भाषा के संदर्भ में डॉ. नुकफाँटी जमातिया
लेखकनामा अनिल यादव
अरुणाचल की हिंदी हरीश कुमार शर्मा
भारतीय नेपाली कथा-साहित्य में कोलकाता महानगर का प्रतिनिधित्व डॉ. कविता लामा
थर्ड जेंडर के संघर्ष का प्रतिबिंब : पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा बी आकाश राव
'राजा हरिश्चंद्र': भारतीय सिनेमा का मंगलारंभ डॉ. सुरभि विप्लव

कविताएं

श्रीप्रकाश मिश्र की दो कविताएं
बाबुषा कोहली की पाँच कविताएं
सुशीला टाकभौरे की चार कविताएं
निशांत की तीन कविताएं
विहाग वैभव की पाँच कविताएं

अनूदित रचनाएँ (कविता, लेख एवं नाटक)

अमर बानियाँ 'लोहोरो' की चार कविताएं- (नेपाली से हिंदी) — अनुवादक: सुवास दीपक

पंकज गोबिन्द मेधी की तीन कविताएं- (असमिया से हिंदी) — अनुवादक: दिनकर कुमार

खासी लोक कथाओं में नारी शोषण (खासी से हिंदी) — अनुवादक : डॉ. जीन एस. ड्खार

मयाङ देश की भाभी (नाटक: मणिपुरी से हिंदी) — अनुवादक: एलाङ्बम विजयलक्ष्मी

कहानियाँ

मेरा घर कहाँ है? — सोनी पाण्डेय

इच्छा मृत्यु — जमुना बीनी

त्रासदी — महेंद्र भीष्म

पूर्वोत्तर का पौराणिक क्षितिज

तानी (निशी आदिवासी किंवदंती) — जोराम यालाम नाबाम

लोक कथाएँ

नागालैंड की लोक कथाएँ — चंद्रशेखर चौबे

मिज़ोरम की लोक कथाएँ — प्रो. संजय कुमार एवं डेविड के. अजयु

पुस्तक समीक्षा

जितेन्द्र श्रीवास्तव- जीवन का प्रमेय गढ़ते हुए — मनोज पाण्डेय

सामाजिक व्यवस्था पर चोट करती कहानियाँ — ऋचा द्विवेदी

लौटने की चाह में बचे रहने की उम्मीद — राहुल

धरोहर

पूर्वोत्तर भारत के विविध रंग (छाया चित्र) — कुमार गौरव मिश्र

संपादकीय

'कंचनजंघा' का प्रवेशांक आपके समक्ष प्रस्तुत है। इसके गुण-दोषों का विवेचन, उपादेयता अथवा निःसारता का निर्णय तो सहृदय पाठक ही करेंगे। सिक्किम में हिंदी पत्रकारिता के इतिहास को देखें तो हमें एकाध हिंदी समाचार-पत्र तो अवश्य मिल जाएंगे, लेकिन साहित्यिक पत्रिकाओं की संख्या फिलहाल शून्य है। इसी घोर निराशा और असंतोष की परिधि पर 'कंचनजंघा' की संकल्पना ने साकार रूप लेना शुरू किया, इसे आप उम्मीद की एक नींव कह सकते हैं। कंचनजंघा से सिक्किम प्रांत का अटूट रिश्ता है। ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से यहाँ की लोक-संस्कृति पर कंचनजंघा का विशेष प्रभाव है। पृष्ठ प्रेषण से बचते हुए हम आपसे इस अंक में संकलित छुकी लेप्चा का लेख 'सिक्किम की लोक संस्कृति पर कंचनजंघा का प्रभाव' और कंचनजंघा पर केंद्रित श्रीप्रकाश मिश्र की कविताओं का अवलोकन करने हेतु अनुरोध करते हैं।

पूर्वोत्तर भारत की भाषा, साहित्य एवं संस्कृति को वैश्विक पटल पर साझा करना इस उपक्रम का मुख्य उद्देश्य है। हम जानते हैं कि धर्म, दर्शन, भाषा, साहित्य, संस्कृति, कला एवं पर्यटन आदि की दृष्टि से पूर्वोत्तर भारत की विशिष्ट पहचान है। इस अंक में विषय एवं विधागत वैविध्यता के साथ अधिकतम सामग्री पूर्वोत्तर भारत पर केंद्रित रखी गई है। आगामी अंकों में भी हमारा प्रयत्न होगा कि सृजनात्मक लेखन पर विशेष जोर देते हुए हम इसे बरकरार रख सकें। दूसरी भाषाओं की अनूदित रचनाओं मसलन कविता, लेख एवं नाटक आदि के हिंदी अनुवाद को भी इस अंक में विशेष महत्त्व दिया गया है।

पत्रिका के संपादन के क्रम में हमने महसूस किया कि वास्तव में पत्रकारिता बहुत ही चुनौतीपूर्ण दायित्व है, इसका निर्वहन निश्चित रूप से समवेत प्रयास से ही संभव है। वैश्विक स्तर पर हिंदी भाषा एवं साहित्य की स्थिति को यह उपक्रम समग्र रूप से रेखांकित करने का प्रयत्न करेगा, ऐसा विश्वास है। पूर्वोत्तर भारत के युवा रचनाकारों की रचनात्मकता को प्रोत्साहित करने हेतु 'कंचनजंघा' विशेष रूप से प्रतिबद्ध है। अध्ययन-अध्यापन के माध्यमों में हो रहे अद्यतन बदलाव एवं डिजिटल दुनिया जैसी संकल्पना के विस्तार को दृष्टिगत रखते हुए 'कंचनजंघा' को ई-संस्करण का रूप दिया गया है। इस जर्नल के माध्यम से पूर्वोत्तर भारत की साहित्यिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों से आपको रू-ब-रू करवाने का प्रयास निरंतर जारी रहेगा।

निकट भविष्य में हम 'कंचनजंघा' के माध्यम से समाज भाषा विज्ञान को दृष्टिगत रखते हुए पूर्वोत्तर भारत की समृद्ध एवं लुप्त हो रही भाषाओं, ऐतिहासिक एवं पौराणिक तथ्यों, लोकगीतों, लोककथाओं, लोकनाट्यों, सुभाषितों आदि को भी अनुवाद के माध्यम से आपके समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयत्न करेंगे।

पत्रिका की यह कोशिश होगी कि इसके प्रत्येक अंक में उन विधाओं को तरजीह दी जाय, जो अन्य पत्र-पत्रिकाओं की परिधि से अब तक बाहर हैं। हमारे लिए व्यक्ति या लेखक महत्त्वपूर्ण न होकर 'रचना' की अहमियत सर्वोपरि होगी। इस अंक में 'धरोहर' शीर्षक से एक कॉलम निर्धारित किया गया है। इसके अंतर्गत विशेष रूप से पूर्वोत्तर भारत की संस्कृतिक विरासत, नृत्य, पेंटिंग्स, कलाकृतियों आदि के छाया चित्रों को सम्मिलित करने का प्रयास किया जाएगा।

पूर्वोत्तर भारत में सक्रिय रंगकर्मियों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, पत्रकारों एवं भाषा-शिक्षण से संबद्ध अध्यापकों की रचनाशीलता का कंचनजंघा हिंदी ई-जर्नल में स्वागत है। निकट भविष्य में इनकी गतिविधियों एवं साक्षात्कार को इस जर्नल में प्रमुखता से प्रकाशित करने की योजना है। पूर्वोत्तर भारत की भाषाओं के साथ सामंजस्य एवं उनके प्रति सम्मान भाव रखते हुए 'कंचनजंघा' का उद्देश्य हिंदी भाषा से अधिकाधिक लोगों को जोड़ने एवं उनके अंदर भाषा के प्रति रुचि पैदा करना रहेगा।

फणीश्वरनाथ रेणु एवं महात्मा गांधी को इस अंक में विशेष रूप से स्मरण किया गया है, इस पर केंद्रित शिवमूर्ति एवं राजीव रंजन गिरि का लेख उल्लेखनीय है। इस अंक में संकलित गोपाल प्रधान का लेख 'रंगभेद, नस्ल एवं अश्वेत समस्या' अत्यंत पठनीय एवं दुर्लभ सामग्री है। इसके अलावा मणिपुरी हिंदी पत्रकारिता, बाल-विमर्श, लोक-साहित्य, किंवदंती, छाया चित्र, कविता, कहानी, उपन्यास अंश एवं पुस्तक समीक्षा जैसी कई महत्त्वपूर्ण सामग्री इस अंक में संकलित है। उम्मीद है, सहृदय पाठक इसे पसंद करेंगे।

विगत माह साहित्य एवं सिनेमा जगत के कई महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर कृष्ण बलदेव वैद, गिरिराज किशोर, श्रवण कुमार गोस्वामी, सुषमा बेदी, शशिभूषण द्विवेदी, नंदकिशोर नवल, इरफ़ान ख़ान एवं ऋषि कपूर आदि हमारे बीच नहीं रहे, उनकी स्मृतियाँ हमारे ज़ेहन में शेष हैं। कंचनजंघा परिवार की ओर से उनके प्रति विनम्र श्रद्धांजलि।

परामर्श एवं संपादक मंडल के समवेत प्रयास से 'कंचनजंघा' का प्रथम अंक हम आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं। उम्मीद है, पूर्वोत्तर भारत में हिंदी पत्र-पत्रिकाओं के खालीपन को भरने में यह उपक्रम एक कड़ी के रूप में सहायक सिद्ध होगा।

***

फणीश्वरनाथ रेणु : संभवंति युगे-युगे...

शिवमूर्ति
संपर्क : 9450178673

रेणु के साहित्य से परिचित हुआ तो लगा ख़ज़ाना मिल गया।

लिखने का कीड़ा बारह-तेरह वर्ष की उम्र में कुलबुलाने लगा था। वह दौर 'कहानी', 'नई कहानियां' 'कहानीकार', 'सारिका' एवं 'धर्मयुग' जैसी पत्रिकाओं का था, जिसमें छपने वाली लगभग सभी कहानियां शहरी मध्यवर्गीय जीवन की होती थीं। उस जीवन से मैं सर्वथा अपरिचित था। जिस गँवई जीवन से मैं परिचित था, उसकी कहानियां नहीं मिलती थीं। यह तो जब प्रेमचंद के साहित्य से परिचित हुआ तब जाना कि हमारे दु:ख और अभाव की दुनिया, खेती-किसानी, गाय-गोरू भी कहानी के विषय हो सकते हैं। फिर जल्दी ही रेणु से परिचित हुआ तो इस जीवन को प्रस्तुत करने की अधुनातन शैली और सलीके से भी परिचित हुआ।

आप जितने लोगों को पढ़ते हैं, उतनी तरह के लेखन-कौशल से परिचित होते हैं। 'जैक लण्डन' को पढ़ा तो जाना कि 'सूक्ष्म निरीक्षण' लेखन में कैसा कमाल करता है। वे एक नवजात पिल्ले का अपने आस-पास की सर्वथा अपरिचित दुनिया को जानने-समझने और उससे तादात्म्य बिठाने का ऐसा वर्णन करते हैं कि उस पिल्ले को वाणी मिल जाय तो वह खुद भी ऐसा चाक्षुष वर्णन न कर सके।

शेक्सपियर को पढ़ा तो जाना कि संक्षिप्तता का गुण कैसे एक विस्तृत घटनाक्रम को पूरी नाटकीयता के साथ सत्तर-पचहत्तर पेज में समाहित कर सकता है। शेक्सपियर का एक संवाद बीसों साल से मन को आह्लादित करता आ रहा है। 'आथेलो' नाटक में डेस्डेमोना आथेलो के साथ गायब हो जाती है। डेस्डेमोना के पिता का एक परिचित उसे यह सूचना देते हुए कहता है कि जितनी जल्दी हो सके अपनी बेटी को उस मूर के चंगुल से छुड़ा लाओ वरना वह बदमाश तुम्हें नाना बना कर छोड़ेगा।

गोर्की को पढ़ा तो पता चला कि भावनाएं कैसे समर्थ शब्दों में बंधकर पारदर्शी और चमकदार हो उठती हैं। 'वे तीन' उपन्यास में किशोर इल्या अपनी किशोरी मित्र वेरा के साथ एकांत में खड़ा है। गोर्की लिखते हैं- वेरा की सुन्दरता को एकटक हक्का-बक्का खड़ा इल्या ऐसे देख रहा था जैसे शहद से भरी नाद को कोई भालू देखता है।

ये उन लेखकों के उदाहरण हैं, जिन्होंने अपने शब्द सामर्थ्य से अपने भाव संसार को 'व्यक्त' करके उसे उत्कर्ष तक पहुंचाया लेकिन रेणु ऐसे लेखक हैं, जिनके द्वारा 'अव्यक्त' छोड़ा गया भाव संसार 'व्यक्त' से भी ज्यादा मुखर होकर पाठक को चमत्कृत करता है। रेणु के पास वह कौशल है कि वे बिंदु मात्र प्रेम के एहसास को विस्तारित करके पाठक को समुद्र संतरण का सुख दे दें। बिंदु को समुद्र बना दें और समुद्र की तरह पूरी जिंदगी को आप्लावित किए प्रेम को एक बिंदु में अँटा दें।

पहली कोटि का उदाहरण 'मैला आंचल' से- कालीचरन और मंगला के बीच आकर्षण की जो डोर है उसे कायदे से प्रेम भी कैसे कहें। वे दोनों भी दावा नहीं कर सकते कि उन्हें प्रेम हो गया है। ज़बान से कभी कहा भी नहीं। न एक दूसरे से, न अपने आप से। उंगली भी नहीं छुई एक दूसरे की। कालीचरन अपने पहलवान गुरु के आदेश का पालन करते हुए सदैव औरत से पांच हाथ दूर ही रहा, एक अपवाद के अलावा, जब मंगला बीमार पड़ी। लेखक भी इस 'राग' को शब्द नहीं देता। 'अव्यक्त' छोड़ देता है। लेकिन राग अनुराग की यह कथा लंबी यात्रा करती है और सारे पाठक जान जाते हैं कि दोनों के बीच अगाध प्रेम पैदा हो चुका है। वे पृष्ठ-दर-पृष्ठ इस प्रेम-सागर में संतरण करते हैं और चाहते हैं कि यह यात्रा कभी खत्म न हो।

रेणु की इस सिद्धि का दूसरा उदाहरण उनकी कहानी 'रसप्रिया' है। मिरदंगिया और रमपतिया की दुखांतिकी। जब रमपतिया बारहवें वर्ष में प्रवेश कर रही थी तो दोनों के बीच आकर्षण का जादू पैदा हुआ जो आठ वर्ष तक परवान चढ़ता रहा। फिर जो बिछुड़े तो पंद्रह वर्ष के लंबे अंतराल के बाद मिले। मिले भी कहाँ? मिलते-मिलते रह गए। मिलना ही नहीं चाहा। कतरा कर निकल गए। ऐसा नहीं कि उनके बीच का प्रेम समाप्त हो गया। यह तो उनकी सांसों में बसा था। पर उन्हें बोलना नहीं आता था। रेणु ने तेइस साल लंबी इस प्रेमकथा को चंद पंक्तियों में समाहित कर दिया। उक्त दोनों प्रसंग गूंगे प्रेम के आख्यान हैं। इनके पात्रों को बोलना नहीं आता। रेणु ही हैं जो इस 'अव्यक्त' को 'व्यक्त' करने का सामर्थ्य रखते हैं।

यद्यपि रेणु के बचपन में जमीदारों और रजवाड़ों का सामाजिक और राजनीतिक जीवन में बहुत दख़ल था पर रेणु ने आमजनों, तलछट के स्त्री-पुरुषों को अपनी रचनाओं का मुख्य पात्र बनाया। रेणु की दुनिया 'लाल पान की बेगम' की बिरजू की माँ, 'आजाद परिंदे' के हरबोलवा और सुदर्शन, 'रसप्रिया' की रमपतिया, मोहना और मिरदंगिया, 'पंचलैट' की मुनरी और गोधना, 'एक आदिम रात्रि की महक' के करमा, 'नैना जोगिन' की रतनी, 'संवदिया' के हरगोविन, 'मैला आँचल' के बावनदास और बालदेव और 'परती परिकथा' के लुत्तो और मलारी जैसे पात्रों से आबाद होती है।

रेणु भरसक पात्रों की जाति बताने से बचते हैं। वे प्रायः ऐसे पात्रों का सृजन करते हैं, जो एक समान सामाजिक हैसियत वाले बड़े समूह का प्रतिनिधित्व कर सकें।

'परती परिकथा' एक अलग पायदान की रचना है, जिसमें ऐसी स्थितियों या पात्रों का सृजन किया गया है जिनसे प्रगतिशील मूल्यों को स्थापित करने की लेखक की आकांक्षा का पता चलता है। जैसे पीताम्बर झा द्वारा अपना तख़ल्लुस 'मकबूल' रखना, सवर्ण लड़के सुवंश का दलित लड़की मलारी से विवाह करना या जित्तन और ताजमनी का लिव-इन रिलेशन में रहना। बीसवीं सदी के मध्य में जब यह उपन्यास लिखा गया, उस समय गाँव की पृष्ठभूमि में ऐसे कथानक शामिल करना प्रगतिशील दृष्टि का ही परिचायक है।

माधुर्य का जो गुण बिहार की बोलियों में है, वही रेणु के गद्य में भी है। रेणु माधुर्य के लेखक हैं। इसे 'कोमलकांत पदावली' की श्रेणी में भी रख सकते हैं। एकाध अपवाद छोड़ कर वे मारपीट, शोषण, दमन, कत्ल, फौज़दारी या गरीबी का चित्रण करने से बचे हैं। अपवाद के रूप में संथालों के साथ हुए संघर्ष को रख सकते हैं लेकिन इस संघर्ष में भी गाँव की सभी जातियाँ एक तरफ और संथाल दूसरी तरफ हैं। इन बूढ़ी, बच्ची संथालिनों के साथ पाट के खेत में दिनदहाड़े जो सामूहिक बलात्कार होता है, उसके बारे में रेणु इतना ही कहते हैं कि संथालिनें दोहरे दर्द से कराह रही हैं। निःसंदेह उतना ही कहकर वे बहुतों से ज्यादा कह जाते हैं पर लगता है कि कुछ और कहा जाता तो ज्यादा संतोष मिलता। यह भी सोचता हूँ कि एक ही गाँव में बसने वाली विभिन्न ऊँची नीची कही जाने वाली जातियों के बीच व्याप्त छल-छद्म, शोषण और संघर्ष का चित्रण रेणु करते तो कैसे करते?

बिहार के अन्य लेखकों की कहानियों में सत्तर के दशक से ही गाँव में सुलगते जाति संघर्ष की झलक मिलने लगी थी। इन्हीं तनावों के परिणाम स्वरूप रेणु के बचपन में ही त्रिवेणी संघ का गठन हुआ था। इससे स्पष्ट होता है कि जातीय संघर्ष की आग बिहार के गाँवों में बहुत पहले से मौजूद थी लेकिन इसकी मुखर अभिव्यक्ति रेणु के साहित्य में नहीं मिलती। शायद इसका कारण यह हो कि इतने तलछट में उतरना रेणु की प्रकृति में न रहा हो।

भाषा के संकट पर रेणु द्वारा सुनायी गयी एक घटना के बारे में कहीं पढ़ा था। बिहार में साधुओं का एक ऐसा संप्रदाय है जो बातचीत में हिंसक शब्दों- काटना-मारना, खून-खराबा आदि का प्रयोग नहीं करते। वे तरकारी को 'काटते' नहीं, अमनिया करते हैं। 'खून' को 'रंगरस' कहते हैं। एक बार उस संप्रदाय के गुरुजी अपने चेलों के साथ कहीं जा रहे थे तो रास्ते में डाकुओं ने लूट लिया और गुरुजी को चाकू मार दिया। चेले मदद के लिए बगल के गाँव में गए तो भाषा का संकट उपस्थित हो गया। 'गुरुजी को काट दिया' या 'गुरुजी खून से लथपथ हैं', ऐसा कह नहीं सकते थे। उन्होंने कहा- डाकू गुरुजी को 'अमनिया' कर दिए। गुरुजी 'रंगरस' से सराबोर हैं। ग्रामीणों को पूरी बात समझने में समय लग गया। तब तक गुरुजी के प्राण निकल गए।

रेणु खुद भी संत लेखक थे। काटने-मारने या खून-खराबे का वर्णन करना उन्हें अच्छा नहीं लगता होगा। वास्तव में रेणु प्रेम, प्यार, अनुराग और आसक्ति के लेखक हैं। इन्हीं आवेगों से उनका अंतःकरण संतृप्त रहता होगा। यही उनकी प्रकृत लीला भूमि है।

संक्षिप्तता (Brevity) के साथ सुस्पष्टता (Vividness) का जो क्रॉफ्ट रेणु ने विकसित किया, वह न रेणु के पहले किसी हिंदी रचनाकार में मिलता है, न उनके बाद के। अन्य भाषाओं के बारे में मैं नहीं जानता। इसलिए मैं कहता हूं कि रेणु जैसे रचनाकार कभी-कभी पैदा होते हैं- संभवंति युगे युगे...

मुझे कभी-कभी दु:ख होता है कि रेणु यहां क्यों पैदा हुए? किसी पश्चिमी देश में पैदा होते तो उन्हें उनका पूरा प्राप्य मिलता। पूरे विश्व साहित्य में सूर्य की तरह चमकते।

(**परिचय :** शिवमूर्ति प्रेमचंद एवं रेणु की परंपरा के चर्चित कथाकार हैं, वर्तमान में लखनऊ, उ. प्र. में रहते हैं।)

सिक्किम की लोक संस्कृति पर कंचनजंघा का प्रभाव

छुकी लेप्चा
संपर्क- 9434191930

भारत में सिक्किम का विलय 22वें राज्य के रूप में 16 मई, 1975 को हुआ था। विश्व की तीसरी सबसे ऊँची पर्वतमाला जिसकी ऊँचाई 4,586 मी. है, यह भारत का दूसरा छोटा राज्य सिक्किम कंचनजंघा की तराई में बसा है। प्राकृतिक सौन्दर्य, प्राकृतिक संसाधनों से भरपूर इस राज्य में जैविक विविधता भी देखने को मिलती है। राज्य का राजकीय पशु- 'रेड पांडा' (Red Panda) है। राजकीय पक्षी- ब्लड फिजेंट (Blood Pheasant), राजकीय वृक्ष रोडोडेंड्रन (Rhododendron) (खेमू, गुरास) एवं राजकीय फूल नोबल आर्किड (Noble Orchid) है, जिसकी 400 के करीब प्रजातियाँ हैं। यह जानकार आपको आश्चर्य होगा कि यहाँ तितलियों की 600 के करीब प्रजातियाँ पाई जाती हैं।

हिंदी साहित्य के भक्तिकाल को स्वर्ण युग कहा जाता है, क्योंकि उस समय ऐसे महान संतो का जन्म हुआ जिन्होंने भक्ति का मार्ग दिखाकर निराशा में डूबे जनमानस को नई चेतना प्रदान की थी। उसी में से एक हैं निर्गुण काव्य धारा के कवि-विचारक संत कबीर। उन्होंने कहा था- "कस्तूरी कुंडली बसे, मृग ढूँढ़े वन माहि।/ ऐसे घटि-घटि राम हैं, दुनिया देखे नाहि।।" जिसका अर्थ है - जिस तरह कस्तूरी मृग अपने ही नाभि में छिपे हुए सुगंधित 'कस्तूरी' पदार्थ को नहीं पहचान पाता और उसकी सुगंध से प्रभावित और मतवाला बनकर वन-वन उसे ढूँढ़ता-भटकता है, ठीक मनुष्यों की भी स्थिति यही है, वह अपने अंदर छिपे 'राम' को बाहरी चीजों, जगहों में ढूँढ़ता फिरता है। उसका 'राम' तो उसी के अंदर अच्छाई के रूप में छिपा है। यहाँ कस्तूरी मृग का ज़िक्र इसलिए किया, क्योंकि इस प्रजाति का मृग सिक्किम के वनों में पाया जाता है, न केवल सिक्किम में बल्कि भूटान, नेपाल में भी इनकी प्रजातियाँ मौजूद रही हैं। किंतु अब इसकी प्रजाति लुप्त प्रायः हो गई है। वन संपदा से बाहुल्य सिक्किम राज्य में इस मृग के विषय में जानना भी जरूरी है। यह कस्तूरी पदार्थ बहुमूल्य है, इससे कई प्रकार की दवाईयाँ बनायी जाती हैं। इसका परफ़्यूम भी बनता है, जिसकी कीमत करोड़ों में है। इससे संबंधित पाठ 'दोहे' कक्षा दसवीं के 'स्पर्श भाग - 2' में संकलित है। वन्य जीवों एवं इसके संरक्षण हेतु ऐसे पाठों को पढ़ना आवश्यक जान पड़ता है।

कंचनजंघा का स्थानीय नाम भी प्रचलित है। लेप्चा भाषा में इसे 'कोंगछैन कोंग ल्हो' (कौंगछेन च्यू) कहा जाता है। भूटिया भाषा में 'खांचे छै जेगा' और लिम्बू भाषा में यह 'फोकतांगलूगंमा' नाम से प्रचलित है। भूटिया साहित्य अनुसार, मान्यता है कि इसकी पाँच श्रेणियों में अलग-अलग वस्तुएँ रखी गई

हैं, एक पहाड़ में नमक (छय) दूसरे में सोना-चाँदी (शअरथांग नी) तीसरे पहाड़ में बहुमूल्य रत्नों की संपत्ति (छौ दै थअंग नौर) चौथे में (जिपी के छैन) हथियार एवं रेशमी वस्त्र एवं इसके पाँचवे पहाड़ में औषधि (डू मैन) इत्यादि संरक्षित है। गुरुरिम्पोछे बुद्ध के अवतार माने जाते हैं, उन्होंने सिक्किम को बेयुल डेमोजोंग (फसलों का बगीचा) की उपमा दी है, कंचनजंघा का खास नाम 'खांचे छै जेंगा' है, यह मूल रूप से तिब्बती भाषा से आया है। इसकी लिपि 'थूमीसामबोटा' है, जो तिब्बत से संबद्ध है। बौद्ध धर्म के अनुयायियों की संख्या यहाँ सबसे अधिक है। बौद्ध धर्म की तीनो शाखाएँ - हीनयान, महायान, वज्रयान यहाँ देखने को मिलती हैं। हीनयान शाखा के अंतर्गत, वे तपस्वी होते हैं जो तपरूपी यान में चलते हैं, स्वयं साधना करते हैं और खुद ही उसका फल पाते हैं, यह संप्रदाय थोड़ा व्यक्तिगत है। महायान में वे तपस्वी आते हैं जो तप रूपी यान से चलकर स्वयं का कल्याण तो करते ही हैं, साथ ही जीव जंतुओं के लिए भी कल्याण की कामना करते हैं। वज्रयान शाखा - ऐसा संप्रदाय है जो तांत्रिक विद्या से जुड़ा है। वैसे कोई भी संप्रदाय हो सबका लक्ष्य एक है - तप करके स्वयं का कल्याण करते हुए 'मोक्ष' या 'निर्वाण' प्राप्त करना। यहाँ बौद्ध विहार (गुम्पाओं) की संख्या 67 है। गौतम बुद्ध का एक प्रवचन है- 'इस संसार में दुख है, दुख का कारण हमारी इच्छाएँ हैं, जब तक हम अपनी इच्छाओं पर नियंत्रण नहीं पा लेते, तब तक हमें सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती, अनन्त इच्छाएँ ही दुःख का कारण है।' प्रसिद्ध उपन्यासकार, कहानीकार मुंशी प्रेमचंद की कहनी 'आत्माराम' भी इसी बात की ओर इशारा करती है। आत्माराम सुनार के पास एक तोता है, जिससे उसका आत्मीय लगाव है। एक दिन तोता पिंजड़े से निकलकर गाँव के जंगल के एक पेड़ की डाली पर बैठ जाता है। कुबड़ा आत्माराम जो शारीरिक रूप से कमजोर है, किंतु उस तोता के पीछे बड़ी फुर्ती से भागता है। मायारूपी हमारी इच्छाएँ तोताराम के अनुसार नचाती हैं, तोता जहाँ-जहाँ उड़ता, मायारूपी इच्छाएँ भी उसी ओर मुड़ जाती है। गौतम बुद्ध ने मध्यम पथ की जो बात कही है, सचमुच! आज भी प्रासांगिक है - व्यक्ति को जीवन में ज्यादा ऊँचा भी नहीं उठना चाहिए और न ही नीचे गिरना चाहिए। हर परिस्थिति में व्यक्ति को सामान्य बने रहना चाहिए न सुख में ज्यादा इतराये और न दुःख में ज्यादा विचलित हों। हमारा जीवन पथ मध्यम पथ की ओर होना चाहिए।

जिस प्रकार हम अपने शरीर को पोषण देने के लिए संतुलित आहार ग्रहण करते हैं, ठीक उसी तरह मानसिक शक्ति को बढ़ाने के लिए योगासन, ध्यान करना चाहिए। अच्छा साहित्य मानसिक शक्ति को बढ़ाता है। यहाँ पर धर्म अच्छी भूमिका निभाता है, इसलिए कहा गया है कि धर्म से जुड़ना भी आवश्यक है, धर्म से जुड़ने का मतलब अंधविश्वास को बढ़ावा देना नहीं है। धर्म से जुड़ने का अर्थ है अपने विचारों में शुद्धता लाना, अपने संस्कारों में समय-समय पर सुधार लाना। आरोह भाग - २ बारहवीं कक्षा के पाठ्यपुस्तक में संकलित धर्मवीर भारती का निबन्ध - 'काले मेघा पानी दे' द्वारा लेखक ने धर्म और विज्ञान के अंतर्द्वन्द्व को दिखाया है। एक तरफ धर्म दूसरी तरफ तार्किक सोच, लेखक ने बड़ी चतुराई से धर्म के संस्कारों को बचाने की बात भी कही और पानी की निर्मम बर्बादी पर भी प्रश्न उठाया है। एक जगह उन्होंने लिखा कि हम भारतीय अंग्रेजों से पिछड़ गये क्योंकि हम अपने धर्म के अंधविश्वासों को पूरा करने में ही

उलझे रहे। मतलब है कि धर्म का अपना स्थान है, और तार्किकता से जुड़े सवाल और विज्ञान अलग है। बुद्धिमान तो वह है जो इन दोनों में सामंजस्य बिठा सके।

सिक्किम में रहने वाले लोग धार्मिक प्रवृत्ति के हैं। कंचनजंघा का यहाँ के जीवन में बहुत ज्यादा महत्त्व है न केवल धार्मिक, आर्थिक, आध्यात्मिक बल्कि लोक साहित्य की दृष्टि से भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। गुरुरिम्पोछे (बुद्ध अवतार) के अनुयायी इंगम्पा, कागीपा संप्रदाय के कहलाते हैं। दूसरा संप्रदाय गिलोकपा एवं शाक्या दलाई लामा के अनुयायी है। यहाँ ज्यादातर गुरुरिम्पोछे के अनुयायी है। 'इंचे गुम्पा' गान्तोक के सबसे प्राचीन गुम्पाओं में से एक है। यहाँ जो पूजा पद्धति है - उसे 'जाकिम' करना कहते हैं। इसमें दोनों सम्प्रदाय इंगम्पा, कागीपा की पूजा होती है। गुम्पा के आंगन में बने दीप प्रज्ज्वलन एवं धूप सांग (अगरबत्ती समान) जलाने का स्थान कंचनजंघा की ओर मुड़े हुए हैं। धूप (सांग) जलाकर कंचनजंघा को साक्षी और अभिभावक मानकर पूजा की जाती है। इस धूप में तीन तरह के अनाज (जौ, मकई, गेहूँ), सत्तू, घी मिलाया जाता है। इसे आग में जलाकर धुआँ किया जाता है, माना जाता है कि इस धुएँ से मृत आत्मा की भूख शांत होती है। व्यक्ति की मौत होने पर मृत आत्माएँ अपने-अपने कर्म अनुसार स्वर्ग एवं नरक के रास्ते जाते हैं। यमराज उनकी आत्मा को कर्म अनुसार स्वर्ग या नरक भेजते हैं। इस अवधारणा को दिखाने के लिए गुम्पाओं में मुखौटा नृत्य 'शिंगजी' दिखाया जाता है। इस नृत्य को गुम्पाओं में तीन-तीन वर्ष के भीतर दिखाया जाता है। गाँव के सभी लोग इसे देखने जाते हैं। लोक मान्यता के अनुसार व्यक्ति को अपने जीवन में एक बार इसे जरूर देखना चाहिए। देखने से व्यक्ति की मृत्यु होने पर जब उसकी आत्मा यात्रा करती है तो उसके अंदर का डर मिट जाता है। रास्ते में मिलने वाले विभिन्न प्रकार के जानवरों के मुखौटों से उसकी मुलाकात होती है, इसे देखने के बाद ये मुखौटे उसे अनजाने नहीं लगते।

प्राचीन समय में लेप्चा लोग सिक्किम को 'रेन्जोंग' कहते थे और भूटिया लोग इस प्रदेश को 'डेन्जोंग' (धान उपजने वाला स्थान) कहते थे। लिम्बू जाति इस प्रदेश को 'सुखिम' कहती थी। सिक्किम शब्द की उत्पत्ति लिम्बू भाषा से हुई है। प्राचीन सिक्किम एक राज्य न होकर स्वतंत्र देश हुआ करता था, यहाँ नामग्याल शासन था। इस देश के द्वितीय महाराज-तेनसुंग नामग्याल (1670-1700) ने तीन शादियाँ की थी। एक भूटान की राजकुमारी पैंदी ओंगमू थी, दूसरी रानी रेन्जोंगमू थी, तीसरी पत्नी लिम्बूवान राजा सोमोहाँग की पुत्री थांगमा मूकमा थी। पुत्री का विवाह करवाने के बाद उनके रहने के लिए नया घर बनवाने की बात उठी, यहीं से 'नया घर' जिसे 'सु-हीम' शब्द बना फिर 'सुक्खिम' बाद में ब्रिटिश लोगों द्वारा उच्चारित यह शब्द सिक्किम बना। आज यह शब्द सिक्किम राज्य के लिए इस्तेमाल हो रहा है।

उस समय लेप्चाओं में एक प्रसिद्ध पुजारी दम्पत्ति थिकुंग तेक एवं निकुंग नअल थे, उत्तर जिला में स्थित एक गाँव था, जिसे आज कावी कहा जाता है, में रहते थे। दिन भर खेती का काम करते और सुबह शाम प्रकृति की पूजा-आराधना करने में अपना समय बिताया करते थे। दोनों में दैवीय शक्ति होने का

आभास मात्र गाँव, जिले एवं राज्य तक सीमित नहीं न होकर इसकी जानकारी तिब्बत के 'छुम्बी-यातुङ' राजा खेबुम्सा को हो गई। खेबुम्सा का कोई पुत्र नहीं था। पुत्र का वरदान पाने के लिए वह सिक्किम की ओर आया। यहाँ 'काबी' नामक स्थान पर आकर उन्होंने एक खेत में वृद्ध को काम करते हुए देखा, उन्होंने उस वृद्ध से 'थिकुंगतेक' के घर जाने का रास्ता पूछा। उस समय जंगल को जलाकर खेती की जाती थी। वृद्ध ने ऊपर पहाड़ी की ओर इशारा करके रास्ता दिखाया। खेबुम्सा जैसे ही पहाड़ी के ऊपर थेकुंग तेक और निकुल नअल दम्पत्ति के घर पहुँचा. उन्होंने देखा कि ये तो वही वृद्ध व्यक्ति हैं जिन्होंने रास्ता दिखाया था, वृद्ध के चेहरे पर कुछ धूल मिश्रित कोयला लगा हुआ था। वास्तव में वही थिकुंग तेक (लेप्चा पुजारी) था, उन्होंने खेबुम्सा को लम्बा रास्ता दिखाया था, स्वयं छोटा रास्ता पकड़कर घर पहुँचे थे। खेबुम्सा का आदर सत्कार करके उनके आने का कारण पूछा। तब राजा ने अपने जीवन में सुख समृद्धि होने के बावजूद पुत्र न होने का दुख जताया। थिकुंग तेक ने राजा खेबुम्सा की बात को बहुत ध्यान से सुना और कहा- 'ठीक है, मैं तुम्हें पुत्र प्राप्ति का वरदान देता हूँ, भविष्य में तुम्हारा ही पुत्र राजा बनेगा'। फिर कावी लुंगचोक नामक स्थान पर पवित्र पत्थर को गाड़कर, पशु बलि देकर शपथ ली गयी कि आज से भूटिया और लेप्चा जाति सगे भाई की तरह रहेंगे। पूजा का पूरा आयोजन निकुंग नअल ने किया था। पवित्र पत्थर लुंगचोक और कंचनजंघा को अभिभावक के रूप में रखकर भाईचारे की शपथ और संधि की गई। इस स्थान का जो नाम पड़ा वह लेप्चा भाषा का ही शब्द है 'कावी' जिसका अर्थ है - हमारा खून। यह 'कुयू सा वी' का अपभ्रंश रूप है। इस वचन का उल्लंघन होने पर धार्मिक कार्यवाही करने की शर्त रखी गई। आगे चलकर खेबुम्सा के तीन पुत्र हुए (1) क्याहू रप (2) मेपेन रप (3) लोमू रप।

पहले पुत्र से जब पूछा गया कि तुम क्या करोगे? तो उन्होंने जवाब दिया था - मैं बदमाशी करूँगा। दूसरे पुत्र से जब पूछा गया कि तुम क्या करोगे? तब उसने जवाब दिया - मैं राज करूँगा। तीसरे पुत्र से भी जब पूछा गया कि तुम क्या करोगे? तब तीसरे पुत्र ने जवाब दिया था कि मैं खेती का काम करूँगा। सिक्किम में सोलहवीं सदी से नामग्याल वंश की उत्पत्ति हुई वह तीसरे पुत्र लोमू रप से मानी गयी है। नामग्याल शासन (1642 - 1975) 300 वर्ष तक चला था। प्रथम नामग्येल फुग्चोङ नामग्याल थे और अंतिम नामग्याल थे- पालदेन थोण्डुप नामग्याल।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि कंचनजंघा का यहाँ के जीवन पर गहरा प्रभाव है। हर त्योहार इस पर्वत की पूजा किए बिना संपन्न नहीं होती।

संदर्भ ग्रंथ :

सिक्किमको इतिहास (नेपाली) – जयधमला
Sacred Summit - Khangchendzonga - Pema Wangchuk & Mita Zulca
Manorama Year Book - 2018 Page 552

(**परिचय** : लेखिका सिक्किम के शिक्षा विभाग में भाषा प्रशाखा, हिंदी समन्वयक पद पर कार्यरत हैं।)

रंगभेद, नस्ल और अश्वेत समस्या

गोपाल प्रधान

संपर्क- 956075988

अमेरिका के सामाजिक जीवन से रंगभेद कभी गायब नहीं हुआ। हाल की नस्ली घटनाओं ने दुनिया भर के लोगों का ध्यान इस समस्या की ओर खींचा है। रंगभेद का सवाल नस्ल के साथ ही वर्ग से भी जुड़ा है। उनमें स्त्री के साथ तो उत्पीड़न और भी घनघोर हो जाता है। सभी जानते हैं कि इस सवाल पर अमेरिका में भयंकर गृहयुद्ध लड़ा गया था। उसमें मार्क्स ने अमेरिकी राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन के साथ प्रथम इंटरनेशनल की ओर से संदेश भेजकर एकजुटता जताई थी। प्रथम इंटरनेशनल में फूट पड़ने पर उसका मुख्यालय अमेरिका ले जाने का प्रस्ताव मार्क्स ने रखा था। उनसे पहले के काल्पनिक समाजवादियों में से राबर्ट ओवेन ने एक आदर्श समाज बनाने की कोशिश अमेरिका में की थी। इन सब वजहों से अमेरिका और खासकर अश्वेत आंदोलनकारियों के साथ मार्क्सवाद का संवाद लगातार रहा। पिछले बीस सालों में इस सिलसिले में हुए सोच विचार की रूपरेखा प्रस्तुत करने का प्रयास इस लेख में कुछ महत्वपूर्ण किताबों के जिक्र के सहारे किया गया है। इन किताबों में कुछ तो मशहूर अश्वेत नेताओं की जीवनियां हैं लेकिन कुछ वैचारिक किताबें भी हैं। इनके जरिए हम अश्वेत समस्या की जटिलता तथा उसके समाधान की कोशिशों को समझ सकते हैं। इन पुस्तकों से दो अश्वेत नेता और विचारक अपने समय से अधिक प्रासंगिक वर्तमान समय में महसूस होते हैं। ड्यु बोइस और मार्टिन लूथर किंग नामक इन दोनों नेताओं के बारे में और विस्तार से विवेचन होना चाहिए था लेकिन उसके लिए पर्याप्त समय न मिल सका। इस सूची से उस महाकाव्यात्मक पीड़ा की बस झलक भर मिलती है जो अमेरिका में अश्वेत आबादी के जीवन का रोज का यथार्थ है। इस पीड़ा से अधिक विशाल पहाड़ जैसा धीरज है जिसके साथ उस समुदाय के बौद्धिकों ने इस अत्यंत व्यवस्थित अमानुषिक तंत्र का विश्लेषण किया। काम करते हुए एक चीज का और अनुभव हुआ। संपत्ति और राजनीति में अश्वेत समुदाय की भागीदारी कम होने से खेल, गीत, संगीत और संस्कृति की दुनिया में उपलब्धि हासिल करने वाले अश्वेतों की लोकप्रियता बहुत अधिक होती है।

1998 में वर्सो से रोबिन ब्लैकबर्न की किताब 'द मेकिंग आफ़ न्यू वर्ल्ड स्लेवरी: फ्राम द बरोक टु द माडर्न 1492-1800 के पेपरबैक संस्करण का प्रकाशन हुआ। पहली बार 1997 में इसका प्रकाशन हुआ था। लगभग साढ़े पांच सौ पृष्ठों की यह किताब दासता की समूची अर्थव्यवस्था को नंगा कर देती है। साफ होता है कि इसके बने रहने का आधार मूल रूप से पूंजीवादी मुनाफ़े की होड़ थी। इससे भारी पैमाने पर निरपेक्ष अतिरिक्त मूल्य पैदा होता था। किताब का मकसद अमेरिकी महाद्वीप में औपनिवेशिक गुलामी की

यूरोपीय व्यवस्था की छानबीन करना और आधुनिकता के आगमन में उसकी भूमिका को रेखांकित करना है। गुलामी के पुराने रूपों से भिन्न होने के बावजूद इसमें भी पारंपरिक तत्त्व मौजूद थे। उसके चलते अटलांटिक महासागर के आर-पार सोलहवीं से उन्नीसवीं सदी के बीच वैश्विक व्यापारिक लेन-देन बहुत हद तक व्यावसायिक हुआ लेकिन जिन जगहों पर ये गुलाम काम करते थे वहां धन की भूमिका बहुत कम थी। उनके श्रम से उत्पादित तम्बाकू, चीनी और रुई ने कीमती उपभोग की नई दुनिया को जन्म दिया लेकिन उन्हें इन चीजों का इस्तेमाल करने की मनाही थी। यह काफी विकसित और तकनीकी रूप से उन्नत आर्थिक संगठन था।

1500 से 1870 के बीच अफ़्रीका से लगभग सवा करोड़ लोगों को पकड़ा गया और इसके चलते मानव इतिहास में गुलामी की सबसे विराट व्यवस्था का जन्म हुआ। अटलांटिक के आर-पार का गुलाम व्यापार जबरदस्त पेशेवर तरीकों से संचालित होता था। लगभग पंद्रह लाख गुलाम बीच रास्ते में मर गए। नए मुल्क में भी प्रत्येक वर्ष उनके मरने की रफ़्तार तेज बनी रही। जो बचे उनका जीवन इस तरह संगठित किया गया था कि उनसे अधिकतम काम लिया जा सके। उनके अपने भरण पोषण की कमाई हफ़्ते के एकाध दिन के काम से हो जाती थी। शेष समूचे समय वे अपने मालिकान के लिए काम करते थे। शोषण की ऐसी दर गुलामी की अन्य व्यवस्थाओं में भी नहीं थी। कमरतोड़ परिश्रम, कुपोषण और बीमारी से होने वाली मौतों के चलते गुलामों की नई खेप की जरूरत हमेशा बनी रहती थी। अमेरिका में उनकी तादाद रोम के गुलामों से भी अधिक हो गई थी।

अमेरिका में अफ़्रीकी गुलाम उस समय लाए गए जब स्थानीय आबादी पर विपत्ति के बादल टूट पड़े थे। नए आए इन अफ़्रीकियों ने औपनिवेशिक ढांचे को बरकरार रखा और सभी तरह के काम संभाल लिए। प्लांटेशनों का विकास होने के बाद गुलामों में अफ़्रीकी छा गए और स्थानीय बाशिंदों को हाशिए पर धकेल दिया गया। कुछ खास तरह के काम केवल अफ़्रीकी लोग करने लगे। पुराने समय की गुलामी में रोजगार के मामले में विविधता थी। घर में बच्चों का शिक्षण, निचले स्तर का प्रशासन, सेवा टहल और मजदूरी तक का काम गुलामों के जिम्मे हुआ करता था। गुलामी वंशानुगत तो होती थी लेकिन पीढ़ी दर पीढ़ी उनकी हैसियत में कुछ सुधार भी आता था। इस गुलामी में ऐसी कोई संभावना नजर नहीं आती थी। इस गुलामी में नवीनता का कारण यह था कि आधुनिकता की कुछ नई प्रक्रियाएं भी इससे जुड़ गईं। उनके कार्यस्थल पर काम तार्किक तरीके से संगठित हुआ करता था। राष्ट्रीय भावना और राष्ट्र-राज्य का उत्थान भी इसके साथ जुड़ गया। नस्ली पहचान का विमर्श पैदा हुआ। मजदूरी आधारित श्रम और बाजार संबंधों का प्रसार उनके जीवन में हुआ। प्रशासकीय नौकरशाही और आधुनिक कर प्रणाली भी नई चीजें थीं। परिष्कृत व्यवसाय और संचार, उपभोक्ता समाज का उदय, अखबार का आगमन और वैयक्तिकता के प्रवेश ने इस समय की गुलामी को प्राचीन गुलामी से काफी हद तक भिन्न बना दिया।

आधुनिकता और गुलामी के बीच इस संपर्क के चलते प्रगति के अंधेरे पक्ष के बारे में भी सोचने की जगह बनती है। आज हम जानते हैं कि आधुनिक सामाजिक शक्तियां अत्यंत विध्वंसक और अमानवीय अंजामों तक भी ले जा सकती हैं। बीसवीं सदी में युद्धों और उपनिवेश के इतिहास के बाद प्रगति के बारे में पुनर्विचार अनजानी बात नहीं रही। फिर भी नस्ली गुलामी के साथ जुड़ी विचारधाराओं और संस्थाओं की पूरी छानबीन अभी नहीं हो सकी है।

सेड्रिक जे रोबिन्सन की किताब 'ब्लैक मार्क्सिज्म: द मेकिंग आफ़ द ब्लैक रैडिकल ट्रेडीशन' का प्रकाशन वैसे तो 1983 में ज़ेड प्रेस से हुआ था लेकिन दुबारा 2000 में लेखक की एक नई भूमिका तथा रोबिन डी जी केल्ली के नए विषय प्रवेश के साथ यूनिवर्सिटी आफ़ नार्थ कैरोलिना प्रेस से प्रकाशित हुई। शीर्षक ही स्पष्ट कर देता है कि वंचना की सच्चाई को छिपाने वाले मोहक नामों की जगह लेखक कालेपन की अस्मिता को गौरव की बात समझता है। केल्ली ने बताया है कि सोलह साल पहले यह किताब उनके हाथ आई थी और इसने उनकी जिंदगी बदल दी। जब किताब छपी थी तो कोई इसका जिक्र नहीं करता था, न ही इसका कोई विज्ञापन कहीं नजर आया था।

इसमें न केवल अश्वेत वाम परम्परा का इतिहास था बल्कि राजनीति, इतिहास, दर्शन, संस्कृति और जीवनी आदि को मिलाकर पश्चिम के उत्थान के इतिहास का पुनर्लेखन किया गया है। साथ ही इसमें पश्चिमी मार्क्सवाद की आलोचना है कि वह पूंजीवाद के नस्ली चरित्र को या उसकी पैदाइश की सभ्यता को या फिर यूरोपेतर जनांदोलनों को समझने में नाकाम रहा। इसके अतिरिक्त इसमें आधुनिकता, राष्ट्रवाद, पूंजीवाद, क्रांतिकारी विचारधारा तथा पश्चिमी नस्लवाद के उदय और 1848 से लेकर आज तक के विश्वव्यापी वामपंथ के बारे में हमारी आम समझ को चुनौती दी गई है। इस किताब से क्रांतिकारी चिंतन और क्रांति का केंद्र यूरोप से हटकर तथाकथित हाशिये की ओर चला गया। औपनिवेशिक और नस्ली पूंजीवादी शोषण के शिकार हाशिया पर पैदा होने वाले क्रांतिकारी चिंतन और व्यवहार पर उत्पीड़ितों के सांस्कृतिक अनुभवों की छाप थी।

फिर भी रोबिन्सन ने कहानी की शुरुआत यूरोप से की है। अफ़्रीकी लोगों के बारे में लिखी इस किताब की शुरुआत यूरोप से इसलिए हुई है ताकि हमारी नजर का जाला साफ हो। असल में यह किताब अफ़्रीकी अश्वेतों के हालात और आंदोलनों को समझने में पश्चिमी मार्क्सवाद की आलोचना है इसलिए शुरुआत पश्चिम से हुई है। उनका यह भी कहना है कि यूरोपीय सभ्यता में पूंजीवाद के उदय से पहले ही पश्चिमी नस्लवाद ने जड़ जमा ली थी। अफ़्रीकी श्रमिकों से मुलाकात के पहले यूरोप के भीतर ही सर्वहारा के नस्लीकरण और गोरेपन के आविष्कार की प्रक्रिया शुरू हुई थी। उनका कहना है कि यूरोप में कामगार आम तौर पर अप्रवासी थे। नस्ली पदानुक्रम में सबसे निचली सीढ़ी पर इन अप्रवासी मजदूरों को रखा जाता था। उदाहरण के लिए यूरोप में स्लाव और आयरलैंड के कामगार प्रथम अश्वेत थे। इस तरह अमेरिका में जो कुछ

उन्नीसवीं सदी में प्रत्यक्ष हुआ उसकी जड़ें सदियों पुरानी थीं। इसी नस्ली माहौल में पूंजीवाद का उदय हुआ। वे इस मार्क्सवादी धारणा की आलोचना करते हैं कि पूंजीवाद का जन्म सामंतवाद के क्रांतिकारी निषेध से हुआ। उनका कहना है कि पूंजीवाद सामंतवाद के भीतर पश्चिमी नस्लवाद की छाया में फला फूला। इस तरह नस्ली पूंजीवाद की आधुनिक विश्व व्यवस्था का जन्म हुआ जो अपने अस्तित्व के लिए गुलामी, हिंसा, साम्राज्यवाद और जनसंहारों पर निर्भर है। इसके लिए वे आयरलैंड के श्रमिकों का उदाहरण लेते हैं और बताते हैं कि नस्ली सोच के चलते ही ब्रिटेन के पूंजीपति आयरिश कामगारों को कम पगार देते थे। शासक वर्ग ने इस नस्लवाद का आविष्कार विभाजन के लिए नहीं किया था बल्कि यह सर्वहाराकरण की प्रक्रिया थी। समाजवादी विचारों को भी वे इसी शासन की एक रणनीति समझते हैं और इसके लिए मार्क्स की भी आलोचना करते हैं। उनका यह भी मानना है कि पश्चिम में ही नीग्रो की धारणा का निर्माण हुआ। इसे बनाना आसान नहीं था। इसके लिए बड़े पैमाने पर मानसिक और बौद्धिक ऊर्जा खर्च की गई। प्राचीन विश्व का इतिहास इसके लिए फिर से लिखना पड़ा। यूरोप और अफ़्रीका की पारस्परिकता को मिटाकर अफ़्रीका को नीग्रो बनाया गया। यूरोपीय ज्ञान में मिस्र के बौद्धिक योगदान पर परदा डालकर पश्चिम की गोरी शुद्धता की रक्षा की गई। अफ़्रीका में सभ्यता की मौजूदगी से इनकार किया गया। इस तरह आधुनिकता के एकमात्र स्रोत के रूप में यूरोप की प्रतिष्ठा की गई और अफ़्रीका को मानव संवेदना से हीन साबित किया गया। इसी समय यूरोप में श्रमिकों को जमीन से हटाकर कारखानों में ठूंसा जा रहा था और अफ़्रीकी कामगार को गुलामों के विश्व व्यापार के जरिए दुनिया से जोड़ा जा रहा था। इस गुलामी और शोषण के अफ़्रीकी प्रतिरोध को समझने के लिए पूंजीवाद के घेरे से बाहर निकलकर अफ़्रीकी संस्कृति को देखना होगा। जो श्रमिक लाए गए थे वे जहाजों में अपने साथ अफ़्रीकी संस्कृति भी ढोकर लाए थे।

इसी संस्कृति ने गुलामी और नस्लवाद से उनके आरम्भिक प्रतिरोध को ताकत दी। पश्चिमी समाज की आलोचना की जगह उन्होंने इसे पूरी तरह खारिज करने का रास्ता चुना। पश्चिमी समाज को बदलने या पूंजीवाद को उखाड़ फेंकने की जगह उन्होंने अतीत की रक्षा की कोशिश की। बहरहाल औपचारिक उपनिवेशवाद के आगमन और पूरी तरह नियंत्रित सामाजिक संरचना में अश्वेत कामगार के समायोजन के बाद पश्चिम और उपनिवेशवाद की आलोचना शुरू होती है। इसके बाद वे सामाजिक संबंधों को बदलने और क्रांतिकारी बदलावों की कोशिश के साथ खड़े होने लगे। दूसरी ओर उपनिवेशवाद के अंतर्विरोधों ने ऐसे देशी बुर्जुआ समुदाय को जन्म दिया जो यूरोपीय जीवन और चिंतन से परिचित था। उसका काम शासन चलाने में मदद करना था। उन्हें यूरोपीय नस्लवाद का शिकार होना पड़ता था और वे देशी जीवन और संस्कृति से अलगाव में भी थे। इस अंतर्विरोधी स्थिति के चलते उनमें विद्रोह उपजा और इसके चलते क्रांतिकारी अश्वेत बौद्धिक समुदाय का सृजन हुआ। किताब के अंतिम हिस्से में रोबिन्सन ने चुनिंदा अश्वेत बौद्धिकों की जीवनी के जरिए इस क्रांतिकारी अश्वेत बौद्धिक समुदाय की परीक्षा की है। इसके तहत उन्होंने ड्यु बोइस, सी एल आर जेम्स और रिचर्ड राइट का जिक्र किया है। इस बौद्धिक समुदाय का उभार प्रथम

विश्वयुद्ध, उसके बाद महामंदी और फ़ासीवाद के दौर में हुआ था। इनके जरिए रोबिन्सन अमेरिका और वहां बसे अफ़्रीकी समुदाय का दो सौ सालों का इतिहास छान डालते हैं। वे बताते हैं कि ये सभी बौद्धिक मार्क्सवाद में दीक्षित थे, विश्व पूंजीवाद के संकट से गहराई से प्रभावित थे तथा मजदूर और उपनिवेशवाद विरोधी आंदोलनों के असर में थे। मंदी और युद्ध के दौरान उन्होंने ऐसी किताबें लिखीं जो अश्वेत क्रांतिकारी परम्परा की ऐतिहासिक चेतना से आप्लावित हैं।

1999 में यूनिवर्सिटी ऑफ़ मिनेसोटा प्रेस से एडोल्फ़ रीड जूनियर की किताब 'स्टर्रिंग्स इन द जग: ब्लैक पोलिटिक्स इन द पोस्ट-सेग्रेगेशन एरा' का प्रकाशन हुआ। इस किताब की प्रस्तावना जूलियन बान्ड ने लिखी है। इसमें उनका कहना है कि बीसवीं सदी के शुरू में अश्वेत आंदोलन की दो धाराओं का उदय हुआ। अमेरिका के दक्षिण से उनमें से एक बुकर टी वाशिंगटन थे जिनके मुताबिक सही रास्ता खुद की सहायता का है। उनका यह भी कहना था कि सामाजिक और राजनीतिक बराबरी की मांग व्यर्थ है। खेती, विभिन्न पेशों और व्यापार में जब उनकी मजबूत हालत होगी तो राजनीतिक ताकत और सामाजिक सम्मान खुद प्राप्त हो जाएगा। दूसरे ड्यु बोइस थे जो मानते थे कि राजनीतिक अधिकारों के बिना आर्थिक समृद्धि प्राप्त करना असम्भव है। राजनीतिक सत्ता के जरिए ही नीतियों को इस तरह प्रभावित किया जा सकता है ताकि सरकारी संरक्षण मिले, स्कूलों को अनुदान मिले और कानून के समक्ष बराबरी हासिल हो। लोग तो मानते हैं कि ड्यु बोइस की राय सही साबित हुई लेकिन सच यह है कि दोनों तरीकों के बीच सहीपन का संघर्ष आज तक जारी है। उनके मुताबिक लेखक ने उन्हीं तर्कों को और भी परिष्कार के साथ प्रस्तुत किया है। कानूनी तौर पर नस्लभेद की समाप्ति से लेकर 1990 के मध्य तक का विवेचन किताब में किया गया है। पुरानी बहस को ही इस दौर की प्रमुख घटनाओं के माध्यम से उठाया गया है। इनकी बातें इस समय के लिए प्रासंगिक होने जा रही हैं। पचीस साल बाद अमेरिका और भी विविधता से भरा होगा। ड्यु बोइस या वाशिंगटन से बहुत आगे जा चुका होगा लेकिन उसके विचारों, रुझानों और आचरण पर अतीत की छाया होगी।

1954 में सुप्रीम कोर्ट ने स्कूलों में नस्लभेद को गैर कानूनी घोषित किया। इसके चलते नस्लभेद की नैतिकता को चुनौती देने वाले अहिंसक आंदोलनों की बाढ़ आ गई। बसों में, भोजन कक्ष में और मतदान के मामले में नस्लभेद को चुनौती मिलने लगी। अदालत, संसद और सड़क की लड़ाइयों के जरिए इन भेदों को खत्म किया गया। समान नागरिक अधिकारों से शुरू हुआ आंदोलन राजनीतिक और आर्थिक सत्ता पर कब्जे तक जा पहुंचा। अश्वेत स्त्री पुरुष उन पदों पर जा बैठे जिनके बारे में उन्होंने पहले सपना भर देखा होगा। किताब के लेखक रीड का मानना है कि दक्षिणी प्रांतों के बाहर समेकन का नारा हवा हवाई था। साठ के दशक की उपलब्धियों का जमीन पर उतरना बाकी है। क्योंकि नस्लभेद और सरकार प्रायोजित उत्पीड़न की

समाप्ति महत्व की बात तो थी लेकिन इससे महज नस्लभेद के उत्पीड़नकारी चेहरे को उजागर किया जा सका।

1999 में आक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस से जेम्स एडवर्ड स्मेटहर्स्ट की किताब 'द न्यू रेड नीग्रो: द लिटरेरी लेफ़्ट ऐंड अफ़्रीकन अमेरिकन पोएट्री, 1930-1946' का प्रकाशन हुआ। लेखक के मुताबिक 1930 और 1940 के दशकों में ऐसे अश्वेत कवियों के महत्वपूर्ण संग्रह प्रकाशित हुए जिनके चलते साहित्य में वाम विचारों की प्रतिष्ठा में निर्णायक मदद मिली। इनकी परिपक्व शैली के दर्शन भी उसी दौर में हुए। फिर भी उस दौर की इस कविता पर गम्भीर बातचीत कम ही हुई है। जो सामग्री उपलब्ध है भी वह जीवनीपरक अधिक है, आलोचनात्मक कम है। बात होती भी है तो इस समय के पहले या बाद की रचनाओं के बारे में। अश्वेत साहित्य पर ढेर सारे लेखन को देखते हुए यह अभाव और भी खटकता है। किताब में इस अभाव के गिनाए कारणों पर सवाल उठाए गए हैं चाहे सौंदर्य या महत्व को उसका कारण बताया गया हो। इसके जरिए हम हिंदी में दलित साहित्य के साथ होने वाले बरताव को समझ सकते हैं। उस पर साहित्यिक प्रतिमानों पर खरा न उतरने का बहाना बनाकर बात करने से परहेज किया जाता है।

2000 में आक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस से रोबिन डी जी केल्ली और अर्ल लेविस के संपादन में 'टु मेक आवर वर्ल्ड एन्यू: ए हिस्ट्री ऑफ़ अफ़्रीकन अमेरिकन्स टु 1880' का पहला खंड प्रकाशित हुआ। दूसरा खंड 'टु मेक आवर वर्ल्ड एन्यू: ए हिस्ट्री ऑफ़ अफ़्रीकन अमेरिकन्स सिन्स 1880' भी इसी साल प्रकाशित हुआ। संपादकों का कहना है कि अफ़्रीकी अमेरिकी जनता का इतिहास दुनिया को फिर से बनाने की दुखद महागाथा से कम नहीं है। जबरदस्ती उठाकर लाए गए इन लोगों को आलू प्याज की तरह खरीदा और बेचा गया। इन्होंने और इनके वारिसान ने दिन रात अपनी हालत सुधारने की चेष्टा जारी रखी। इसमें अगर वे सफल नहीं हुए तो भी आधुनिक पश्चिम की सर्वोत्तम आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक उपलब्धियों में उनके कार्य, चिंतन और सपनों का योगदान है। इनके परिश्रम से अपार संपदा का सृजन हुआ और इससे पूंजीवाद के आगमन में मदद मिली। इनके प्रतिरोधों ने गुलामी प्रथा का अंत किया तथा इनकी रचनात्मकता ने पश्चिमी कला के लगभग सभी रूपों को प्रभावित किया। आजादी के इनके सपनों ने अमेरिका की राजनीति को तो बदल ही दिया, आज तक के दुनिया भर के प्रतिरोध आंदोलनों पर उनका असर है। शुरू से उनकी आत्मछवि अंतरराष्ट्रीय रही। किताब में भी अश्वेत जनता के संघर्षों और उपलब्धियों को व्यापक अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में देखा गया है।

इनका इतिहास अटलांटिक और हिंद महासागर से घिरे अफ़्रीकी महाद्वीप से शुरू होता है। तरह-तरह की भाषाओं, परंपराओं, इतिहासों और धर्मों वाले लोग इस महाद्वीप के निवासी थे। उनमें कुछ लोग बहुत पुराने साम्राज्य के वासी थे तो कुछ पारिवारिक समूहों में रहते थे। कुछ एक ईश्वर के पुजारी थे तो कुछ एकाधिक ईश्वरों की पूजा करते थे। कुछ समुदायों के मुखिया पुरुष थे तो कुछ की स्त्रियां। इतनी समृद्ध

सांस्कृतिक विरासत के साथ वे अमेरिका आए। इन लोगों ने लम्बे समय तक दुनिया के मामलों में केंद्रीय भूमिका निभाई थी। औषधि, भाषा और शिल्प में मिस्र की उन्नति से ग्रीस और रोम पर असर पड़ा था। यहां से निकला सोना भूमध्य सागर तक जाता था जिसका संग्रह करके इटली के व्यापारियों ने यूरोपीय व्यापार का प्रसार किया था। टिम्बकटू जैसे ज्ञान के केंद्रों की ओर तमाम दुनिया से ज्ञान पिपासु आते थे। इसका पराभव तब शुरू हुआ जब अटलांटिक सागर का दूसरा रास्ता खुला और यूरोपीय लोग अमेरिका पहुंचे। वहां के प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के लिए प्रचुर मानव श्रम की जरूरत थी। अफ़्रीका के श्रमिकों का लाभ उठाना वे शुरू कर चुके थे। इसके बाद गुलाम बनाकर ले जाने का ऐसा सिलसिला शुरू हुआ जिसका अंत ही समझ नहीं आता था।

2002 में पालग्रेव से आयन ला की किताब 'रेस इन द न्यूज' का प्रकाशन हुआ। लेखक का कहना है कि नस्ल की धारणा का पिछले सौ सालों से विरोध हो रहा है लेकिन बहुतेरे लोग अब भी इसमें यकीन करते हैं। वैश्विक संचार में इस धारणा का अब भी प्रसार है। उदाहरण के लिए 1998 के फ़ुटबाल के विश्व कप के उद्घाटन समारोह में पेरिस में दुनिया भर के लोगों का प्रतिनिधित्व दिखाने के लिए प्लास्टिक के विशाल गोले में चार रंगों से रेखांकन किया गया था। टेलीविजन के जरिए सारे संसार में लोगों ने इसे देखा। ऐसे नस्ली प्रतिनिधित्व के सहारे लोग शारीरिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अंतर को गलत ही सही आसानी से पहचान लेते हैं। इसका इस्तेमाल श्रेष्ठता, शुद्धता और बहिष्कार के लिए अक्सर किया जाता है। कभी-कभी न्याय, समानता और स्वतंत्रता की दावेदारी में भी इससे मदद ली जाती है। इस तरह नस्ल की धारणा का इस्तेमाल नस्लवाद के साथ उसके विरोध के लिए भी होता रहा है। इसके चलते ही समाचारों में देश, नृजातीय समूह या खासकर प्रवासियों की रपट लगाते हुए नस्ल के चश्मे से घटनाओं को पेश किया जाता है। इस प्रस्तुति से नस्ली विचारों के निर्माण पर प्रभाव पड़ता है।

2003 में यूनिवर्सिटी प्रेस ऑफ़ मिसीसीपी से एंथनी डवाहरे की किताब 'नेशनलिज्म, मार्क्सिज्म, ऐंड अफ़्रीकन अमेरिकन लिटरेचर बीट्वीन द वार्स: ए न्यू पैंडोरा'ज बॉक्स' का प्रकाशन हुआ। लेखक का मानना है कि राष्ट्रवाद और मार्क्सवाद पिछली सदी की दो सबसे प्रभावी विचार थे। उन्होंने दुनिया भर में ढेर सारे सांस्कृतिक और राजनीतिक आंदोलनों को जन्म दिया। इन दोनों विचारों का असर हार्लेम जागरण के अश्वेत लेखकों तथा महामंदी के समय के सर्वहारा साहित्यांदोलन पर देखना किताब का घोषित मकसद है। असल में हार्लेम न्यू यार्क में अश्वेत समुदाय के रिहायशी इलाके का नाम है इसलिए अश्वेत जागरण को हार्लेम जागरण कहा जाता है। आर्थिक संकट और युद्ध के उन दिनों में बहुतेरे अश्वेत लेखक सामाजिक समता की अपनी आकांक्षा के अनुरूप लगने वाले राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय विचारों और आंदोलनों के साथ खड़े हुए। गुलामी, भेदभाव और नस्लवाद के प्रदीर्घ निराशाजनक इतिहास के बावजूद उनको लगा कि

आत्मनिर्णय की सम्भावना बची हुई है। दोनों विश्वयुद्धों के बीच के बीस साल अफ़्रीकी अमेरिकी लेखकों के लिए राजनीतिक तौर पर सर्वाधिक उत्पादक और सांस्कृतिक रूप से समृद्धशाली थे।

2003 में हार्पर कोलिन्स ई-बुक्स से ड्रयू डी हानसेन की किताब 'द ड्रीम: मार्टिन लूथर किंग, जूनियर, ऐंड द स्पीच दैट इंस्पायर्ड ए नेशन' का प्रकाशन हुआ। लेखक का कहना है कि 1963 में जब मार्टिन लूथर किंग ने यह ऐतिहासिक भाषण दिया था उस समय अमेरिका में अश्वेत जनता नस्ली जाति व्यवस्था में जिंदगी गुजार रही थी। अश्वेतों की भारी बहुसंख्या दक्षिणी अमेरिका में केंद्रित थी। वहां गोरों और कालों के लिए होटल, तट, स्नानघर, रेस्तरां और पानी के नलके अलग-अलग थे। सुप्रीम कोर्ट के फैसले के बावजूद स्कूलों में यह भेदभाव बना हुआ था। कई जगहों पर मतदान में भी अश्वेतों को भाग नहीं लेने दिया जाता था। उनके साथ दिल दहला देने वाले हिंसक कृत्य होते थे। उत्तरी अमेरिका में यही भेदभाव प्रत्यक्ष नहीं था। शहरों में श्वेत और अश्वेत बस्तियां अलग थीं। जमीन बेचने वालों में अश्वेतों को जमीन न बेचने का अलिखित चलन था। अश्वेत बस्तियों के मकान मालिकों को बैंक कर्ज नहीं देते थे। सरकार इन बस्तियों को झोपड़पट्टी मानकर गिरा दिया करती थी। श्वेत बस्तियों में रहने वाले अश्वेतों को तरह-तरह से सताया जाता था। राष्ट्रीय अर्थतंत्र के बहुत सारे क्षेत्रों में वे अनुपस्थित थे। उनकी औसत आमदनी गोरों के मुकाबले आधी तिहाई होती थी। बेरोजगारी गोरों के मुकाबले दो गुनी थी और गिरफ़्तारी पांच गुनी। फ़िल्मों में अश्वेत पात्र नजर नहीं आते थे। खेलों में बेसबाल में तो उनकी मौजूदगी थी लेकिन उन्हें गोल्फ़, टेनिस या बास्केटबाल खेलते देखना असंभव था। लेकिन वे नागरिक अधिकारों के लिए चलने वाले आंदोलनों में भाग ले चुके थे जिसकी शुरुआत 1955 में मांटगुमरी में हो चुकी थी। किंग का झुकाव आंदोलनों की ओर नहीं था। वे पढ़ाई-लिखाई से जुड़े हुए थे और उनकी रुचि धार्मिक थी। प्रदर्शन में भी वे सेवा भाव से शामिल हुए थे। उन्हें प्रदर्शन का नेतृत्व करते हुए मुख्य भाषण देना था जिसे तैयार करने का समय बहुत कम था। उन्हें रविवारीय उपदेश का अभ्यास रहा था जिसकी तैयारी के लिए भरपूर समय मिलता था। इसके लिए उनके हाथ में कुल बीस मिनट थे। प्रचंड घबराहट में उन्होंने ईश्वर को पांच मिनट याद किया और बचे हुए पंद्रह मिनट में भाषण तैयार करने बैठे। इतने कम समय में भाषण का बस दिमागी खाका ही बन सका।

2003 में बेसिक बुक्स से बेवर्ली डैनिएल तातुम की किताब '"ह्वाइ आर ऑल द ब्लैक किड्स सीटिंग टुगेदर इन द कैफ़ेटेरिया?": ऐंड अदर कनवर्सेशन्स एबाउट रेस' का प्रकाशन हुआ। लेखक के मुताबिक किताब लिखना बोतल में कुछ लिखकर उसे समुद्र में डाल देने की तरह होता है। लेखक अपने पाठक या उस पर पड़े प्रभाव से पूरी तरह अनजान होता है। बस उम्मीद होती है कि कभी कोई इसे पढ़ेगा और जवाब देगा। खुद वे खुशकिस्मत रहे कि लोगों ने मेल, पत्र, फोन और आमने-सामने अपनी राय जताई। इससे उन्हें बच्चों से नस्ली भेदभाव के बारे में बात करने में सुभीता हुआ। शीर्षक के प्रश्नवाची होने से संवाद स्थापित करने में आसानी हुई। संयोग से क्लिंटन को भी इसमें रुचि पैदा हुई। वे चाहते थे कि लेखिका कुछ

अन्य लेखकों और विद्यार्थियों के साथ नस्ल संबंधी उनकी खुली सभा में मौजूद रहें। इसमें शामिल होकर उन्हें खासी प्रेरणा मिली। लगा कि एक गोरा राष्ट्रपति अपने पद की सत्ता का सदुपयोग कर रहा है। लेखक का मूल अनुशासन मनोविज्ञान है।

2004 में रौमान ऐंड लिटिलफ़ील्ड पब्लिशर्स से डेल डब्ल्यू तोमिच की किताब 'थ्रू द प्रिज्म ऑफ़ स्लेवरी: लेबर, कैपिटल ऐंड वर्ल्ड इकोनामी' का प्रकाशन हुआ। पूंजीवाद के साथ दास प्रथा किस तरह नाभिनालबद्ध है इसका विवेचन इस किताब की विषयवस्तु है। लेखक का कहना है कि दासता ने आर्थिक शोषण और सामाजिक दमन के मुख्य औजार के बतौर आधुनिक विश्व अर्थतंत्र के निर्माण और पूंजी के ऐतिहासिक विकास में केंद्रीय भूमिका निभाई है। सोलहवीं सदी में अमेरिका में दासों के जरिए उत्पादन ने श्रम के वैश्विक विभाजन और विश्व बाजार में निर्णायक योगदान किया। अफ़्रीकी दासों की उत्पादक गतिविधि ने श्रम, व्यापार और सत्ता के मामले में ऊंच-नीच की नई व्यवस्था कायम की और विश्व अर्थतंत्र के केंद्र में यूरोप को ला दिया। दुनिया के पैमाने पर पूंजी के सामाजिक संबंधों के पुनर्गठन और ऐतिहासिक प्रसार के अनुरूप अमेरिका में दासता रूप बदलती रही है। विश्व अर्थतंत्र की जरूरत के मुताबिक ही दास श्रम के उपयोग के तरीके तय किए जाते रहे हैं।

2004 में हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस से निखिलपाल सिंह की किताब 'ब्लैक इज ए कंट्री: रेस ऐंड द अनफ़िनिश्ड स्ट्रगल फॉर डेमोक्रेसी' का प्रकाशन हुआ। किताब की शुरुआत इस तथ्य से होती है कि 1967 में मार्टिन लूथर किंग ने वियतनाम युद्ध का विरोध किया। इस पर उनकी खिल्ली उड़ाई गई। इस बात को भूलने में एक साल बाद हुई उनकी हत्या से मदद मिलती है। तमाम सबूत बताते हैं कि इसके लिए उन्हें देशद्रोही तक कहा गया था। कुछ ही साल पहले वे अमेरिका की अंतरात्मा के संरक्षक माने गए थे! वे वियतनाम में औपनिवेशिक युद्ध को घरेलू मोर्चे पर नस्ली समानता और न्याय न दे पाने से जोड़कर देखते थे। उनका कहना था कि कम्युनिस्टों से भय पैदा करके अमेरिका की क्रांतिकारी परम्परा को प्रतिक्रियावादी इतिहास में बदला जा रहा है। इस छवि निर्माण के लिए आर्थिक संसाधन झोंक दिए जा रहे हैं, आपसी विवाद को निपटाने के लिए हिंसा और सेना की वकालत की जा रही है तथा समाज सुधार की परियोजना में यकीन समाप्त किया गया है। उन्हें लगा कि अमेरिका की आत्मा के विनाश में इस युद्ध का भी हाथ होगा। लेखक ने कयास लगाया है कि अगर किंग 1968 के बाद भी जीवित रहते तो सम्भव है कि पाल राबसन या ड्यु बोइस जैसे अन्य अश्वेत क्रांतिकारी नेताओं की तरह उन पर भी गद्दार और अमेरिका विरोधी होने का आरोप लगाया गया होता।

2005 में हेमार्केट बुक्स से अहमद शाकी की किताब 'ब्लैक लिबरेशन ऐंड सोशलिज्म' का प्रकाशन हुआ। अस्मिता के सवालों से मार्क्सवाद के संवाद के मामले में अश्वेत लोगों के संघर्ष सबसे अहम रहे हैं इसलिए स्वाभाविक रूप से इस पहलू को उजागर करते हुए अनेक किताबें लिखी गई हैं। लेखक ने

अपनी बात अगस्त 2005 के कटरीना तूफान से शुरू की है। इस तूफान से सबसे अधिक वे इलाके प्रभावित हुए जहां अफ़्रीकी-अमेरिकी आबादी है और तूफान तथा राहत के दौरान अमेरिकी समाज का नस्लवादी चेहरा सामने आया। सरकारी संस्था ने पीड़ितों के हालात के लिए उन्हीं को जिम्मेदार ठहराया। कहा गया कि जब स्थानीय अधिकारियों ने उन्हें अन्य स्थानों पर चले जाने का निर्देश दिया था तो उन्हें अपना घरबार और रोजी-रोजगार छोड़कर नगर खाली कर देना चाहिए था। बात यह थी कि निर्देश देर से तो आए ही, उनके पास नगर खाली करने और रहने के वैकल्पिक इंतजाम की सुविधा नहीं थी। एक महीने बाद इराक युद्ध विरोधी एक प्रदर्शन में कटरीना प्रभावित एक काली महिला ने बैनर लहराया जिसमें लिखा था कि किसी इराकी ने मुझे छत पर मरने के लिए नहीं छोड़ा है। जो संसाधन तूफान पीड़ितों को राहत पहुंचाने के लिए इस्तेमाल हो सकते थे उन्हें इराक युद्ध में झोंक दिया गया इसलिए तूफान पीड़ितों ने युद्ध का विरोध किया। व्यवस्था की वरीयता तूफान पीड़ितों को राहत देने की जगह युद्ध जारी रखना थी। लेखक की मान्यता है कि आम धारणा के विपरीत अमेरिकी समाज भीषण टकराव से गुजर रहा है और बदलाव लाने की कोशिशों के केंद्र में काले लोगों की आबादी है। लेखक ने किताब के दो उद्देश्य घोषित किए हैं- 1) अमेरिका में काले लोगों के मुक्ति आंदोलन के कुछ प्रमुख वैचारिक-राजनीतिक धाराओं का जायजा लेना और 2) साबित करना कि समाजवादी विचार और संगठन अतीत में इस आंदोलन के अभिन्न अंग रहे हैं और भविष्य में भी रहेंगे। वर्तमान राजनीतिक माहौल में बहुतेरे लोगों को यह बात बेतुकी लग सकती है लेकिन यह तो अकाट्य सचाई है कि अमेरिका में बड़े पैमाने पर जनता के क्रांतिकारीकरण के दौर आए हैं। इन दौरों में मौजूदा शासन और उसकी कार्यपद्धति का लाखों लोगों ने विरोध किया। साठ के उत्तरार्ध में अमेरिकी समाज में बदलाव के आंदोलनों के साथ मार्क्सवाद घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ था।

2005 में न्यूयार्क यूनिवर्सिटी प्रेस से गेराल्ड हार्ने की किताब 'रेडसीज: फ़र्दिनान्द स्मिथ ऐंड रैडिकल ब्लैक सेलर्स इन द यूनाइटेड स्टेट्स ऐंड जमैका' का प्रकाशन हुआ। लेखक ने किताब की शुरुआत अमेरिका में दूसरे विश्वयुद्ध से वापस लौटे सैनिकों के नागरिक अभिनंदन से की है। इस समारोह में जिन्हें सम्मानित करना था उनमें जमैका मूल के फ़र्दिनान्द स्मिथ नामक अश्वेत भी थे। वे कम्युनिस्ट पार्टी के महत्त्वपूर्ण नेतृत्वकारी सदस्य थे। वे सौ नौसैनिकों के बेड़े के मुखिया थे। उनके कम्युनिस्ट होने के बावजूद दो सौ लोग उस सभा में श्रमिकों, नीग्रो समुदाय और देश के लिए उनकी सेवा के गुण गाते रहे। वहां तमाम अश्वेत नेताओं की ऐतिहासिक जुटान हुई थी। शीतयुद्ध अभी शुरू नहीं हुआ था। इसके बाद जल्दी ही कम्युनिस्टों के विरोध का जो अभियान शुरू हुआ उसके चलते 1951 में उन्हें जमैका वापस लौटना पड़ा। लौटने से पहले तक मजदूरों के मामलों पर उन्होंने लगातार सार्थक हस्तक्षेप किए। हार्लेम में उनकी लोकप्रियता के कारण अक्सर उन्हें बुलाया जाता था। उनके ट्रेड यूनियन का असर बहुत अधिक था। उनके कामों में मदद के लिए बाकायदे तीन चार सहायक होते थे। यूनियन के साथियों के मालिकान के साथ झगड़ों का निपटारा और यूनियन की पत्रिका के लिए नियमित लेख तैयार करने से लेकर अन्य अखबारों के लिए लेखन तक सभी काम कुशलता

के साथ निपटाए जाते थे। अप्रवासी कम्युनिस्ट होने के बावजूद उनके इस असर की वजह पारंपरिक राजनीतिक समूहों के मुकाबले कम्युनिस्टों द्वारा नस्ली समानता के सवाल पर अधिक प्रगतिशील नजरिया अपनाने के कारण देश में उनके फैलते प्रभाव में निहित थी। जिम क्रो कानूनों के विरोध में अश्वेत समुदाय को कुछ जीतें भी मिलने लगी थीं। इसके अतिरिक्त अमेरिका की नौसेना में अप्रवासी लोग कुछ अधिक थे भी। इन सभी कारणों से स्मिथ की लोकप्रियता बहुत ज्यादा थी।

2005 में बीकन प्रेस से एन सी बेली की किताब 'अफ़्रीकन वायसेज ऑफ़ द अटलांटिक स्लेव ट्रेड: बीयान्ड द साइलेन्स ऐंड द शेम' का प्रकाशन हुआ। लेखक का कहना है कि दास प्रथा के समूचे इतिहास के बारे में चुप्पी बरती जाती है। टुकड़े-टुकड़े में बातें सुनाई पड़ती हैं। अफ़्रीकी समाज पर इस व्यवस्था के प्रभाव के बारे में बहस और विश्लेषण बहुत समय से चलता रहा है। 1969 में पहली बार अमेरिका ले जाए गए अफ़्रीकी लोगों की संख्या जानने की वैज्ञानिक कोशिश हुई। लेकिन इससे पहले ही ड्यु बोइस ने अपना काम शुरू कर दिया था। बाद में भी बहुतेरे लोग इस क्षेत्र में शोधरत रहे। फिर भी इस समस्त लेखन में उस समय की अफ़्रीकी आवाजें नहीं सुनाई देतीं। यूरोपीय व्यापारियों या अमेरिकी दास मालिकों के दस्तावेजों के आधार पर ही सारा शोध होता है। कभी-कभी मौखिक सामग्री का जिक्र हो जाता है। असल में अफ़्रीका के भीतर गुलामी के मसले पर खामोशी बरती जाती है। किताब में दास प्रथा की कहानी के मामले में अटलांटिक के दोनों छोरों को जोड़ने की कोशिश की गई है।

2006 में यूनिवर्सिटी ऑफ़ कैलिफ़िर्निया प्रेस से लौरा पुलिदो की किताब 'ब्लैक, ब्राउन, येलो, ऐंड लेफ़्ट: रैडिकल ऐक्टिविज्म इन लॉस एंजेल्स' का प्रकाशन हुआ। किताब अमेरिकी समाज और सरकार में व्याप्त गोरे प्रभुत्व के विरोध में उपजी राजनीति के वामपंथी तेवर को उजागर करने के मकसद से लिखी गई है। साथ ही इसमें काले के साथ समस्त अश्वेत समुदाय को उठाया गया है। असल में 1968 से 1978 के बीच लास एंजेल्स में थर्ड वर्ल्ड लेफ़्ट नामक आंदोलन चला जिसमें ये समूह शामिल थे। लेखक की मान्यता है कि अश्वेत समुदाय के राजनीतिक मिजाज को समझने के लिए यह समय सबसे महत्वपूर्ण है। पूंजीवाद और नस्लवाद से लड़ने के लिए प्रतिबद्ध उस आंदोलन की परिणति समझकर ही वर्तमान राजनीतिक रुख का तर्क बोधगम्य हो सकता है। लगा कि वर्ग चेतना के आधार पर ही विभिन्न नस्ली समूहों को एक साथ लाकर समाजार्थिक न्याय का व्यापक संघर्ष चलाया जाना संभव है।

2007 में न्यूयार्क यूनिवर्सिटी प्रेस से गेराल्ड हार्ने की किताब 'द डीपेस्ट साउथ: द यूनाइटेड स्टेट्स, ब्राज़ील, ऐंड द अफ़्रीकन स्लेव ट्रेड' का प्रकाशन हुआ। किताब में उन्नीसवीं सदी में अफ़्रीकी गुलामों के व्यापार के सिलसिले में दो साम्राज्यों, ब्राज़ील और अमेरिका के संबंधों की कहानी कही गई है। चार महाद्वीपों की कहानी होने के बावजूद केंद्र में अमेरिका है। ब्राज़ील में गुलामों के व्यापार में शामिल अमेरिकी लोगों पर खास ध्यान दिया गया है। इसमें ब्रिटेन और अमेरिका के बीच के टकराव का जिक्र है जिसके

चलते 1812 में उनके बीच युद्ध हुआ और 1830 में ब्रिटेन ने अपने साम्राज्य में गुलामी का अंत कर दिया। उस जमाने में गुलामी इतना लाभकर व्यवसाय था कि आज के क्रिकेट की तरह ही सभी रसूखदार लोगों का कुछ न कुछ निवेश उसमें रहता था।

2007 में फ़रार, स्त्रास ऐंड गीरू से सैदिया हार्टमैन की किताब 'लूज योर मदर: ए जर्नी एलांग द अटलांटिक स्लेव रूट' का प्रकाशन हुआ। लेखिका को घाना जाने पर विदेशी समझे जाने का अनुभव हुआ। पहले तो उन्हें इस तरह पुकारा जाना बुरा लगता था लेकिन बाद में उन्होंने इसे स्वीकार कर लिया। उनके अश्वेत होने के बावजूद स्थानीय लोग खुद से उन्हें अलग समझते थे। मुंह खोलते ही उनकी भाषा इसका सबूत दे देती थी। अपनी पहचान मिटाने के लिए इस भाषा को सीखने में उन्हें काफी मशक्कत करनी पड़ी थी। अब वही भाषा उन्हें अपने लोगों से दूर कर रही थी। लोग गुलामी का नाम लेने से बच रहे थे लेकिन कहावतों की भाषा में बोल रहे थे। लेखिका ने उनकी मारक कहावत का उल्लेख किया है। कहावत थी- पेड़ पर उगे कुकुरमुत्ते की जड़ गहरी नहीं होती। उन्होंने एक दोस्त से शिकायत की कि घाना से अधिक बेगानेपन उन्हें कहीं नहीं हुआ जबकि उनके पुरखे इसी जगह से गए थे। दूसरी ओर जिस देश में उनका जन्म हुआ था उसे भी वे अपना नहीं समझ पाती थीं। गुलामों का अस्तित्व इसी तरह का है। हरेक जगह पर वह बाहरी होता है। असल में जब वे बेचे गए उस समय भी तो अपने लोगों के लिए बाहरी ही थे। असल में गुलाम तो पूर्वी यूरोप के लोग होते थे इसलिए उनकी प्रजाति से जुड़ा शब्द 'स्लेव' गुलामों के लिए अपनाया गया।

2007 में ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस से माइकेल जे क्लारमन की किताब 'अनफ़िनिश्ड बिजनेस: रेशियल इक्वलिटी इन अमेरिकन हिस्ट्री' का प्रकाशन हुआ। किताब एक पुस्तक श्रृंखला के तहत छापी गई है। श्रृंखला अनुल्लंघनीय अधिकारों के बारे में है। इस तरह पहले ही नस्ली समानता को अधिकार मान लिया गया है। संपादक के अनुसार नस्ल का इतिहास अमेरिका की दुविधा है। इसके बारे में जानकारी जरूरी है। लेखक ने शुरू से लेकर वर्तमान सदी तक नस्ल के सवाल पर विचार किया है। उनका कहना है कि नस्ली रिश्तों में सुधार का कारण कोई सदिच्छा नहीं बल्कि युद्ध, प्रवास या आर्थिक वजहों से होता रहा है। उनका यह भी मानना है कि कानून ने इसे कोई गति नहीं दी बल्कि सुधार का प्रतिबिम्ब कानूनों के निर्माण में दिखाई पड़ा। अमेरिकी क्रांति के समय न्यू यार्क के दस प्रतिशत निवासी गुलाम थे। क्रांति ने सभी मनुष्यों की स्वतंत्रता का उद्घोष किया तो उसमें गुलाम शामिल नहीं माने गए। उत्तरी भाग के स्वतंत्र अश्वेतों के अधिकार भी सीमित थे और उन्हें अपहरण तथा जबरन गुलाम बनाए जाने की शंका बनी रहती थी। 1842 में सुप्रीम कोर्ट ने व्यवस्था दी कि उत्तरी प्रांत दक्षिण से भागे गुलामों को फिर से पकड़ने के गुलाम मालिकों के अधिकार पर रोक नहीं लगा सकते। कुछ प्रांतों ने अश्वेतों के आगमन पर प्रतिबंध लगा दिया और गुलामी के विरोधियों को अक्सर परेशान किया जाता था। स्वतंत्र अश्वेतों को भी कोई अधिकार नहीं हासिल थे। इसके

बाद गृहयुद्ध, गुलामों की मुक्ति और पुनर्निर्माण का समय आता है। इसके साथ ही कू क्लक्स क्लान का उभार होता है। क्लारमन कहते हैं कि दूसरे विश्वयुद्ध में फ़ासीवाद के विरोध में अमेरिका के कूद पड़ने से नस्ली बदलाव की प्रेरणा पैदा हुई। हालांकि गुलामी, भीड़ हत्या, मतदान कर तथा सरकार समर्थित पृथक्करण से अमेरिका बाहर आ गया है लेकिन अनेक नस्ली अवरोध अब भी पार करने हैं। मकान और शिक्षा के मामले में नस्ली विषमता बढ़ी है। बेरोजगारी में अश्वेतों का हिस्सा गोरों का दोगुना है। गोरे परिवार के मुकाबले अश्वेत परिवार की संपत्ति औसतन दस गुनी कम है। कॉलेज से अधिक अश्वेत जेल में होते हैं। आबादी में 12 प्रतिशत होने के बावजूद कैदियों में आधे अश्वेत ही हैं। नस्ली सुधार की राह में कट्टर सुप्रीम कोर्ट ने लगातार रोड़े अटकाए हैं। इन सबके चलते क्लारमन को लगता है कि अश्वेत समुदाय आज भी नस्ली समानता और समेकन से दूर ही है। वे बताते हैं कि नस्ली विषमता न केवल मौजूद है बल्कि हाल के दिनों में बढ़ी है।

2007 में यूनिवर्सिटी ऑफ़ मिनेसोटा प्रेस से सेड्रिक जॉनसन की किताब 'रेवोल्यूशनरीज टु रेस लीडर्स: ब्लैक पावर ऐंड द मेकिंग ऑफ़ अफ्रीकन अमेरिकन पोलिटिक्स' का प्रकाशन हुआ। लेखक ने 1966 के जून महीने में 120 मील के राजपथ पर जेम्स मेरेडिथ के एकल मार्च अगेंस्ट फ़ीयर से बात शुरू की है। उस यात्रा में उन्हें दक्षिणी प्रांतों के अत्यंत पार्थक्यवादी क्षेत्रों से गुजरना था। उन्हें उम्मीद थी कि उनके इस साहसिक अभियान से जिम क्रो कानूनों के विरोध को मदद मिलेगी। दूसरे दिन उन पर गोली चली जिससे वे घायल हो गए। अब मार्च में विभिन्न संगठनों के बहुतेरे कार्यकर्ता शामिल हुए। वे अधिकतर नरमपंथी थे लेकिन तनाव बढ़ता गया। वे लोग रास्ते में अश्वेत लोगों को मतदाता के बतौर पंजीकृत करने की अपील करते। कुछ दिन बाद एक कार्यकर्ता को पुलिस ने गिरफ़्तार कर लिया। उसने रैली में कहा कि सताइसवीं बार उसे गिरफ़्तार किया गया है और अब वह जेल नहीं जाएगा। उसने कहा कि बरसों से अश्वेत लोग आजादी मांग रहे हैं और अब समय आ गया है कि काले लोग अपनी ताकत दिखाएं। उसके इस भाषण से उदारवादी समेकन की धीमी प्रक्रिया से नौजवानों की निराशा को स्वर मिला। काले लोगों की ताकत की यह धारणा उत्तरी प्रांतों के राजनीतिक हलकों में विकसित हुई, दक्षिणी प्रांतों में पार्थक्य की समाप्ति से इसे बल मिला और उपनिवेशवाद विरोध ने इसे लहर में बदल दिया।

2008 में कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस से मेरिलीन लेक और हेनरी रेनॉल्ड्स की किताब 'ड्राइंग द ग्लोबल कलरलाइन: ह्वाइट मेन'स कंट्रीज ऐंड द इंटरनेशनल चैलेन्ज ऑफ़ रेशियल इक्वलिटी' का प्रकाशन हुआ। लेखकगण ने बताया है कि 1910 में ड्यु बोइस ने एक लेख लिखकर घोषित किया कि अचानक दुनिया ने गोरेपन को महत्वपूर्ण मान लिया है और गोरे लोग अपनी चमड़ी के रंग पर अभिमान करने लगे हैं। इससे दस साल पहले उन्होंने कहा था कि बीसवीं सदी की समस्या चमड़ी के रंग की समस्या है। वे मानते थे कि अश्वेत के भीतर दो आत्माओं की मौजूदगी रहती है। एक ओर वह अमेरिकी होता है और दूसरी ओर

अश्वेत होता है। इनके चलते उसका चिंतन और उसकी रुझान में भी दोरंगा वैपरीत्य होता है। गोरे अमेरिका का अन्याय, संघर्ष और दमित आकांक्षाओं का काला इतिहास है। इन दोनों आत्माओं को मिलाकर अश्वेत मनुष्य बेहतर मानस गढ़ना चाहता है। यह समस्या केवल अमेरिका तक सीमित नहीं है, इसका विस्तार वैश्विक है। उपनिवेशवाद को भी वे रंगभेद की इसी व्यवस्था का अंग मानते थे। उनका कहना था कि इसके चलते गोरापन लगभग धर्म की तरह श्रेष्ठ हो चला है। उन्हें लगा कि चमड़ी के रंग के बारे में पहले भी लोग सचेत रहा करते थे लेकिन व्यक्तियों में गोरेपन की खोज आधुनिक परिघटना है। गोरापन हमेशा के लिए धरती का मालिक होने का मामला है। ड्यु बोइस के इसी तर्क को आगे बढ़ाते हुए लेखक कहते हैं कि गोरेपन की इस उन्मादी लालसा का कारण इस मालिकाने का खतरे में पड़ना है। इसमें दुनिया भर के उपनिवेशित अश्वेतों के विद्रोह की प्रतिक्रिया की झलक मिलती है।

2010 में ए बी सी क्लीयो के ग्रीनवुड प्रेस से गेराल्ड हार्ने की किताब 'डब्ल्यू ई बी ड्यू बोइस: ए बायोग्राफी' का प्रकाशन हुआ। लेखक ने किताब की शुरुआत 1951 में नब्बे साल की उम्र में ड्यु बोइस की गिरफ़्तारी से की है। उन्हें इस किस्म के बरताव की कोई अपेक्षा नहीं थी क्योंकि लेखक और कार्यकर्ता तथा राजनेता के रूप में उनकी ख्याति अमेरिका के बाहर भी थी। समय बदल चुका था और उन्हें इस बदलाव को मानना पड़ा। दूसरे विश्वयुद्ध में अमेरिका का साथ देने के बाद अब सोवियत संघ को दुश्मन माना जा रहा था। इसके बावजूद वे सोवियत संघ के साथ दोस्ती की वकालत कर रहे थे। उन्हें आशंका थी कि दोनों के बीच परमाणु युद्ध की स्थिति में मानवता खत्म हो जाएगी। उन पर सोवियत संघ का एजेंट होने का आरोप था। कारण कि हिरोशिमा और नागासाकी की बरबादी के बाद परमाणु हथियारों पर प्रतिबंध की मांग करने वाली एक अंतरराष्ट्रीय संस्था की अध्यक्षता उन्होंने स्वीकार की थी। दोनों महाशक्तियों के बीच तनाव बढ़ने की स्थिति से चिंतित होकर शांति के लिए एक प्रदर्शन में वे शामिल हुए थे। प्रदर्शन में शामिल होना उनके लिए नया नहीं था।

23 फ़रवरी, 1868 को उनका जन्म हुआ था जब गुलामी की समाप्ति के बाद पुनर्निर्माण का समय था। लेकिन इस सुबह पर ग्रहण लग गया। नस्ली पार्थक्य या जिम क्रो कानूनों ने अश्वेतों के जीवन को नरक बना दिया था। 27 अगस्त, 1963 में घाना में उनका निधन हुआ। नागरिक अधिकार कानून और मतदान अधिकार कानून का लाभ वे नहीं उठा सके। दोनों कानून उनके निधन के बाद पारित हुए। उनका पूरा जीवन बराबरी के लिए लड़ने में बीता। अपने उथल-पुथल भरे जीवन में इस मकसद के लिए प्रत्येक अवसर का उन्होंने इस्तेमाल किया। इसके लिए उन्होंने नस्ली समेकन, अश्वेत राष्ट्रवाद, अफ़्रीकावाद से लेकर मार्क्सवाद तक सब कुछ को आजमाया। अश्वेतों के बारे में उनका लेखन बेहद महत्व का है। उन्हें लगा कि जिनके बारे में लिखने से उन्हें प्रसिद्धि मिल रही है वे तो भीड़ हत्या, कर्ज, बेरोजगारी और रंगभेद से तबाह हैं। इसके बाद उन्होंने सक्रिय आंदोलन का रास्ता अपनाया। सबसे पहले उन्होंने बुकर टी वाशिंगटन का

विरोध किया जो सत्ता के विरोध को तिलांजलि देकर व्यावसायिक प्रगति पर ध्यान देने की वकालत कर रहे थे। उन्होंने जिस संगठन की स्थापना की उसने पार्थक्य विरोध की लड़ाई का नेतृत्व किया। एक पत्रिका निकाली जिसके कुछ ही दिनों में हजारों ग्राहक हो गए। अश्वेत राष्ट्रवाद से वैचारिक जुड़ाव के चलते उन्होंने संगठन छोड़ दिया। उन दिनों 'अफ़्रीका की ओर' का आकर्षण अश्वेतों में व्याप्त था।

2011 में वर्सो से जुआन गोन्ज़ालेज और जोसेफ टोरेस की किताब 'न्यूज फॉर ऑल द पीपुल: द एपिक स्टोरी ऑफ़ रेस ऐंड द अमेरिकन मीडिया' का प्रकाशन हुआ। लेखकों का कहना है कि दुनिया में शायद ही किसी अन्य देश के लोग दैनिक समाचार के आधार पर अपनी छवि बनाने के उतने आदती होंगे जितने अमेरिकी लोग होते हैं। बहुत पहले से आबादी के लिहाजन अखबार की खपत अमेरिका में बहुत अधिक रही है। इस समय सूचना और समाचार के आधिक्य से देश ऊब चूभ है। खबर का असर आधुनिक समाज में लोगों पर तत्काल पड़ता है। इसके बावजूद अधिकतर अमेरिकी आस-पास की दुनिया से अनजान रहते हैं। समाचार उत्पादकों की विश्वसनीयता घटती जा रही है। किताब में अमेरिकी समाज में खबर तंत्र और मीडिया के असर का विवरण तो है लेकिन इस विषय की अन्य किताबों से इसकी भिन्नता दो मामलों में है। एक कि अमेरिका में वैसा मीडिया क्यों बना जैसा दिखाई देता है। इसका रिश्ता लोकतंत्र में प्रेस की भूमिका के बारे में नेताओं की राय से है। दूसरे इसमें अखबार, रेडियो और टेलीविजन द्वारा नस्ल की प्रस्तुति की परीक्षा की गई है। इस मामले में जनता को भ्रमित करने और नस्ली पूर्वाग्रह विकसित करने में ढेर सारे प्रमाण इस किताब में एकत्र किए गए हैं।

2014 में बेसिक बुक्स से एडवर्ड ई बैप्टिस्ट की किताब 'द हाफ़ हैज नेवर बीन टोल्ड: स्लेवरी ऐंड द मेकिंग ऑफ़ अमेरिकन कैपिटलिज्म' का प्रकाशन हुआ। किताब में अमेरिका के दक्षिणी प्रांतों से भागकर आए गुलामों के बल पर गृहयुद्ध में अमेरिकी सेनाओं की जीत और इसके फलस्वरूप गुलामी की समाप्ति की कहानी है। युद्ध के खात्मे के बाद मुक्त हुए गुलामों के लिए साक्षरता अभियान चला। इसके लोग बाद में स्कूल अध्यापक बने और लाखों अश्वेतों की शिक्षा का काम किया। गृहयुद्ध में गुलामी के सवाल पर गोरे ही आपस में लड़े थे। उत्तरी प्रांतों के लोगों को दक्षिणी प्रांतों के गुलाम मालिकों का अहंकार परेशान करता था। युद्ध में वे जीते लेकिन उसके बाद के काम की जिम्मेदारी उन्होंने कभी नहीं ली। जिम क्रो कानूनों ने इन प्रांतों में अश्वेतों के साथ अमानुषिक पार्थक्य स्थापित किया और उन्हें मतदान के अधिकार से वंचित रखा। बात न मानने वाले अश्वेतों की भीड़ हत्या होती रही। दक्षिणी प्रांतों के बाहर भी रंगभेद का प्रसार हुआ। अनेक गोरे इस बात में यकीन करते थे कि गोरे लोग अधिक मूल्यवान होते हैं। उनकी चमड़ी का रंग उनकी श्रेष्ठता का द्योतक है। वे अपने को रूसी, इतालवी, ग्रीक और स्लाव यहूदियों से भी श्रेष्ठ समझते थे। बीसवीं सदी के आरम्भ तक भी अमेरिकी इतिहासकार यही साबित करते रहे कि गुलामी से गोरों की बरतरी सिद्ध है इसलिए अश्वेत समुदाय के साथ जिम क्रो कानूनों और उन्हें मतदान से वंचित रखकर कोई अन्याय नहीं हो

रहा। यह भी कहा जाता था कि गुलामी का मकसद मुनाफ़ा कमाना नहीं था और प्लांटेशनों के मालिक बहुत उदारमना हुआ करते थे। वे यह भी बताते थे कि इसके कारण कपास का उत्पादन सस्ती दर पर होता रहा है।

2017 में सिटी लाइट्स बुक्स से मुमिया-अबू जमाल की किताब 'हैव ब्लैक लाइव्स एवर मैटर्ड?' का प्रकाशन हुआ। लेखक ने इस किताब को उत्पीड़ितों के इतिहास के रूप में लिखने की कोशिश की है। हाल के दिनों में अमेरिका में अश्वेतों की हत्याओं के प्रतिवाद में नारे के रूप में ब्लैक लाइव्स मैटर का प्रयोग हुआ था। उसी नारे के सहारे इस लेखक का कहना है कि काले लोगों की जान अगर आज महत्वहीन समझी जा रही है तो उसे कभी महत्व की चीज नहीं समझा गया था। जिस समय का इतिहास किताब में दर्ज किया गया है उसमें महामंदी के बाद का सबसे बड़ा आर्थिक संकट, हिप हाप का सांस्कृतिक प्रभुत्व, बड़े पैमाने पर अश्वेतों की कैद, ओबामा का राष्ट्रपति होना, अश्वेत आंदोलन का प्रसार और ट्रम्प का अप्रत्याशित उभार शामिल हैं। इस दौरान अश्वेत राष्ट्रपति रहते हुए भी अश्वेतों को लगातार खौफ़ का सामना करना पड़ा। अमेरिकी समाज के तमाम अदृश्य क्षेत्रों में अश्वेत, आप्रवासी और गरीबों का बहुमत है। उनके बीच विद्रोही, उदीयमान और क्रांतिकारी आकांक्षा, चिंतन और जीवन का व्यापक प्रसार हुआ। दमन से ही एकजुटता, प्रतिरोध, विद्रोह और बदलाव का जन्म होता है। प्रत्येक नए कत्ल के साथ इस एकजुटता और प्रतिरोध की अभिव्यक्ति तीखी होती गई। इन आंदोलनों को अश्वेत स्त्रियों ने जन्म दिया था और यह अश्वेत स्त्रियों के विद्रोही इतिहास की संगति में ही था।

2018 में विलियम एफ़ पेपर की किताब 'ऐन ऐक्ट ऑफ़ स्टेट: द एक्सक्यूशन ऑफ़ मार्टिन लूथर किंग' का प्रकाशन की पचासवीं सालगिरह पर नया संस्करण प्रकाशित हुआ। सबसे पहले यह किताब 2003 में छपी थी। उसके बाद 2008 में इसका फिर से प्रकाशन हुआ था। लेखक का कहना है कि जिस व्यक्ति पर उनकी हत्या का आरोप लगाया गया था उसे अदालत ने निर्दोष पाया। तीस दिन तक चले मुकदमे में जितने सबूत आए उनके आधार पर लेखक इस हत्या को अमेरिकी खुफ़िया तंत्र, नस्ली माफ़िया, स्थानीय पुलिस और सरकारी अधिकारियों का संयुक्त काम मानते हैं। वे किंग द्वारा वियतनाम युद्ध के विरोध को खामोश कर देना चाहते थे और राजधानी में उनके प्रस्तावित धरने को कामयाब नहीं होने देना चाहते थे। गोली लगने के बाद भी वे जीवित थे। अस्पताल में सर्जन ने उनके मुंह पर तकिया रखकर उनकी जान ली। इस कृत्य को नर्स ने देखा था।

2018 में ज़ेड बुक्स से केहिंडे एन्ड्रूयूज की किताब 'बैक टु ब्लैक: रीटेलिंग ब्लैक रैडिकलिज्म फॉर द 21स्ट सेन्चुरी' का प्रकाशन हुआ। लेखक ने नए समय में अश्वेत आंदोलन के उभार से बात शुरू की है लेकिन पृष्ठभूमि में पुराने जमाने का क्रांतिकारी आंदोलन मौजूद है। पहले की तरह यह आंदोलन भी पुलिस के हाथों अश्वेत युवकों की हत्या के विरोध में पैदा हुआ है। उसी तरह विरोध में लिकले जुलूसों में मृतक के

परिवारी लोगों ने न्याय की भावुक गुहार लगाई है। इस समय अगर साठ के दशक की याद आ रही है तो इसका मतलब कि पिछले पचास सालों में हालात बदले नहीं हैं। प्रदर्शन दूर देशों में घटी घटनाओं के विरोध में भी हुए जिससे नस्लवाद और उसके विरोध की अंतरराष्ट्रीय मौजूदगी का पता चलता है। चमड़ी का काला होना व्यक्ति को संदिग्ध बना देता है। अश्वेतों की बस्तियों में रहना सरकार के निशाने पर आने के लिए पर्याप्त है। इंग्लैंड में आबादी में 3% होने के बावजूद जेल में 13% अश्वेत हैं। पिछले वर्षों में इंग्लैंड और अमेरिका दोनों ही जगहों पर हासिल कुछ अधिकारों ने नस्ली भेदभाव के प्रति लोगों के दिमाग में गफ़लत पैदा कर दी थी। लगने लगा था कि समता और समावेश की नीति के सहारे अश्वेत आबादी भी प्रगति के पथ पर भागीदार के बतौर चलेगी। सचाई यह है कि राष्ट्रपति भवन में अश्वेत व्यक्ति की लंबी मौजूदगी के बावजूद अश्वेत जीवन का अवमूल्यन हुआ।

लेखक का मानना है कि अश्वेत आंदोलन की कोई एक ही धारा नहीं है। उनमें भी आपसी भेद हैं। कुछ लोग मैल्कम एक्स तक को नागरिक अधिकार आंदोलन से जोड़कर देखते हैं जब कि वे इस आंदोलन की गंभीर आलोचना करते थे। समकालीन होने के बावजूद नागरिक अधिकार आंदोलन के नेता मार्टिन लूथर किंग से उनकी मुलाकात भी बहुत कम हुई थी। उनके बीच के मतभेद बुनियादी थे। नागरिक अधिकार आंदोलन को अश्वेत राजनीति में उदारवादी परंपरा का प्रतिनिधि कहा जाना चाहिए। ये लोग नस्ली विषमता की बात तो करते थे लेकिन उसका समाधान व्यवस्था के भीतर ही खोजते थे। इसीलिए ओबामा की जीत को बहुतेरे लोग उस धारा की चरम परिणति मानते हैं। सरकारी तंत्र में अधिकाधिक अश्वेतों के प्रतिनिधित्व की वकालत इसी धारा की निरंतरता है। इसके विपरीत मैल्कम एक्स अश्वेत राजनीति की क्रांतिकारी धारा से जुड़े हुए थे। उनके लिए व्यवस्था ही समस्या थी। इस व्यवस्था के भीतर पुलिस में अश्वेत सिपाहियों की भर्ती से वे ही अश्वेत युवकों का कत्ल करेंगे। यही दक्षिण अफ्रीका के मामले में दिखाई दे रहा है। अश्वेत राजनीति की उसी क्रांतिकारी परंपरा की वापसी इस किताब का घोषित मकसद है। फिलहाल क्रांतिकारिता बदनाम धारणा हो गई है। इस्लामी चरमपंथ के आगमन के साथ क्रांति को उसके साथ ही हिंसा का समानार्थी बना दिया गया है लेकिन लेखक के अनुसार क्रांतिकारिता और चरमपंथ एक दूसरे से पूरी तरह अलग हैं।

2018 में बीकन प्रेस से क्रिस्टल एम फ़्लेमिंग की किताब 'हाउ टु बी लेस स्टुपिड एबाउट रेस: ऑन रेसिज्म, ह्वाइट सुप्रीमेसी, ऐंड द रेशियल डिवाइड' का प्रकाशन हुआ। लेखक के मुताबिक औपनिवेशिक नरसंहार और गुलामी के जरिए स्थापित देश में सौ साल बाद लोग इस दुखद सचाई का सामना करने को मजबूर हैं कि नस्ल अब भी मौजूद है। इसके बावजूद कुछ चीजें काफी भ्रामक हैं। आखिर दो बार किसी अश्वेत को राष्ट्रपति चुनने के बाद उसी देश में एक नस्ली नेता राष्ट्रपति कैसे चुन लिया गया। जो गोरे उदारवादी अपने ट्रम्प समर्थक मित्रों या रिश्तेदारों का मुकाबला नहीं कर पा रहे वे ही प्रतिरोध का नेतृत्व करने का दावा कैसे कर रहे हैं। ओबामा के जमाने में मुस्लिम लोगों के साथ अन्याय पर जिनकी जुबान नहीं

खुली वे अब एक रिपब्लिकन के राष्ट्रपति होने पर अचंभा जता रहे हैं। गोरी चमड़ी की श्रेष्ठता तले जब तमाम अश्वेत दबाए जा रहे हैं तो कुछ लोग अपने भोलेपन में प्यार मुहब्बत के सहारे नस्ली विभाजन पर विजय पाने का सपना देख रहे हैं। नस्ल के बारे में असल में कोई सही अध्ययन नहीं है। पाठ्यक्रम की जो किताबें हैं भी उनमें झूठ, असत्य और गलत तथ्य मौजूद हैं। इसीलिए उनको लगता है कि नस्ल के बारे में इतने भारी अज्ञान के साथ मार्टिन लूथर किंग की बातें कैसे समझी जा सकती हैं। नस्ल का सवाल बहस, विवाद और झगड़े की वजह रहा है फिर भी सारी पहचानों के बावजूद इस पर सहमति होनी चाहिए कि नस्ल का सवाल सर्वव्यापी है। इसके बावजूद नस्ल के बारे में फैले अज्ञान का कारण भी नस्ल ही है। गोरी चमड़ी के श्रेष्ठता बोध से निर्मित मानस के चलते समाज, इतिहास और व्यक्ति के बारे में सही समझ नहीं बन पाती।

2018 में बीकन प्रेस से जोसेफ रोजेनब्लूम की किताब 'रिडेम्पशन: मार्टिन लूथर किंग, जूनियर'स लास्ट 31 आवर्स' का प्रकाशन हुआ। 1968 में जिस समय किंग की हत्या हुई उसके कुछ ही दिन बाद लेखक उसी जगह प्रशिक्षु पत्रकार के तौर पर काम करने गए थे। तब पत्रकारों के बीच बातचीत का एकमात्र विषय वही घटना थी। तभी उन्होंने इस तरह की किताब लिखने का इरादा किया था। चालीस साल बाद जाकर किताब लिखी जा सकी। इस बीच उन्होंने उनकी बहुतेरी जीवनियों पर नजर डाली। उनमें आखिरी समय के बारे में एकाध अध्याय होते थे। उनके हत्यारे के बारे में तो कोई बात ही नहीं होती थी। होती भी तो बस यही सवाल उठाया जाता कि उसने हत्या क्यों की और उस योजना में और लोग भी शामिल थे या नहीं। विस्तृत छानबीन से केवल यह निकला कि वह घोर नस्लवादी था। हत्या के मकसद से परदा अब तक नहीं उठा है। उसके दो भाइयों को षड़यंत्र का भागीदार बताया गया।

असल में अंतिम दिनों में किंग अपने जीवन के सबसे महत्वाकांक्षी अभियान में जुटे थे। दस साल से नस्ली पार्थक्य और भेदभाव के खात्मे की लड़ाई लड़ने के बाद वे अब अमेरिका से हमेशा के लिए गरीबी खत्म करने के अभियान में लगे। वाशिंगटन में झोपड़ी डालकर धरने में बसने के लिए वे हजारों गरीब लोगों को गोलबंद कर रहे थे। उनका संकल्प था कि जब तक विधान बनाने वाले गरीबी हटाने का विस्तृत कार्यक्रम पारित नहीं करते तब तक वे गरीबों की अपनी फौज का धरने में नेतृत्व करेंगे। उनकी जीवनियों में आखिरी वक्त में चार तिथियां बड़े महत्व की हैं। 18 मार्च को वे कूड़ा कामगारों की हड़ताल के पक्ष में आयोजित रैली में बोलने इस जगह आए थे। दस दिन बाद 28 मार्च को हड़ताल के पक्ष में आयोजित जुलूस का नेतृत्व करने आए जिसमें टकराव हुआ। फिर 3 अप्रैल को शांतिपूर्ण जुलूस संगठित करने आए। उनको लगा कि अगर जुलूस बिना किसी टकराव के संपन्न हो जाता है तो राजधानी का प्रस्तावित धरना भी शांतिपूर्ण रहेगा। अगले ही दिन उनकी हत्या हो गई। इन उपर्युक्त परिस्थितियों में उन्हें एक व्यक्ति के षड़यंत्र की बात पर भरोसा नहीं होता। इसी वजह के चलते उन्होंने थोड़ी और छानबीन की जरूरत समझी।

2018 में वर्सो से पेरो गाग्लो डागबोवी की किताब 'रीक्लेमिंग द ब्लैक पास्ट: द यूज ऐंड मिसयूज आफ़ अफ्रीकन अमेरिकन हिस्ट्री इन द ट्वेन्टी-फ़र्स्ट सेन्चुरी' का प्रकाशन हुआ। लेखक इतिहास के अध्यापक हैं और अमेरिका में अश्वेत समुदाय का इतिहास पढ़ाते हैं। उनसे मिलने वाले लोग अक्सर आम इतिहास की बात तो करते हैं लेकिन उनके विषय से संबंधित शायद ही कोई सूचना उनके पास होती हो। लेखक के अनुसार अमेरिकी लोग अश्वेत संस्कृति की व्याप्ति के तो आदी हैं लेकिन उनकी सोच में अश्वेत इतिहास की जगह बहुत कम होती है। गुलामी और पार्थक्य का शर्मनाक अश्वेत इतिहास सामान्य बातचीत का हिस्सा नहीं बन सका है। इसके विपरीत अश्वेत बुजुर्गों से मुलाकात होने पर वे लगभग हमेशा पुराने दिनों का कोई किस्सा सुनाते हैं और इतिहास के दोहराए जाने पर अफ़सोस जाहिर करते हैं। इससे लेखक को मौखिक इतिहास की सामग्री प्राप्त होती है।

2018 में हेमार्केट बुक्स से माइकेल बेनेट और डेव ज़िरिन की किताब 'थिंग्स दैट मेक ह्वाइट पीपुल अनकम्फ़र्टेबुल' का प्रकाशन हुआ। लोगों को संकट से उबारने वाले मिथकीय कार्टून नायकों के रंगभेद पर टिप्पणी से किताब की शुरुआत होती है। अश्वेत बच्चों की याद में ऐसे किसी महानायक की तस्वीर नहीं होती जो उनके लोगों को बचाने के लिए आता हो। इसलिए अश्वेत बच्चों के नायक खिलाड़ी होते हैं। वे ऊंची-ऊंची इमारतों पर छलांग तो नहीं लगाते लेकिन खेल के मैदान में सरपट भागते हुए तमाम अवरोध पार करते जाते हैं। इनको वे अपने लोग महसूस होते हैं। उनके साथ उम्मीद, बदलाव, शिक्षा और विवेक जुड़े चले आते हैं। उनके जैसा दिखने के चक्कर में बच्चे जर्सी और खिलाड़ियों के जूते पहनते हैं। मुहम्मद अली जैसे लोग उनके हीरो होते हैं। जब ये किसी अन्याय का विरोध करते हैं तो लगता है जैसे वे इनको ही बचाने के लिए जूझ रहे हैं। इस तरह लेखक ने अश्वेत समुदाय के सांस्कृतिक मानस को बनाने वाली स्थितियों को स्पष्ट किया है।

2019 में प्लूटो प्रेस से कोजो कोरम के संपादन में 'द वार आन ड्रग्स ऐंड द ग्लोबल कलर लाइन' का प्रकाशन हुआ। संपादक की प्रस्तावना के अतिरिक्त किताब में नौ लेख संकलित हैं। संपादक के मुताबिक ड्यू बोइस का मत था कि समूची बीसवीं सदी की समस्या नस्ल की समस्या है। साम्राज्यों की उन्नीसवीं सदी में यूरोपीय औपनिवेशिक ताकतों ने दुनिया भर के संसाधनों और भूभागों पर कब्जा करने के लिए आपस में होड़ लगाई। इनके आचरण में चमड़ी के रंग पर आधारित ऊंच-नीच की नस्ली सोच निहित थी। धरती पर गोरों के अधिकार के पीछे इसी तर्क का इस्तेमाल किया गया। बीसवीं सदी में इस साम्राज्यवादी विश्व व्यवस्था में आंतरिक अंतर्विरोध पैदा होने लगे और सदी के मोड़ पर ही युद्ध शुरू हो गए। इसी संदर्भ में ड्यू बोइस ने ठीक ही कहा कि साम्राज्यवाद द्वारा निर्मित इस वैश्विक रंगभेद को दुरुस्त करना बीसवीं सदी का कार्यभार है। इसके जरिए ही नई और सार्वभौमिक विश्व व्यवस्था की कल्पना संभव है। बीसवीं सदी में कुछ हद तक इस कार्यभार को अंजाम भी दिया गया और उम्मीद थी कि आगामी सदी में

इसे पूरी तरह समाप्त कर लिया जाएगा। इक्कीसवीं सदी में इस उम्मीद का कोई कारण नजर नहीं आता। उपनिवेशों की औपचारिक मुक्ति के बावजूद रंगभेद आधारित वैश्विक विभाजन समाप्त नहीं हुआ है। कानून की दुनिया से उसकी विदाई के बावजूद विभिन्न क्षेत्रों में उसका पुनरुत्पादन जारी है।

2020 में बेसिक बुक्स से पेनिएल ई जोसेफ की किताब 'द स्वर्ड ऐंड द शील्ड: द रेवोल्यूशनरी लाइव्स ऑफ़ मैल्कम एक्स ऐंड मार्टिन लूथर किंग जूनियर' का प्रकाशन हुआ। अमेरिका के अश्वेत आंदोलन में इन दोनों नेताओं को आपस में भिन्न-भिन्न रास्तों का पैरोकार माना जाता है। उनकी इस भिन्नता को शीर्षक में सही तरीके से व्यक्त किया गया है। मैल्कम एक्स को अधिक क्रांतिकारी और मार्टिन लूथर किंग को अपेक्षाकृत नरम विचारों का माना जाता है। समानता यह है कि दोनों ही नेताओं का कत्ल हुआ था। किताब की शुरुआत 26 मार्च 1964 से होती है जब अमेरिका की सीनेट में नागरिक अधिकार बिल पर बहस हुई थी। इसको पारित होने से रोकने में नस्ली न्याय के विरोधी बहुत समय से लगे हुए थे। इस बिल के पारित होने से नस्ली भेदभाव के खात्मे के चलते देश बहुनस्ली लोकतंत्र के करीब पहुंच जाता। उस बहस को सुनने के लिए दोनों नेता सीनेट में मौजूद थे और बहस के बाद एक साथ सीढ़ी से उतरते देखे गए। किंग को नस्लभेद विरोधी आंदोलन का सबसे बड़ा प्रतीक माना जाता था और वहां उनकी मौजूदगी से बहस की गरिमा में इजाफ़ा हुआ। दूसरी ओर मैल्कम एक्स की वहां मौजूदगी से पत्रकारों और दर्शकों को भय और अचम्भा महसूस हुआ। उनके इस्लाम समर्थक आंदोलन का समर्थन अश्वेतों में बहुत अधिक था लेकिन गोरे लोग उससे डरते थे। नस्ली दमन के विरोध में जारी संघर्ष के प्रवक्ता की हैसियत उनको प्राप्त थी। उन्हें अमेरिका में नस्ली न्याय का सबसे जुझारू योद्धा माना जाता था। उन्होंने प्रेस के लोगों से कहा कि वे बिल को पारित होते देखना चाहते हैं लेकिन इसके पारित हो जाने पर भी नस्ली समानता की लड़ाई जारी रहेगी क्योंकि इस तरह के काम कानून के मुकाबले जन जागृति से पूरे होते हैं। वे पहली बार सीनेट भवन में घुसे थे। मार्टिन लूथर किंग ने भी बिल के पारित होने के बाद राष्ट्रीय स्तर पर सीधी कार्रवाई की योजना घोषित की। कुछ ही दिन पहले मैल्कम एक्स ने उन्हें नरमपंथी कहा था। किंग ने बिल पारित न होने की सूरत में नस्ली तनाव बढ़ने की आशंका जताई। दोनों नेता मानते थे कि अमेरिका में नस्ली भेदभाव को टिकाए रखने में हिंसा की बड़ी जबरदस्त भूमिका है। इसके कारण काले लोगों पर गोरों की हिंसा वैध, कानूनी और नैतिक मानी जाती थी जबकि कालों की आत्मरक्षा को अपराध, खतरनाक और कानून व्यवस्था के लिए हानिकर माना जाता था।

(**परिचय :** लेखक अंबेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली के हिंदी विभाग में प्रोफेसर हैं। प्रो. गोपाल प्रधान ने विश्व साहित्य की कई महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का अनुवाद, समसामयिक मुद्दों पर लेखन और उनका संपादन किया है।)

मणिपुर में हिंदी पत्रकारिता का अभियान

देवराज

संपर्क : 7599045113

[लेखक ने सन् 1985 में मणिपुर में हिंदी पत्रकारिता के इतिहास की खोज प्रारंभ की थी। बाद के वर्षों में संपूर्ण पूर्वोत्तर भारत तक इस खोज का विस्तार हुआ। मणिपुर की हिंदी पत्रकारिता के इतिहास पर केंद्रित पहला आलेख राजेंद्र अवस्थी के संपादन में प्रकाशित कादम्बिनी पत्रिका (वर्ष 36, अंक 4, फरवरी-1996) में प्रकाशित हुआ था। यह आलेख कुछ नवीन तथ्यों के आधार पर परिवर्धित होकर सन् 2001 में सुरेश गौतम और वीणा गौतम के संपादन में प्रकाशित ग्रंथ, भारतीय पत्रकारिता : कल, आज और कल (सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली) में प्रकाशित हुआ। इस बीच खोज जारी रही और अन्य नवीन तथ्य उपलब्ध हुए। फलस्वरूप इसका एक परिवर्धित रूप सन् 2014 में अरिबम ब्रजकुमार शर्मा की पुस्तक, हिंदी को मणिपुर की देन (यश पब्लिकेशंस, दिल्ली) में सम्मिलित किया गया। तब से अब तक जो तथ्य उपलब्ध हुए, उन्हें सम्मिलित करते हुए इस आलेख का नवीनतम परिवर्धित रूप प्रस्तुत किया जा रहा है। सूचनीय है कि खोजकर्ता को प्रारंभ से लेकर अब तक अपने खोजे मात्र एक तथ्य में संशोधन करना पड़ा है, शेष प्रत्येक परिवर्धन में नवीन तथ्य जोड़े गए हैं।]

पृष्ठभूमि :

मणिपुर में हिंदी पत्रकारिता की पृष्ठभूमि का गहरा संबंध 'आज़ाद हिंद फौज' के विजय अभियान और दूसरे विश्व-युद्ध से है। दक्षिण-पूर्व एशिया के जिस हिस्से में विश्व-युद्ध लड़ा गया, उसमें भारत का मणिपुर-अंचल भी आता है। आज़ाद हिंद फौज ने जापानी सेना के सहयोग से भारत को अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद से मुक्त कराने के लिए म्यानमार की ओर से अभियान शुरू किया था। सन् 1944 में आज़ाद हिंद फौज के कर्नल शौक़तअली मलिक ने मणिपुर के प्रसिद्ध सांस्कृतिक नगर, मोइराङ् पहुँच कर स्वतंत्रता-ध्वज फहरा दिया था। भारत के किसी अंचल के, साम्राज्यवाद से मुक्त होकर स्वतंत्रता की वायु में साँस लेने की यह पहली घटना थी। स्मरणीय है कि उस काल में मणिपुर का यह दक्षिणी अंचल तीन माह तक स्वाधीन रहा था।

अपने पिता हेमाम थंबालजाओ सिंह के कहने पर म्यानमार जाकर सुभाषचंद्र बोस से मिलने वाले हेमाम नीलमणि सिंह ने लेखक को बताया था कि साम्राज्यवाद से मुक्ति के अपने ऐतिहासिक-अभियान की

जानकारी जनता तक पहुँचा कर सुभाषचंद्र बोस स्वतंत्रता-संग्राम का विस्तार करना चाहते थे, लेकिन उनके पास ऐसे लोग नहीं थे, जो मणिपुरी तथा जनजातीय भाषाओं में सामग्री निर्मित कर सकें। तब उन्होंने हिंदी भाषा में पर्चे तैयार करवा कर बँटवाने का निश्चय किया। आज़ाद हिंद फौज के सैनिक अभियान के पहले ही मणिपुर के दक्षिणी भू-भाग के गाँवों-नगरों में ये पर्चे पहुँच चुके थे। यह एक अद्भुत संयोग था कि तब तक मोइराङ और उसके आस-पास के गांवों में हिंदी का कामचलाऊ ज्ञान रखने वाले कुछ लोग हो गए थे। परिणामस्वरूप, सुभाषचंद्र बोस की सूझ-बूझ का लाभ यह हुआ कि म्यानमार से सटे दक्षिण मणिपुर के गांवों और कस्बों में अनेक लोग आज़ाद हिंद फौज का सहयोग करने को तैयार हो गए। मणिपुर के लोगों द्वारा हिंदी का कामचलाऊ ज्ञान प्राप्त करने के मूल में कुछ रोचक कारण हैं। हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ने सन् 1928 में मणिपुर में हिंदी प्रचार आंदोलन प्रारंभ कर दिया था। उसके बाद राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की राज्य-शाखा के रूप में इम्फाल में मणिपुर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की स्थापना हुई। इन दोनों संस्थाओं के भी बहुत पहले धार्मिक यात्राओं के कारण मणिपुर में हिंदी का प्रवेश हो चुका था। इस प्रकार आज़ाद हिंद फौज के आने के पूर्व ही मणिपुर के अधिकांश नगरों और गाँवों में हिंदी जानने वाले कुछ-न-कुछ लोग मिलने लगे थे। इन्होंने ही सुभाषचंद्र बोस के हिंदी पर्चों की सामग्री का मणिपुरी तथा जनजातीय भाषाओं में अनुवाद करके अपने आस-पास के लोगों को स्वाधीनता-संग्राम की जानकारी दी।

इससे जो जागरण आया, उसने साधारण जनता के मन में विश्वयुद्ध के समाचारों के लिए ललक भी जगाई, जिसने अद्भुत ढंग से हिंदी पत्रकारिता की पृष्ठभूमि का निर्माण किया। उस समय मणिपुरी पत्रों का क्षेत्र सीमित था, जबकि अंग्रेजी समाचार पत्र ब्रिटिश सत्ता के प्रभाव में होने के चलते निष्पक्ष समाचार नहीं दे पा रहे थे। इसका लाभ हिंदी को मिला। प्रारंभिक हिंदी-सेवी, पं. ललिता माधव शर्मा मुंबई से 'श्रीवेंकटेश्वर समाचार' मंगा कर लोगों को सुनाने लगे। जो हिंदी पूरी तरह समझ नहीं पाते थे, उनके लिए वे समाचारों का मणिपुरी में अनुवाद कर देते थे। मणिपुर में हिंदी पत्रकारिता के इतिहास की सामग्री की खोज में मैं पं. ललितामाधव शर्मा की सुपुत्री किरणमाला शर्मा से मिला था। उन्होंने प्रयाग में महादेवी वर्मा के घर रह कर हिंदी का अध्ययन किया था और मणिपुर लौट कर आजीवन हिंदी-शिक्षण से जुड़ी रही थीं। किरणमाला शर्मा ने बताया था कि श्रीवेंकटेश्वर समाचार डाक से आता था। शाम को आस-पास के अनेक लोग ललितामाधव शर्मा के घर एकत्र हो जाते थे और शर्माजी उन्हें समाचार पढ़कर सुनाते थे। प्रारंभ में उन्होंने अनुवाद पद्धति का सहारा लिया, थोड़े दिनों बाद अनुवाद करने की आवश्यकता नहीं रही। समाचार जानने की व्याकुलता ने हिंदी शब्दों के अर्थ आसानी से लोगों के मस्तिष्क में बैठा दिए। इससे लोगों ने हिंदी सीखने की प्रेरणा भी ली और हिंदी पत्रकारिता की भूमिका भी बनी।

इतिहास :

मणिपुर में हिंदी की पहली पत्रिका द्वितीय विश्वयुद्ध के अंतिम दिनों में प्रकाश में आई। यह हस्तलिखित रूप में प्रारंभ हुई थी। दुर्भाग्य का विषय है कि वर्षों की श्रमसाध्य खोज के पश्चात् भी न तो इस

पत्रिका का नाम पता चल सका और न इसके संपादक का ही पूरा नाम ज्ञात हो सका। छोटी और महत्त्वहीन ही सही, लेकिन हमारा ध्यान हिंदी पत्रकारिता के इतिहास की एक त्रासदी की ओर जाना चाहिए। यह बताने की आवश्यकता नहीं कि विश्वयुद्ध के कारण मणिपुर का जन-जीवन अस्त-व्यस्त हो गया था, जिसके चलते सैकड़ों घटनाओं के ठोस प्रमाण और संस्थाओं के पुराने अभिलेख पूरी तरह नष्ट हो गए। उन्हीं में, इस प्रथम हिंदी पत्रिका के अंक भी हमेशा के लिए काल के गाल में समा गए । इम्फाल के पाओना बाज़ार स्थित ठाकुरबाड़ी के स्वामी, हिंदी और संस्कृत के प्रकांड विद्वान, पं. पूर्णानंद सरस्वती उस पत्रिका के प्रकाशन में सहयोगी थे। मैं उनके जीवन की संध्या में उनसे मिल सका। नियति का यह क्रूर परिहास रहा कि तब तक पंडित जी पर वार्धक्य प्रहार कर चुका था और उनकी स्मृति बहुत क्षीण हो चुकी थी। मैं दिन-दिन भर उनके पास बैठता था। आशा थी कि उन्हें किसी न किसी क्षण मणिपुर में हिंदी पत्रकारिता का प्रारंभ करने वाली पत्रिका के संबंध में सही-सही और पूर्ण जानकारी की स्मृति हो आएगी, किंतु यह आशा पूरी तरह सफल नहीं हो सकी। किसी-किसी क्षण तड़ित-कौंध की तरह एक-एक कर जो बातें उन्हें याद आई, उनसे केवल इतनी ही इतिहास-शृंखला बन सकी कि द्वितीय विश्वयुद्ध के अंतिम वर्षों में इम्फाल से एक हस्तलिखित पत्रिका प्रकाशित होनी प्रारंभ हुई थी। उसके संपादक एक जैन सज्जन थे। वे पाओना बाजार, इम्फाल के जैन मंदिर में पुरोहित का कार्य करते थे। उन्होंने समाचार तथा सामाजिक पक्षों पर लोगों को जानकारी देने के लिए यह प्रयास किया था। पत्रिका के प्रथम अंक की केवल पच्चीस प्रतियाँ तैयार की गई थीं। ठाकुरबाड़ी जैन मंदिर के एकदम निकट है, अत: पूर्णानंद सरस्वती का जैन-पुरोहित से परिचय होना स्वाभाविक था। दोनों की रुचियाँ भी समान थीं, इसलिए जब एक हिंदी पत्रिका प्रारंभ करने की योजना बनी, तो पूर्णानंद जी ने सामग्री संकलन के साथ-साथ हस्त-लिखित प्रतियाँ तैयार करने और वितरण के कार्य में सहयोग का दायित्व निभाया। पत्रिका के अंक भी सहयोग के आधार पर, अर्थात् एक पाठक द्वारा दूसरे पाठक को देकर पढ़े जाते थे। विश्व-युद्ध और साम्राज्यवाद के विरुद्ध सामाजिक जागरण तथा हिंदी पत्रकारिता के इस संबंध को समझा जाना चाहिए।

मणिपुर से दूसरी हिंदी पत्रिका सन् 1954-55 में 'साइक्लोस्टाइल्ड' रूप में प्रकाशित हुई। इसके प्रकाशन का श्रेय मोहनबिहारी, सिद्धनाथ प्रसाद, रामनाथ प्रसाद और झाबरमल जैन को है। पत्रिका का अधिकांश भार श्री मोहनबिहारी के कंधों पर था, किंतु संपादन में मुख्य भूमिका सिद्धनाथ प्रसाद की थी। सामग्री एकत्र हो जाने पर साइक्लोस्टाइल्ड की जाती थी। मुखपृष्ठ कभी सिद्धनाथ प्रसाद और कभी रामनाथ प्रसाद बनाते थे। इस पत्रिका का नाम ''कामाख्या न्यूज एक्सप्रेस'' था। मोहनबिहारी और सिद्धनाथ प्रसाद कविता-कहानियाँ रचते थे, जिन्हें इस पत्रिका में स्थान दिया जाता था। इसी के साथ समाचार और सामाजिक विषयों पर जानकारी रहती थी। पत्रिका के वितरण और भाग दौड़ का कार्य मुख्यत: झाबरमल जैन के जिम्मे थे। 'कामाख्या न्यूज एक्सप्रेस' द्वि-भाषी (हिंदी-अंग्रेजी) साप्ताहिक पत्रिका थी। कभी-कभी इसमें अनूदित सामग्री का प्रकाशन भी होता था और कभी राजस्थानी (मुख्यत: मारवाड़ी) की सामग्री भी दी

जाती थी। खोजकर्ता को झाबरमल जैन, सिद्धनाथ प्रसाद और रामनाथ प्रसाद ने पत्रिका की सामग्री की प्रकृति के साथ यह जानकारी भी दी थी कि इसके मुखपृष्ठ पर कभी 'त्रिशूल' और कभी 'कामाख्या' का रेखाचित्र भी दिया जाता था।

मणिपुर में प्रथम मुद्रित पत्रिका 15 अगस्त, सन् 1960 में नागरी लिपि प्रचार सभा द्वारा प्रकाशित की गई। 'आधुनिक'' नामक इस साप्ताहिक पत्रिका को तरूण प्रेस (स्वराज प्रेस, उरिपोक, इम्फाल) में छापे जाने का निश्चय किया गया। इसके संपादक बी. नयन शर्मा एवं सी-एच. निशान सिंह थे। प्रारंभ में प्रकाशन-संस्था और संपादक मंडल को आर्थिक कठिनाइयों का अनुमान नहीं था, किंतु जब धन की व्यवस्था नहीं हो सकी, तो इसका दूसरा अंक मासिक के रूप में और तीसरा त्रैमासिक के रूप में प्रकाशित किया गया। इन अंकों के धन की व्यवस्था निशान सिंह ने अपने प्रयास से की। शायद इसका प्रकाशन ही निशान सिंह ने अपने उत्साह के कारण, 'घर फूँक तमाशा' देखने की राह पर करवाया था, सो साप्ताहिक से त्रैमासिक तक आते-आते उन्होंने सचमुच अपना घर फूँक लिया और जब छावन भी बाकी न रहा, तो हताश निशान सिंह संपादकी छोड़कर हिंदी-मणिपुरी अनुवाद कार्य में जुटकर राष्ट्र और राष्ट्रभाषा की सेवा करने लगे। आधुनिक का एक अंक खोजकर्ता को मिला था, जिसे उसने सन् 1985 में उत्तर प्रदेश के नज़ीबाबाद नगर में आयोजित लेखक-सम्मेलन के अवसर पर लगी प्रदर्शनी में बाबा नागार्जुन और सम्मेलन-संयोजक प्रेमचंद्र जैन के कहने पर दर्शनार्थ रखा था। वहाँ से कोई उत्साही पाठक वह अंक अपने साथ ले गया, जो संभवत: उसके व्यक्तिगत पुस्तकालय की शोभा बढ़ा रहा होगा।

सन् 1964 में 'मणिपुर शुध्दि संगठन शिक्षा सम्मेलन'' द्वारा ''सम्मेलन गज़ट'' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन किया गया। इसके संपादक के. ब्रजमोहन देव शर्मा थे और इसका उद्देश्य हिंदी के माध्यम से मणिपुरी जीवन व संस्कृति को सारे भारत के सामने लाना था। 'सम्मेलन गजट' का प्रवेशांक तीन भाषाओं –हिंदी, मणिपुरी व अंग्रेजी में छापा गया था। कुछ अंक प्रकाशित होने के बाद यह पत्रिका भी बंद हो गई।

के. ब्रजमोहन देव शर्मा ने ही सन् 1972 में 'नागरिक-पंथ' नाम से एक हिंदी-मणिपुरी दैनिक पत्र का प्रकाशन प्रारंभ किया। यह बी.डी. प्रेस उरिपोक, इम्फाल से प्रकाशित किया गया। काफी वर्ष तक वहाँ से प्रकाशित होने के बाद यह नाओरेमथोड् इम्फाल से प्रकाशित होने लगा। नागरिक पंथ, दैनिक होने के कारण मणिपुर के जीवन में अपेक्षाकृत अधिक हस्तक्षेप कर सका। इसके माध्यम से थोड़ी मात्रा में ही सही, प्रतिदिन हिंदी की सामग्री पाठकों को मिलने लगी। खोजकर्ता ने अपने दीर्घकालीन मणिपुर प्रवास में सन् 1990 के पश्चात् मणिपुरी भाषा की फिल्मों की समीक्षा हिंदी में प्रारंभ की थी। इनमें से अधिकांश समीक्षाएँ नागरिक पंथ में प्रकाशित हुई थीं। हिंदी फिल्म-समीक्षा की तर्ज़ पर मणिपुरी फिल्मों के विषय में हिंदी में किया जाने वाला यह प्रथम प्रयास था। नागरिक पंथ को पूर्वोत्तर भारत में दैनिक हिंदी पत्रकारिता के प्रारंभ का श्रेय भी दिया जाना चाहिए।

सन् 1973 में इम्फाल की साहित्यिक संस्था 'चिंतना' ने एक पत्रिका प्रकाशित की। इस पत्रिका का नाम 'चिंतक' था तथा इसके संपादक आकाशवाणी इम्फाल में कार्यरत डॉ. सुशीलकांत सिन्हा थे। इसके प्रकाशन का उद्देश्य राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ बनाना और एक वैचारिक आंदोलन की शुरुआता करना घोषित किया गया था। प्रथम अंक से इस दृष्टिकोण की पुष्टि भी होती है। आशा थी कि यह अभियान गति पकड़ेगा, किंतु एक अंक के पश्चात् यह पत्रिका आगे नहीं चल सकी।

सन् 1976 में राधागोविन्द थोङ्गाम के प्रयास से उन्हीं के संपादन में 'हिंदी शिक्षक दीप' नामक पत्रिका का प्रकाशन ''अखिल मणिपुर हिंदी शिक्षक संघ'' ने किया। इस पत्रिका का मुद्रण 'दि मणिपुर गीता प्रेस, शिङजमै बाजार, इम्फाल' में होता था । इसका मुख्य उद्देश्य हिंदी भाषा का प्रचार और मणिपुर राज्य के हिंदी शिक्षकों की समस्याओं को प्रकाश में लाना था। मणिपुर से प्रकाशित हिंदी पत्रिकाओं में यह पहली थी, जिसमें पर्याप्त मात्रा में कविताएँ, भाषा संबंधी लेख, कला व संस्कृति संबंधी सामग्री और सामाजिक समस्याओं पर आलोचनात्मक सामग्री का प्रकाशन किया गया। प्रवेशांक की भव्यता के अनुरूप ही 'हिंदी शिक्षक दीप' का दूसरा अंक भी प्रकाशित हुआ, किंतु विपरीत परिस्थितियों के कारण तीसरा अंक प्रकाशित होने का अवसर नहीं आया । फिर भी इस पत्रिका ने उस सपने को एक सीमा तक अवश्य पूरा किया, जिसे ललितामाधव शर्मा ने बिना कोई पत्रिका निकाले और जैन मंदिर के पुरोहित उन अज्ञातनामा जैन सज्जन ने हस्तालिखित पत्रिका निकाल कर देखा था।

सन् 1977 में फुराइलातपम गोकुलानंद शर्मा के संपादन में 'पर्वती वाणी' नाम से एक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। इसका प्रथम अंक दिसंबर, 1977 में छपा। प्रवेशांक का मुद्रण 'मॉडर्न प्रिंटर्स, गांधी एवेन्यु, इम्फाल' के लिए 'आदिम जाति हिंदी प्रेस, मिनुथोङ् इम्फाल' द्वारा किया गया। 'पर्वती वाणी' मणिपुर से प्रकाशित ऐसी पहली पत्रिका थी, जिसने अपना केंद्रीय लक्ष्य हिंदी भाषा का प्रचार घोषित किया। यह मणिपुर राज्य की जनजातियों और अनुसूचित जातियों के लोगों के मध्य हिंदी का प्रचार-प्रसार करना चाहती थी। उन दिनों इसके संपादक गोकुलानंद शर्मा 'नागा हिंदी विद्यापीठ' के माध्यम से हिंदी प्रचार अभियान में जुटे हुए थे। यह पत्रिका तीन अंको तक छापी जाती रही, किंतु भारत सरकार ने इसके नाम को स्वीकृत नहीं दी। शर्माजी पत्रिका निकालने का संकल्प कर चुके थे, अत: उन्होंने इसका नाम बदलकर अपने मार्ग पर बढ़ने का निश्चय किया। मार्च-अप्रैल 1978 से पर्वती वाणी के स्थान पर 'पूर्वी वाणी' नामक पत्रिका प्रकाशित होने लगी । संपादक, प्रकाशक, मुद्रक, उद्देश्य आदि वही के वही रहे। यह पत्रिका सन् 1980 तक छपती रही। इसके पश्चात् किसी कारण इसका प्रकाशन स्थगित हो गया।

सन् 1980 में फुराइलात्पम गोकुलानंद शर्मा के संपादन में 'युमशकैश' नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। 'मणिपुरी हिंदी शिक्षक संघ, इम्फाल' द्वारा प्रकाशित यह पत्रिका हिंदी प्रचार के साथ-साथ साहित्य और संस्कृति के विकास को भी समर्पित थी। यह पत्रिका प्रवेशांक (1980) से लेकर संपादक के

देहांत (2017) तक प्रकाशित होती रही तथा इसने मणिपुर राज्य में हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में निरंतर प्रकाशित होते रहने वाली पत्रिका का कीर्तमान स्थापित किया। फुराइलात्पम गोकुलानंद शर्मा ने इसका नाम अपने जन्मवार (युमशकैश, अर्थात बुधवार) के आधार पर रखा था। यह मासिक रूप में प्रकाशित होने वाली ऐसी पत्रिका बनी, जिसने भाषा-शिक्षण का कार्य भी किया। इस पत्रिका के माध्यम से पारिभाषिक शब्दावली तैयार करने की योजना पर भी कार्य किया गया। युमशकैश को मणिपुर की कुछ हिंदी प्रचार संस्थाओं में घुस आई अनियमितताओं और उन्हें बढ़ाने में मुख्य भूमिका निभाने वाले केंद्र सरकार के हिंदी से जुड़े अधिकारियों के विरुद्ध आंदोलन प्रारंभ करने का श्रेय भी प्राप्त है। इस साहस के लिए संपादक और पत्रिका, दोनों को अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना भी करना पड़ा। दूसरी ओर हिंदी क्षेत्रों में युमशकैश को पर्याप्त सम्मान मिला और उसके संपादक, फुराइलात्पम गोकुलानंद शर्मा को अंतरराष्ट्रीय कला एवं संस्कृति परिषद, नजीबाबाद, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ तथा केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा द्वारा सम्मानित किया गया। मणिपुर प्रवास की अवधि में से लगभग पच्चीस वर्ष, लेखक ने इस पत्रिका के परामर्शदाता का दायित्व निभाया।

सन् 1983 में 'अखिल मणिपुर हिंदी शिक्षक संघ' द्वारा 'कुंदो परेङ्' नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया गया। कुंदो परेङ् का अर्थ है—कुंद पुष्प की माला। यह पत्रिका अपने नाम के अनुरूप भाषा रूपी पुष्पों की माला में हिंदी भाषा पुष्प को विशेष स्थान प्रदान करते हुए अपने मार्ग पर आगे बढ़ी। कुंदो परेङ् प्रारंभ में षट्मासिक थी, बाद में इसे त्रैमासिक कर दिया गया और कुछ वर्षों बाद यह अनियतकालीन हो गई। एक समय ऐसा भी आया, जब इसके अंक वार्षिक रूप में प्रकाशित होने लगे। इसका कारण आर्थिक साधनों का अभाव है। कुंदो परेङ् के प्रवेशांक का संपादकीय मणिपुरी भाषा में प्रकाशित हुआ था। यह क्रम दो वर्ष तक चला। पहले और दूसरे अंक का संपादन एस. कुलचंद्र शर्मा शास्त्री ने किया। बाद में श्री बी. नोदियाचाँद सिंह इसका संपादन करने लगे। इस पत्रिका का 'हिंदी सेवक सम्मान अंक' पर्याप्त चर्चित हुआ।

14 सितंबर, 1985 को 'मणिपुर हिंदी परिषद पत्रिका' के प्रकाशन के साथ मणिपुर राज्य की हिंदी पत्रकारिता के इतिहास में एक नए युग की शुरुआत हुई। इस पत्रिका की योजना इबोहल सिंह काङजम, राधागोविन्द थोङाम, सिद्धनाथ प्रसाद और इस लेखक ने तैयार की थी। राधागोविंद थोङाम इसके प्रथम संपादक बने। उनके सहयोग के लिए एक संपादक मंडल का भी गठन किया गया। 'मणिपुर हिंदी परिषद पत्रिका' ने हिंदी प्रचार के साथ-साथ हिंदी और मणिपुरी भाषाओं के साहित्य की उन्नति को अपना मूल उद्देश्य बनाया। इस पत्रिका के प्रत्येक अंक में मणिपुरी से हिंदी में अनूदित सामग्री प्रकाशित होने लगी। कभी-कभी कविताओं के हिंदी अनुवाद के साथ मूल-पाठ भी नागरी लिपि में प्रकाशित किया जाने लगा। इस पत्रिका ने हिंदी और मणिपुरी के रचनाकारों पर केंद्रित विशेषांक प्रकाशित किए, जो पाठकों में चर्चित हुए। हिंदी के मैथिलीशरण गुप्त और तुलसीदास तथा मणिपुरी के लमाबम कमल, हिजम अङाङ्हल,

ख्वाइराक्पम चाओबा, नीलवीर शास्त्री आदि पर केंद्रित अंक इसके उदाहरण हैं। इस पत्रिका के माध्यम से हिंदी और मणिपुरी भाषाओं का परिचय बढ़ा और साहित्यिक आदान-प्रदान को गति मिली। रचनाकारों पर केंद्रित विशेषांकों के अतिरिक्त यह पत्रिका विभिन्न रचनाकारों के साक्षात्कार और उनकी रचनाएँ भी प्रकाशित करती रही। मणिपुर हिंदी परिषद के पत्रिका विभाग ने मणिपुरी भाषा को संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल कराने की माँग को लेकर चल रहे आंदोलन के अवसर पर इस पत्रिका का 'मणिपुरी भाषा माँग विशेषांक' (वर्ष-6, अक्तूबर-नवंबर, 1990) प्रकाशित किया, जिसका संपादन इबोहल सिंह काङ्जम, लनचेनबा मीतै और इस लेखक ने किया था। भाषा मांग विशेषांक के माध्यम से सारे देश के सामने मणिपुरी भाषा व साहित्य का इतिहास तथा भाषा-माँग का औचित्य प्रस्तुत किया जा सका। 'मणिपुर हिंदी परिषद पत्रिका' मासिक के रूप में प्रकाशित हुई थी। सन् 1991 में इस लेखक को इसका संपादक बनाया गया। तब से यह 'महिम पत्रिका' नाम से त्रैमासिक के रूप में प्रकाशित होने लगी। सन् 2001 से महिप का संपादन इबोहल सिंह काङ्जम द्वारा किया जाने लगा।

मई सन् 1988 में 'मणिपुर महिला समाज' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। इसका प्रकाशन 'महिला विकास क्रेंद्र इम्फाल' द्वारा किया गया। इस पत्रिका का उद्देश्य, संपूर्ण महिला जागृति घोषित किया गया तथा प्रवेशांक के एक भीतरी पृष्ठ पर घोषणा मुद्रित की गई- 'मातृ शक्ति को सामाजिक अभिशाप से मुक्ति दिलाना हमारा लक्ष्य है।' इसका प्रवेशांक हिंदी व मणिपुरी में छपा, किंतु अधिक सामग्री हिंदी में थी। इसका विमोचन 19 मई, 1988 को किया गया। प्रवेशांक में अन्य सामग्री के अतिरिक्त मणिपुरी भाषा में इंदिरा गांधी के बारे में एक आलेख था, जबकि हिंदी में मणिपुरी वीरांगनाओं, महारानी लिन्थोइ डम्बी और याइरिपोक थंबालानु की वीरता का परिचय देने वाली जीवन कथाएँ सम्मिलित थीं। स्मरणीय है कि लिन्थोइ डम्बी ने केवल स्त्रियों के सहयोग से राज्य-रक्षा का उदाहरण प्रस्तुत करके तथा याइरिपोक थंबालानु ने अकेले ही मातृभूमि के हित के लिए अपने प्राण न्योछावर करके मणिपुरी जनता के हृदय में अपना नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित करवाया था। मणिपुर महिला समाज के दूसरे अंक में हिंदी और मणिपुरी के साथ अंग्रेजी भाषा को भी स्थान दिया गया। मणिपुरी समाज को भी चुपचाप अपने पंजों में जकड़ने को सक्रिय दहेज की कु-प्रथा, विवाह-विच्छेद, नारी-उत्पीड़न और स्त्रियों की अन्य समस्याओं को विचार-विमर्श के केंद्र में लाने वाली सामग्री का प्रकाशन भी इस पत्रिका के अंकों में हुआ। स्त्री सशक्तीकरण को केंद्रीय लक्ष्य बना कर मणिपुर से प्रकाशित होने वाली यह पहली हिंदी पत्रिका थी। इसके संपादन का भार फुराइलात्पम गोकुलानंद शर्मा ने सँभाला था, जबकि परामर्शदाता की भूमिका इस लेखक को दी गई थी।

01 जनवरी, सन् 1991 को एस. गोपेन्द्र शर्मा के संपादन में 'जगदम्बी' नामक साप्ताहिक समाचार-पत्र का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। यह साप्ताहिक जनोपयोगी समाचारों का प्रकाशन करता था, जिनमें से अधिकांश समाचार मणिपुर के संबंध में ही होते थे। इस कारण यह मणिपुर के सामान्य-जीवन का विस्तृत व

विविधरूपी परिचय देने वाले साप्ताहिक के रूप में आगे बढ़ रहा था। दस अंकों तक गोपेन्द्र शर्मा ने इसे उत्साहपूर्वक प्रकाशित किया, किंतु फिर किसी कारण उन्हें इसका प्रकाशन बंद करना पड़ा। कुछ समय बाद वे इसे हिंदी के बदले मणिपुरी दैनिक के रूप में प्रकाशित करने लगे।

जुलाई, सन् 1993 में 'नगर राज-भाषा कार्यान्वयन समिति, इम्फाल' द्वारा 'नीलकमल' नाम से एक अर्धवार्षिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया गया। इसे साइक्लोस्टाइल्ड रूप में निकाला गया। इसका संपादन-कार्य वेंकटलाल शर्मा, के.सी. शर्मा और ए.के. बक्सी ने संभाला। इस पत्रिका का उद्देश्य मणिपुर के सरकारी कार्यालयों में राजभाषा के रूप में हिंदी के व्यवहार की जानकारी देने के साथ-साथ कार्यालय कर्मियों में लेखन व पठन की प्रवृत्ति का विकास करना भी था। इसके अतिरिक्त नीलकमल के प्रवेशांक में स्थानीय साहित्यकारों की हिंदी रचनाओं व अनुवाद को भी स्थान दिया गया था।

अगस्त, सन् 1999 में श्री एस. गोपेन्द्र शर्मा ने 'चयोल-पाउ' नामक हिंदी साप्ताहिक का प्रकाशन प्रारंभ किया। इसका मोटो, लालबहादुर शास्त्री द्वारा निर्मित उद्घोष में अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा किए गए परिवर्धन के फलस्वरूप नव-निर्मित उद्घोष के शब्दों का क्रम बदल कर 'जय किसान जय जवान जय विज्ञान' रखा गया। मुखपृष्ठ पर इस समाचार साप्ताहिक का नाम मीतै-लिपि में छापा जाता था। इसमें 'दिवा स्वप्न' नाम से समसामयिक घटनाओं पर संक्षिप्त टिप्पणी करते हुए एक स्थायी स्तंभ भी प्रारंभ किया गया। समाचार साप्ताहिक होने के कारण इस पत्र में मणिपुरी जन-जीवन को प्रभावित करने वाली घटनाओं का विवरण मूल रूप से देना प्रारंभ किया गया। इसका एक पृष्ठ साहित्य को भी समर्पित किया गया, जिसके अंतर्गत मौलिक, अनूदित और समीक्षा सामग्री प्रकाशित की जाने लगी। दिनांक 9. 8. 2000 को इस पत्र की वर्षगाँठ पर इसका विशेषांक निकाला गया। एस. गोपेन्द्र शर्मा की मृत्यु के पश्चात् भी यह साप्ताहिक समाचारपत्र चलता रहा। अज्ञात कारणों से 03 जून, सन् 2007 से चयोल-पाउ का नाम 'मणिपुरी चयोल-पाउ' कर दिया गया और डॉ. आर. गोविन्द इसके मुख्य संपादक बन गए। गोपेंद्र शर्मा की पुत्री, एस. निर्मला देवी ने संपादक के रूप में कार्य करना प्रारंभ किया। परिवर्तित नाम वाले समाचार साप्ताहिक के प्रस्तुतिकरण में अधिकांश विशेषताएँ चयोल पाउ जैसी ही रहीं।

सन् 2002 में मोइराङ से एक हिंदी दैनिक का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। मणिपुर की विश्व प्रसिद्ध झील, 'लोकताक' के नाम पर इसका नाम 'लोकताक एक्सप्रेस' रखा गया। इस दैनिक के संपादक और प्रकाशक रामानंद सिंह कैशाम थे। यह केवल एक पन्ने का था और इस दैनिक के कुछ ही अंक प्रकाशित हो सके। बाद में इसके प्रकाशन का अधिकार सीएच. निशान सिंह ने प्राप्त कर लिया, किंतु वे कोई अंक प्रकशित नहीं कर पाए।

जनवरी, सन् 2007 में 'नागा हिंदी विद्यापीठ, इम्फाल' द्वारा 'लट-चम' नाम से एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया गया। इसका प्रधान संपादक एस. खंमैदुन कबुई को बनाया गया। लट-चम कबुई जनजाति की भाषा के दो शब्दों से मिल कर बना है। संपादकीय में बताया गया है कि लट का अर्थ है, भाषा या बात और चम का अर्थ है, ख़बर। इस आधार पर लटचम शब्द का प्रयोग भाषा में संवाद, भाषा में समाचार, आपस की बातचीत और कभी-कभी केवल समाचार के अर्थ में किया जाता है। लटचम मणिपुर के किसी जनजातीय हिंदी-सेवी के प्रधान-संपादन में प्रकाशित प्रथम हिंदी पत्रिका है। इस पत्रिका के प्रथम अंक में विभिन्न विषयों पर लेखों और कविताओं के साथ ही 'कबुइनागा-मैतैलोन-हिंदी 'भाषा शब्द' शरीर अंगों' शीर्षक के अंतर्गत पृष्ठ 2 और 7 पर तीन भाषाओं में शरीर के अंगों के नाम प्रकाशित किए गए हैं।

सन् 2008 में चारहजारे नामक स्थान से मासिक पत्रिका 'भारती' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। इसके मुख पृष्ठ पर कोष्ठक में लिखा गया- "निष्पक्ष, निर्भीक एवं भ्रष्टाचार विरोधी मासिक पत्रिका"। भारती के संपादक हरिमोहन पोख्रेल बने। इसके प्रवेशांक (सितंबर, 2008) में भारत सरकार और भूमिगत कुकी वर्गों के बीच वार्ता के बारे में समाचार दिया गया, जिससे मणिपुर में हिंदी पत्रकारिता के बदलते स्वरूप का संकेत मिलता है।

25 सितंबर, सन् 2011 को थोंड़ाम भारती 'कविराज' के संपादन में 'मणि कुसुम' नामक एक पत्रिका (त्रैमासिक) का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। जुलाई-सितंबर, 2011 के प्रवेशांक में इसे लोक मंगल उद्बोधनी समिति, इम्फाल द्वारा स्थापित 'हिंदी विश्व सेवा संघ' की मुख पत्रिका बताया गया।

मणिपुर की हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में मणिपुर विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग का भी योगदान है। हिंदी विभाग द्वारा संचालित 'हिंदी परिषद' ने 30 नवंबर 1987 को एक हस्तलिखित दीवार-पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया। यह पत्रिका विद्यार्थियों द्वारा तैयार की जाती थी और परिषद के निर्देशक की स्वीकृति के बाद पाठकों के लिए दीवार पर चिपका दी जाती थी। 'ऊर्जस्वी' नाम से यह दीवार-पत्रिका इस लेखक के निर्देशन में तीन वर्ष तक चलती रही। इसके पश्चात् सन् 1992 में विभाग की हिंदी परिषद ने 'प्रयास' नाम से एक साइक्लोस्टाइल्ड पत्रिका प्रकाशित करनी प्रारंभ की। यह अनियतकालीन थी। इस लेखक के प्रधान संपादकत्व में इसके प्रवेशांक की एक सौ प्रतियाँ तैयार हुई थीं और अधिकांश सामग्री छात्रों द्वारा तैयार की गई थी। मैनुअल टाइपराइटर पर सामग्री टाइप करके साइक्लोस्टाइल करने का कार्य विभाग के कार्यालय सहायक सोमरेन्द्रो शर्मा और बाइंडिंग का कार्य कार्य-सहायक एस. ब्रोजेन सिंह द्वारा किया गया था। मणिपुर के दैनिक समाचार पत्रों में प्रकाशित समाचारों को एकत्र करके उमावती और इबेहाइबी नामक छात्राओं ने दो समाचार-सर्वेक्षण प्रवेशांक में प्रकाशित कराए थे। इनमें से एक सर्वेक्षण मणिपुरी समाज में व्याप्त समस्याओं/अपराधों और दूसरा साहित्यिक-सांस्कृतिक चेतना पर केंद्रित था। दोनों सर्वेक्षणों द्वारा तत्कालीन मणिपुर के सामाजिक जीवन-यथार्थ को उजागर किया गया था।

चुनौतियाँ :

हिंदी भाषा के माध्यम से सूचना पाने की इच्छा और लघुरूपिणी ही सही, अपनी रचनात्मक भूख के समाधान के लिए मणिपुर में हिंदी पत्रकारिता की नींव पड़ी थी। दूसरे चरण में वह हिंदी प्रचार-प्रसार को गति देने वाले साधन के रूप में बदली। तीसरे चरण में उसने हिंदी और मणिपुरी भाषाओं तथा साहित्य से परिचित होने व इनके विकास का प्रयास करने वाले मार्ग का निर्माण करना प्रारंभ किया। हिंदी पत्रकारिता के प्रारंभ के काल में जो मिशनरी-भावना दिखाई दी थी, वह वातावरण और परिस्थितियों के अनुसार बदले हुए रूप में आज भी विद्यमान है। व्यावसायिक दृष्टिकोण न शुरू में था, न आज है। अत: मणिपुर की हिंदी पत्रकारिता के समक्ष चुनौती उपस्थित होने का पहला कारण व्यावसायिक दृष्टिकोण का अभाव ही है। इसके चलते न विज्ञापनों के लिए कोई ठोस प्रयास किया जाता है, न वितरण-व्यवस्था अधुनातन बनाने के लिए और न ही प्रसार संख्या बढ़ाने के लिए। पत्रिका का ग्राहक बनने के लिए आवेदन-प्रारूप युमशकैश के बैक-कवर पर अवश्य छपता था, लेकिन किसी अन्य पत्रिका में इस ओर कभी ध्यान नहीं दिया गया। परिणाम यह है कि व्यक्तिगत स्तर पर हिंदी पत्रिकाएँ व्यक्ति विशेष (जो उसका संपादक ही होता है) के पास उपलब्ध व्यक्तिगत धन से ही छपती और वितरित होती हैं, जबकि हिंदी प्रचार संस्थाओं की पत्रिकाओं के प्रकाशन का मुख्य आधार केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली द्वारा प्रदान किया जाने वाला अनुदान होता है, जो इतना कम होता है कि कोई भी पत्रिका पंद्रह-बीस पृष्ठ से अधिक की नहीं छप सकती। इससे अधिक जो पृष्ठ होते हैं, उनके लिए संस्थाओं के सदस्य चंदा करके धन की व्यवस्था करते हैं। मणिपुर हिंदी परिषद की परीक्षाओं के प्राश्निक और मूल्यांकनकर्ता के रूप में जो भुगतान प्राप्त होता था, उसे यह लेखक तत्काल पत्रिका प्रकाशनार्थ देकर रसीद ले लिया करता था। ऐसा कुछ और लोग भी करते थे। लेकिन ऐसे लघु प्रयासों से पत्रिकाओं के समक्ष उपस्थित आर्थिक संकट कम नहीं होता। एक बार यह प्रयोग किया गया कि महिप पत्रिका के कुछ अंक नगर के हिंदी प्रेमी व्यापारिक प्रतिष्ठानों के सहयोग से निकाले जाएँ। यह प्रयोग चार अंकों तक सफल रहा। इसके आगे संभावनाएँ नहीं दिखीं। केंद्रीय हिंदी निदेशालय से भी अपेक्षित सहायता नहीं मिल सकी, अत: फिर से आपस में चंदा करने वाले मार्ग पर लौटना पड़ा।

असम राज्य के गुवाहाटी से प्रकशित पूर्वांचल प्रहरी, सेंटीनल, पूर्वोदय आदि हिंदी दैनिकों को छोड़ दिया जाए, तो मणिपुर सहित किसी भी पूर्वोत्तर-राज्य की हिंदी पत्रकारिता को व्यावसायिक पत्रकारों की सेवाएँ सुलभ नहीं हैं। इसके लिए व्यवस्थित संपादकीय विभाग और उसमें स्थायी-अस्थायी अथवा अनुबंध प्रणाली के अंतर्गत नियुक्त व्यक्तियों की आवश्यकता है। मणिपुर की (और पूर्वोतर के किसी अन्य हिंदीतर भाषी प्रदेश की भी) हिंदी संस्थाओं के लिए ऐसा करना कठिन है। जो लोग इन संस्थाओं के सदस्य होते हैं, वे ही आवश्यकतानुसार हिंदी पत्रिका के प्रकाशन का दायित्व भी संभालते हैं। समय-समय पर यह दायित्व अन्य सदस्यों को दिया जाता रहता है। कई बार कुछ लोग स्वत: स्फूर्त भाव से पत्रिका प्रकाशन संबंधी कोई

दायित्व ग्रहण कर लेते हैं। अत: व्यावसायिक, प्रशिक्षित अथवा पत्रकारिता का व्यावहारिक अनुभव रखने वाले लोगों की उपलब्धता कठिन बनी रहती है। इस दशा में केवल रुचिवान हिंदी सेवियों के प्रयासों तथा उनके सीमित अनुभवों के बल पर मणिपुर में हिंदी पत्रकारिता आगे बढ़ रही है।

आलेख में उल्लिखित पत्र-पत्रिकाएँ (प्रकाशन वर्ष के अनुसार) :

1. कामाख्या न्यूज एक्स्प्रेस (1954)
2. आधुनिक (1960)
3. सम्मेलन गज़ट (1964)
4. नागरिक पंथ (1972)
5. चिंतक (1973)
6. हिंदी शिक्षक दीप (1976)
7. पर्वती वाणी (1977)
8. पूर्वी वाणी (1978)
9. युमशकैश (1980)
10. कुंदोपरेङ (1983)
11. मणिपुर हिंदी परिषद पत्रिका (1985)
12. ऊर्जस्वी (1987)
13. मणिपुर महिला समाज (1988)
14. जगदंबी (1991)
15. प्रयास (1992)
16. नीलकमल (1993)
17. चयोल पाउ (1999)
18. लोकताक एक्स्प्रेस (2002)
19. लटचम (2007)
20. भारती (2008)
21. मणि कुसुम (2011)

(**परिचय :** लेखक का मणिपुरी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति पर विशेष अध्ययन है। देवराज गंभीर चिंतक एवं सेवानिवृत्त प्रोफेसर हैं, इनकी मणिपुर पर केंद्रित कई महत्त्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।)

हिंदी बाल साहित्य का स्वातंत्र्योत्तर स्वरूप: बहस और विमर्श

दिविक रमेश

संपर्क- 9910177099

अपनी पुस्तक 'बालगीत साहित्य' में निरंकार देव सेवक ने लिखा है-"स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद बढ़ती हुई रुचि और पढ़ने की भूख का अनुमान करके एक साथ सैंकड़ों नए लेखकों ने सभी विधाओं में लिख-लिखकर बाल साहित्य का भण्डार भरना प्रारंभ कर दिया। विराज एम. ए., गोकुल चन्द सन्त, नृसिंह शुक्ल, प्रशान्त, व्यथित हृदय, नरायन व्यास, विशम्भर सहाय प्रेमी, शारदा मिश्र, शिवमूर्ति वत्स, हरिकृष्ण देवसरे, मनहर चौहान ने अनेक पौराणिक, ऐतिहासिक और परी कथाएं बच्चों के लिए लिखीं। वैज्ञानिक बाल कथाएं रमेश वर्मा, रत्न प्रकाश शील, जयप्रकाश भारती आदि की बहुत पसन्द की गईं।" इस आकलन से बाल साहित्य के परिदृश्य से जुड़ा कोई भी चौंक सकता है, क्योंकि देवसरे को परी कथा आदि के विरोधी के रूप में जाना जाता है और इसके लिए उनके अपने अनेक आवेशपूर्ण वक्तव्य और घोषणाएं भी जिम्मेदार हैं जबकि जयप्रकाश भारती को मात्र पौराणिक, ऐतिहासिक और परी कथाओं वाली राह का लेखक मान कर प्रस्तुत किया जाता रहा है। इधर-उधर टटोला तो पाया कि परी कथाओं को लेकर देवसरे जी के मत को शायद ठीक से नहीं समझा गया है। वे झूठे कल्पनालोक से बचने की बात तो करते हैं लेकिन समूची परीकथा का विरोध नहीं करते। उन्हीं के शब्दों में-"परी कथाएं सदियों से बच्चों का मन बहलाती रही हैं। नव-बालसाहित्य की रचना के सिलसिले में एक आवश्यकता यह भी अनुभव की गई कि बच्चों को झूठे कल्पना लोक से बचाने के लिए जरूरी हे कि परी कथाओं के कथ्य को नये आयाम दिए जाएं।" वे आगे लिखते हैं-"परी कथाओं के खज़ाने को अपने शब्दों में बार-बार लिखकर बालसाहित्य-सर्जना का दम भरने वाले लेखकों के लिए यह भी एक चुनौती थी। उन्होंने इसे समूची 'परीकथा' का विरोध माना, जबकि वास्तव में परीकथा की विधा को स्वीकार करते हुए उसके कथ्य की मांग की गई थी।" (नव बालसाहित्य के दिशादर्शक, संचेतना, दिसम्बर, 1982, पृ0 215)। कुछ ऐसी ही बात उन्होंने इसी लेख में 'राजा' को कथा का पात्र बनाने के संदर्भ में लिखी है। उन्हें समझने का विशिष्ट दावा करने वालों को गौर करना होगा कि परी, राजा, भूत, पौराणिक पात्र, पशु-पौधों आदि के प्रयोग से उन्हें दिक्कत नहीं थी बशर्ते कि रचनाकार उनसे जुड़ी कथ्यगत रूढ़ियों को तोड़ने में समर्थ हो। जयप्रकाश भारती जी को भी उनके विरोधियों ने बिना उनको ठीक से समझे, गलत-सलत छवि प्रस्तुत करने में भरपूर योगदान किया है। जयप्रकाश भारती की ही निम्नलिखित कविता-पंक्तियों पर ध्यान दिया जाए –

"राजा का तो पेट बड़ा था
रानी का भी पेट घड़ा था।
खूब वे खाते छक-छक-छक कर
फिर सो जाते थक-थक-थककर।
काम यही था बक-बक, बक-बक
नौकर से बस झक-झक, झक-झक"

क्या यह कविता पारंपरिक ढंग की राजा-रानी पर लिखी कविता है? क्या यहां वही सामंतीय मूल्यों वाला राजा है जिसके सामने ज़बान खोलना भी अपने को सूली पर चढ़ाने का न्योता देना है? यह प्रजातंत्र के मूल्यों को स्थापित करती हुई एक ऐसी कविता है जिसे पढ़कर ताली बजा-बजा कर मजा लिया जा सकता है। कल्पना पहले के साहित्य में भी होती थी और आज के साहित्य में भी उसके बिना काम नहीं चल सकता। अंतर यह है कि आज के बालक को कल्पना विश्वसनीयता की बुनियाद पर खड़ी चाहिए। अर्थात् वह 'ऐसा भी हो सकता' है ' अथवा' 'ऐसा भी हुआ होगा' के दायरे में होनी चाहिए अन्यथा वह रद्दी की टोकरी में फेंक देगा। दूसरे शब्दों में आज का बाल साहित्यकार ऐसी रचनाएं नहीं देना चाहता जो अन्धविश्वास, सामंतीय परंपराओं, जादू -टोनों,अनहोनियों अथवा निष्क्रियता आदि मूल्यों की पोषक हों। आज की कहानियों में भी भूत, राजा, परी आदि हो सकते हैं लेकिन वे अपने पारंपरिक रूप से हटकर, ऊपर संकेतित पुरानेपन से अलग तरह के होते हैं। आज की कहानी की परी 'ज्ञान परी' हो सकती है, संगीत परी हो सकती है। भूत औरों को बेवकूफ बना रहा शैतान या दुष्ट बच्चा हो सकता है जिसकी पोल अंतत: खुलनी ही होती है। चांद के अनुभव पर एक कविता है- बालस्वरूप राही की। यह कविता चांद पर नहीं है बल्कि नई दृष्टि पर है। एक वैज्ञानिक समझ किस प्रकार रचना में पूरी तरह रचा-बसा कर पेश की जा सकती है कि वह एक कलात्मक अनुभव के आनंद से लहलहा उठे, इसका नमूना है यह कविता। हमारे यहाँ विज्ञान और आधुनिकता का मात्र अलाप करते रहने वाले इससे बहुत कुछ सीख सकते हैं। कविता इस प्रकार है:

चंदा मामा, कहो तुम्हारी शान पुरानी कहाँ गई,
कात रही थी बैठी चरखा, बुढ़िया नानी कहाँ गई?
सूरज से रोशनी चुराकर चाहे जितनी भी लाओ,
हमें तुम्हारी चाल पता है, अब मत हमको बहकाओ।
है उधार की चमक-दमक यह नकली शान निराली है
समझ गए हम चंदा मामा, रूप तुम्हारा जाली है।

बाल-विज्ञान लेखन और राजा-रानी, परी कथाओं, लोककथाओं पुराणों या इतिहास पर आधारित रचनाओं के संदर्भ में जो विवादयुक्त टिप्पणियां होती हैं उनके पीछे न तो रचनाओं के आधार पर सुचिन्तित मंथन दिखता है और न ही खुला विचार। देवेंद्र मेवाड़ी के शब्दों में- "विज्ञान लेखन करते समय बच्चों को मन के आँगन में बुलाना होगा और जैसे उनसे बातें करते –करते या उन्हें किस्से- कहानियाँ या गीतों की लय में विज्ञान की बातें बतानी होंगी।... विज्ञान की कोई जानकारी कथा -कहानी के रूप में दी जाएगी तो उसे बच्चे मन लगा कर पढ़ेंगे । ध्यान दिया जाए कि यहां जानकारी देने पर अधिक जोर है। कविता, कहानी आदि फॉर्म भर हैं। मेरी दृष्टि में बालसाहित्य से तात्पर्य ऐसे साहित्य से है जो बालोपयोगी साहित्य से भिन्न रचनात्मक साहित्य होता है अर्थात् जो विषय निर्धारित करके शिक्षार्थ लिखा हुआ न होकर बालकों के बीच का अनुभव आधारित रचा गया बाल साहित्य होता है । वह कविता, कहानी नाटक आदि होता है न कि कविता, कहानी, नाटक आदि के चौखटे अथवा शिल्प मे भरी हुई विषय प्रधान जानकारी, शिक्षाप्रद अथवा उपदेशपूर्ण सामग्री होती है। वह विषय नहीं बल्कि विषय के अनुभव की कलात्मक अभिव्यक्ति होती है। दूसरे शब्दों में कलात्मक अनुभव होता है। इसीलिए वह मौलिक भी होता है। मोबाइल भी कहानी का विषय बन सकता है लेकिन तब जब वह रचनाकार के किसी अनुभव विशेष का अंग बन जाए। कोरी जानकारी उपयोगी हो सकती है लेकिन रचना बनने के लिए उसे 'रचनात्मक शर्तों' से गुजरना होता है और 'रचनात्मक शर्तों' का आशय केवल कविता या कहानी के फॉर्म का उपयोग करना नहीं होता। कोई जब कहता है कि 'कम्प्यूटर जी लॉक कर दीजिए तो वह कहने या अभिव्यक्ति की खूबसूरती है अन्यथा लॉक तो आदमी ही करता है। यहां मुझे रचनाकार कल्पना कुलश्रेष्ठ का महत्त्वपूर्ण चिंतन भी ध्यान में आ रहा है। उन्होंने अपने अंग्रेजी में लिखे एक लेख 'राइटिंग साइंस फिक्शन फॉर चिल्ड्रन' में जोर देकर विज्ञान कथा और विज्ञान लेख का भेद किया है। उन्होंने माना है कि विज्ञान कथा लेखन बच्चों को विज्ञान सिखाने के लिए नहीं होता, उसके लिए विज्ञान लेख होते हैं। विज्ञान कथा लेखन बच्चों में वैज्ञानिक स्वभाव बनाने के लिए होता है। उनके शब्दों में –" It should kept in mind that it is not the job of science fiction to teach science for the kids. There are science articles for that purpose. Rather, science fiction is actually there to help develop scientific temperament and a genuine interest for science among children. Writers should not let the scientific theme be tyoo complicated and hard to understand for a child." (Writing Science Fiction For Children, Journal of Scientific Temper, Vol.7 (3&4), Jul-Dec, 2019). उल्लेखनीय यह भी है कि कुछ लोग विज्ञान कथा के नाम पर विज्ञान फंतासी अथवा बेलगाम कल्पना लिख दिया करते हैं। कल्पना विश्वसनीयता की बुनियाद पर होनी चाहिए।

कुल मिलाकर कहा जाए तो हिंदी का बाल साहित्य लोरी, पालना गीतों, प्रभाती, दोहा, गज़ल, पहेली, कविता, कहानी, उपन्यास, संस्मरण, जीवनी, नाटक आदि अनेक रूपों और विधाओं से संपन्न है। आज का बाल साहित्य तो कितने ही सार्थक प्रयोगों से समृद्ध है। हिंदी के बाल साहित्य और उसमें भी कविता के क्षेत्र में उसकी महत्त्वपूर्ण उपस्थिति को रेखांकित करते हुए एक समय में (स्वातंत्र्योत्तर बाल साहित्य के संदर्भ में) प्रतिष्ठित बाल साहित्यकार और नंदन के संपादक स्व. जयप्रकाश भारती ने उस समय को बाल साहित्य का 'स्वर्णिम युग'कहा था जिसे बड़े पैमाने पर स्वीकार भी किया गया एक–आध उपेक्षा-योग्य मामूली कुंठित और पूर्वाग्रही प्रतिक्रिया के। तो भी सच यह भी है कि हिंदी के बाल साहित्य के सही मूल्यांकन और उसके सही रेखांकन का अभाव है। जानकारियां हैं, कुछ हद तक इतिहास और शोध-कार्य भी उपलब्ध होने लगे हैं, लेकिन अपने सही अर्थों में समीक्षात्मक एवं आलोचनात्मक साहित्य की दृष्टि से वह फिलहाल अपने बचपने में ही है। फिलहाल, किसी सुदृढ़-सुचिन्तित सौन्दर्यशास्त्र और सम्यक या संतुलित दृष्टि के अभाव में आज की तथाकथित उपलब्ध आलोचना प्राय: आलोचक की पसन्द या नापसन्द पर अधिक टिकी होती है। इस क्षेत्र में फिलहाल प्रकाश मनु और डॉ. शकुंतला कालरा का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

हिंदी के बालसाहित्य के प्रारम्भ को लेकर थोड़ा विवाद है। बालसाहित्य की परंपरा को खोजते और सामने लाते हुए हिंदी के सुप्रतिष्ठित बाल साहित्यकार और चिंतक निरंकार देव सेवक, स्नेह अग्रवाल और जयप्रकाश भारती के अतिरिक्त उमेश चौहान, डॉ, दिग्विजय कुमार सहाय आदि ने इस ओर कुछ विचार किया है। इन विचारों के अनुसार हिंदी का बालसाहित्य 14 वीं-15वीं शताब्दी के आस-पास से उपस्थित माना गया है। अर्थात् अमीर खुसरो, सूरदास, जगनिक द्वारा लिखित आल्हा खंड, राजस्थानी कवि जटमल (1623) की रचना 'गोरा बादल' आदि में बालसाहित्य की उपस्थिति मानी गई है। जहां तक बालक की पहली पुस्तक का प्रश्न है तो 'गोरा बादल' को माना गया है जिसे एक मुकम्मल बाल काव्य के रूप में स्वीकार किया गया। मिश्र बंधुओं ने पुस्तक में खड़ी बोली का प्राधान्य माना है। यदि इस विवाद में न जाएं तो हिंदी के बाल साहित्य का वास्तविक प्रारम्भ आधुनिक काल से अर्थात् बीसवीं सदी के थोड़े पीछे-आगे से तो मानना ही होगा। सच तो यह है कि भारत की प्रमुख भाषाओं मसलन असमी, बंगाली, मराठी, तमिल, कन्नड़, हिंदी, मलयालम, उड़िया आदि के आधुनिक बाल साहित्य के इतिहास पर नजर डालें तो हम पाएंगे कि (अपने वास्तविक अर्थों में) इसका प्रारंभ **19** वीं सदी के अंत और **20** वीं सदी के प्रारंभ में हुआ था। कुछ अन्य भाषाओं में यह बाद में शुरू हुआ था। उदाहरण के लिए एक उत्तर-पूर्व की भाषा मणिपुरी में मुद्रित रूप में बाल साहित्य की जरूरत **1940** के दशक से **1950** के दशक में महसूस होने लगी थी। **1947** के बाद बाल साहित्य की अनेक पुस्तकों का प्रकाशन हुआ। प्रमुख भाषाओं के मामले में, बाल साहित्य की शुरुआत के कारणों में से एक शिक्षा के लिए पाठ्य पुस्तकों की तैयारी की जरूरत भी थी। ईसाई

मिशनरी स्कूल स्थापित किए गए और उन के कारण नए प्रकार की शिक्षा प्रणाली ने नई शैली की कहानियां लिखने के लिए प्रेरित किया।

शास्त्रीय और पहले के बाल साहित्य के श्रेष्ठ हिस्से के प्रति बिना किसी पूर्वाग्रह के कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता के बाद के भारतीय बाल साहित्य में बच्चों के अनुकूल ऐसा साहित्य लिखा गया है जो पुराने साहित्य की तरह उपदेशात्मक नहीं है। इसका मतलब यह नहीं है कि हमें बच्चों को शास्त्रीय (classical) बाल साहित्य की जानकारी से वंचित रखना चाहिए। बंगाली में, जोगिंद्रनाथ सरकार द्वारा 1891 में लिखित कहानियों की पुस्तक 'हाँसी और खेला' (हँसना और खेलना) ने पहली बार कक्ष-कक्षा-परंपरा को तोड़ा और यह बच्चों के लिए पूरी तरह मनोरंजनदायक बनी। संयोग से कुछ सीख भी लेना एक अतिरिक्त लाभ था।

बाल साहित्य के नाम पर एक अरसे तक 'बालक के लिए साहित्य' लिखा जाता रहा है (यूं आज भी ऐसा होते देखा जा सकता है) जबकि आज 'बालक का साहित्य' लिखा जा रहा है। पिछले वर्षों में यह समझ बहुत शिद्दत से आई है कि बालक के लिए नहीं बल्कि बालक का बाल-साहित्य लिखा जाना चाहिए। इसका अर्थ है कि बाल-साहित्यकार को बालक बन कर साहित्य रचना होता है। जब हम बालक के लिए लिखने का प्रयत्न करते हैं तो वह बालक पर प्राय: लादे जाने वाले बाल साहित्य का अभ्यास होता है। आज के तैयार बालक के लिए प्राय: उपदेशात्मक और उबाऊ होता है। आज का बाल-साहित्यकार सिखाने की पुरानी शैली के स्थान पर साथ-साथ सीखने की शैली में अपने को अभिव्यक्त करता है। वह अनुभव और ज्ञान के माध्यम से अर्जित अपनी समझ का बालकों को सहज भागीदार बनाता है। आज का बाल-साहित्यकार कमोबेश बालक का दोस्त बनकर उसके सुख-दुख का, उसकी उत्सुकताओं और कठिनाइयों का यानी उसके सब कुछ का साझीदार होता है। अंग्रेजी के बाल साहित्य समीक्षक निकोलस टकर का मत भी इस संदर्भ में ध्यान देने योग्य है- "विश्व के नए बाल साहित्य के लिए यह जरूरी नहीं है कि वह एक्दम साफ-सुथरा हो, उसकी कहानियां एकदम आदर्शपरक हों और उनका अंत सदा सुखदायी ही हो। यह तो वास्तव में अपने समय काल से जुड़ा प्रश्न है। यदि बाल साहित्य में पाठक यह समझ लेता है कि इसके पीछे एक सुदृढ़ आग्रह है कि जीवन की कठिनाइयों से जूझने और जीवन जीने का वही फार्मूला अपनाओ जो हम बता रहे हैं तो वह तत्काल उसे छोड़ देता है।" (भारतीय बाल साहित्य, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, पृ. 15)। वस्तुत: बाल साहित्य सृजन बहुत ही चुनौती का काम होता है। नामवर सिंह ने ठीक ही लिखा है ,"उनके लिए तो साहित्य वह है जो उन्हें हिलाये, डुलाये और दुलराये भी। यानी वे खुशी से झूम उठें।"

हमें यह भी समझना होगा (हालांकि समझा जा रहा है) कि विविधताओं से भरे भारत के संदर्भ में यह बालक बनना क्या है? यहां आर्थिक, सामाजिक, भौगोलिक एवं आयु आदि कारणों से बालक का भी विविधता भरा स्वरूप है। महानगरी बालक का स्वरूप वही नहीं है जो कस्बाई या ग्रामीण या जंगलों में रहने वाले बच्चे का है। आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न बच्चे की मानसिकता वही नहीं है जो गरीबी में पल रहे बच्चे की है। आज के कितने ही बच्चों के सामने इंटरनेट, फिल्म तथा अन्य मीडिया की सुविधा के चलते एक नई दुनिया और उसके नए भाषा-रूप का भी विस्फोट हो रहा है और वे उससे प्रभावित हो रहे हैं। अत: आज का बाल-साहित्यकार बालक के बारे में परंपरा भर से काम चलाते हुए अर्थात् उसके विकास की उपेक्षा करते हुए, सामान्य कुछ लिखकर अपने कार्य की इति नहीं कर सकता। सामान्य रूप और दृष्टि हो सकती है, अनुभव, उसका नया बोध और उससे जन्मी नई दृष्टि नहीं। यही कारण है कि पिछले कुछ वर्षों में हिंदी के बाल साहित्य में जहां भाव और भावबोध की दृष्टि से बालक के नए-नए रूप उभर कर आए हैं वहीं रूप तथा भाषा-शैली में भी नए-नए अन्दाज और प्रयोग सम्मिलित हुए हैं, भले ही कुछ पहले की सोच में गिरफ़्त जन उसे स्वीकार करने में कठिनाई झेल रहे हों। जब हम बालक की बात करते हैं तो हमें नहीं भूलना चाहिए कि हमारे देश में अमीरी-गरीबी, जाति-पांत, भौगोलिक तथा अन्य स्थितियों आदि के कारण बालक बंटा हुआ है। आज के कुछ साहित्यकारों का उस ओर ध्यान हैं , लेकिन कल लिखे जाने वाले साहित्य में और ध्यान दिया जाना अपेक्षित है। अपने -अपने अनुभव के दायरों के बच्चों के बालमन को समझते हुए रचना होगा। ग्रामीण परिवेश के बच्चों के साथ -साथ आदिवासी बच्चों तक ठीक से पहुंचना होगा। अभी यह चुनौती है। नए ढंग से, विशेष वर्ग के बालक के मन की एक कविता 'छाता' है जो चकमक में प्रकाशित हुई थी-

सड़क!
हो जाओ न थोड़ी ऊंची
बस मेरे नन्हें कद से थोड़ी ऊंची।

मैं आराम से निकल जाऊंगा तब
तुम्हारे नीचे-नीचे
घर से स्कूल तक।
न मुझे धूप लगेगी, न बारिश।
हमारे घर में
नहीं है न छाता, सड़क!

एक और कविता देखिए –

गुल्लू का कम्प्यूटर (डॉ. प्रदीप शुक्ल)

गुल्लू का कम्प्यूटर आया
पूरा गाँव देख मुस्काया

दादी के चेहरे पर लाली
ले आई पूजा की थाली

गुल्लू सबको बता रहा है
लाईट कनेक्शन सता रहा है

माउस उठा कर छुटकू भागा
अभी-अभी था नींद से जागा

अंकल ने सब तार लगाये
गुल्लू को कुछ समझ न आये

कंप्यूटर तो हो गया चालू
न ! स्क्रीन छुओ मत शालू

जिसे खोजना हो अब तुमको
गूगल में डालो तुम उसको

कक्का कहें चबाकर लईय्या
मेरी भैंस खोज दो भैय्या

बड़े जोर का लगा ठहाका
खिसियाये से बैठे काका !!

आज ऐसी कहानियां उपलब्ध होने लगी हैं जो आज की विद्रूपताओं को उजागर कर रही हैं, मसलन लड़कियों के नाजायज़ स्पर्शों की अनुभव सम्पन्न समझ दे रही हैं। गुस्ताखी माफ हो, स्वयं मेरी ही कहानी है–'सॉरी लू लू' जो आलेख प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित मेरी पुस्तक 'बचपन की शरारत' (सम्पूर्ण बाल गद्य रचनाएं) में संकलित है। आने वाले साहित्यकारों को ऐसी और अन्य बुराइयों से जूझ रहे बच्चों की दुनिया में भी झांक कर लिखना होगा। क्षमा शर्मा ने उचित ही लिखा है कि "बहुत से लोग

समझते हैं कि फैंटेसी लिखना बहुत आसान है और उसमें कोई तर्क नहीं होता जबकि फैंटेसी लिखना, ऐसी कथा कहना है जिसमें बच्चों का कुतूहल और जिज्ञासा जग सके एक कठिन काम है, इसीलिए अक्सर लोग कहानी लिखने का एक आसान सा रास्ता अपनाते हैं। सरकार के जो नारे चल रहे होते हैं वे उन पर कहानियां, कविताएं लिखते हैं। ऐसी कहानियां हमें हजारों की संख्या में मिलती हैं, जो बेहद अपठनीय होती हैं। इन दिनों पर्यावरण और 'जेंडर सेंसिटाइजेशन' पर लिखने वालों की भरमार है। ये कहानियां इतनी उबाऊ होती हैं कि इनके शुरुआती वाक्य पढ़ने के बाद सहज ही समझ में आ जाता है कि आगे क्या होगा। जानवर, पेड़ आदि मनुष्य के सहजीवी हैं। रचनाकार अपने दृष्टि संपन्न अनुभव की अभिव्यक्ति के लिए इनका कलात्मक उपयोग यदि विश्वसनीयता के दायरे में रहकर करता है तो वह अभिव्यक्ति की क्षमता बन जाता है। मैं बाल कहानियों में से जानवरों को बाहर करने का कतई पक्षधर नहीं रहा हूं। वह संभव भी नहीं है। हां, नए ट्रीटमेंट की जरूरत रहती है। जानवर पात्र होगा तो मनुष्य-पाठक को उसके मन की बात प्रेषित करने के लिए मानव-भाषा का ही उपयोग करना पड़ेगा। यही पेड़, फूल आदि के संदर्भ में भी सत्य हे। और इसे एक कुशल रचनाकार बिना मानवीकरण के भी सफलता के साथ सामने ला सकता है।

मोहन राकेश की एक कहानी 'सुनहरा मुर्गा, काला बंदर, लाल अमरूद का पेड़' है। यह कहानी रोचक है और इसमें जो संदेश निकल रहा है वह कहानी की बुनावट का हिस्सा बन कर आया है और कहीं से भी चस्पां या आरोपित होकर नहीं। भले ही पात्र आदमियों के साथ-साथ जानवर और पेड़ हैं, लेकिन जानवर और पेड़ आदमियों की दुनिया में इस प्रकार खपाए गए हैं कि वे न तो अलग-थलग लगते हैं और न ही उन पर मानवीकरण हावी हुआ है। आदमियों की अपनी दुनिया है और उनकी अपनी। उन्हें आदमियों से संवाद करते हुए भी नहीं दिखाया गया है। विश्वसनीयता का भी पूरा ध्यान रखा गया है। और वह भी कलात्मकता की कीमत पर नहीं। प्रारम्भ में कोई भी स्वीकार करेगा कि कसाई की निगाह मुर्गे पर है, बंदर पर चिड़ियाघर वालों की और अमरूद के पेड़ पर विद्यार्थियों और लोगों की। कोई 'समझदार' आपत्ति कर सकता है कि ये तीनों जिस तरह एक दूसरे की रक्षा करते हैं वह कैसे संभव है? बंदर को किसी ने अपनी पीठ पर मुर्गे को बैठाकर पेड़ पर ले जाते तो नहीं देखा। या पेड़ ने अपने आप अमरूद कैसे टपकाए। तो यही तो कलात्मकता है। जब बच्चे ऐसे वर्णन पढ़ते हैं तो कहानी का कलात्मक अनुभव सहज ही दोस्तों में एक दूसरे की मदद करने के भाव को सर्वोपरि कर देता है। और यूं भी मुर्गा खुद उड़ कर पेड़ पर नहीं जा सकता और पेड़ से फल पककर टपक भी सकता है। यह तो विश्वसनीयता के दायरे में आता ही है न? एक और वर्ण है जो पेड़ का मानवीकरण जैसा लगता है- बंदर को पेड़ अपनी घनी शाखाओं में छिपा लेता है। यहां बिना पेड़ के मानवीकरण के आशय तो स्पष्ट हैं न? इस रोचक कलात्मक अभिव्यक्ति के स्थान पर यह भी लिखा जा सकता था कि बंदर पेड़ की घनी शाखाओं में छिप गया। कहानी का अगला पड़ाव है विपत्ति का आना- वर्षा और ओले के रूप में। ऐसे में 'बिगाड़ में दूसरों पर दोष मढ़ा जाता है' वाली कहावत सामने आती है।

एक-दूसरे पर आरोप लगाने का सिलसिला शुरु होता है और अविश्वास का जन्म होता है। दोस्ती भंग हो जाती है। और कहानी के अंतिम पड़ाव में स्वाभाविक ढंग से चित्रित किया गया है कि दोस्ती के भंग होने पर, एक -दूसरे की मदद न करने की स्थिति में, कसाई, चिड़ियाघर वाले और उनके संदर्भ में अपने बुरे इरादों में सफल हो जाते हैं। कहानी खत्म हो जाती है। तो मेरी निगाह में यह कहानी है न कि कहानी के फॉर्म में कोई संदेश या सूचना ठूंसने का प्रयास। कहानी के मज़े के साथ-साथ संदेश खुद-ब-खुद उभर कर आता है। वर्णन में कल्पना है लेकिन विश्वसनीयता की बुनियाद पर। यहां शिल्प उजागर नहीं है।

एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह भी है कि क्या व्यापक संदर्भ में बच्चे को एक ऐसा पात्र मान लिया जाए जिसमें बड़ों को अपनी समझ बस ठूंसनी होती है। मैं समझता हूं कि आज जरूरत बच्चे को ही शिक्षित करने की नहीं है, बड़ों को भी शिक्षित करने की है। इसलिए बाल साहित्यकार के समक्ष यह भी एक बड़ी और दोहरी चुनौती है। वस्तुत: सजग लोगों के सामने मूल चिन्ता यह भी रही है कि कैसे रूढ़ियों में जकड़े मां-बाप और बुजुर्गों की मानसिकता से आज के बच्चे को मुक्त करके समयानुकूल बनाया जाए। साथ ही यह भी कि आज के बच्चे की जो मानसिकता बन रही है उसके सार्थक अंश को कैसे प्रेरित किया जाए और कैसे दकियानूसी सोच के दमन से उसे बचाया जाए। मैंने अक्सर कहा है कि बाल-साहित्य सबके लिए होता है- केवल बच्चों के लिए नहीं। बाल-साहित्य बड़ों को भी सुसंस्कृत कर सकता है। बाल साहित्य बच्चों का तो सच्चा दोस्त होता ही है, बड़ों को भी उनका सच्चा दोस्त बनने की राह दिखाता है ।

थोड़ी बात इलेक्ट्रॉनिक माध्यम और टेक्नोलॉजी के हौवे की भी कर ली जाए जिन्होंने विश्व को एक गांव बना दिया है। यह बात अलग हैं कि भारत में आज भी अनेक बच्चे इनसे वंचित हैं। इनसे क्या वे तो प्राथमिक शिक्षा तक से वंचित हैं। कितने ही तो अपने बचपन की कीमत पर श्रमिक तक हैं। अपने परिवेश और परिस्थितियों के कारण अनेक बुरी आदतों से ग्रसित हैं। वे भी आज के बाल साहित्यकार के लिए चुनौती होनी चाहिए ? खैर जिन बच्चों की दुनिया में नई टेक्नोलॉजी की पहुंच है उनकी सोच अवश्य बदली है। अच्छे रूप में भी और गलत रूप में भी। विषयांतर कर कहना चाहूं कि मैं टेक्नोलॉजी या किसी भी माध्यम का विरोधी नहीं हूं, बल्कि वे मानव के लिए जरूरी हैं। उनका जितना भी गलत प्रभाव है उसके लिए वे दोषी नहीं हें बल्कि अन्तत: मनुष्य ही है जो अपनी बाजारवादी मानसिकता की तुष्टि के लिए उन्हें गलत परोसने की भी वस्तु बनाता है। फिर चाहे वह यहां का हो, पश्चिम का हो या फिर कहीं का भी हो। होने को तो पुस्तक के माध्यम से भी बहुत कुछ गलत परोसा जा सकता है। तो क्या माध्यम के रूप में पुस्तक को गाली दी जाए। आज बहुत सा बाल साहित्य इंटरनेट के माधयम से भी उपलब्ध है। अत: जरूरत इस बात कि है कि दोनों के बीच बहुत ही सार्थक रिश्ता बनाया जाए। किताबें भी कम्प्यूटर पर पढ़ी जा सकती हैं, इसके लिए तमाम वेबसाइट हैं।

अंत में कहना चाहूंगा कि भले ही आज सृजन बल्कि उत्कृष्ट सृजन की दृष्टि से समकालीन हिंदी बाल साहित्य की स्थिति बहुत अच्छी और संतोषजनक हो चुकी है। ठीक है कि आज भी पारंपरिक सोच और पारंपरिक ढंग का बाल साहित्य लिखा और छापा जा रहा है, लेकिन ऐसे बाल साहित्य की भी कमी नहीं है जिसमें समसामयिक घटनाओं, परिवेश और भविष्य की दुनिया मौजूद है। जिसमें आज के बच्चे की नब्ज़ और धड़कन है। स्कूली शिक्षा-पद्धति और बस्ते के बोझ की विडंबना को लेकर सुरेंद्र विक्रम की एक बहुत अच्छी-मार्मिक कविता है। आज नई पीढ़ी में भी समर्पित और सशक्त रचनाकारों की अच्छी-खासी संख्या है जिनके नामों की गणना करना फिलहाल छोड़ रहा हूं, लेकिन, मेरे विनम्र मत में, इसके समक्ष आज वास्तविक चुनौती इसकी सही जगह और आकलन को लेकर बनी हुई है, बावजूद कुछ बेहतर हो चुकी स्थितियों के। वस्तुत: आज भी लगता है कि हिंदी में लिखा जा रहा बाल-साहित्य जो ऊंचाई छू चुका है, न तो उसकी ठीक से पहचान ही हो पा रही है और न ही उसे कायदे से उसकी उपयुक्त जगह ही मिल पा रही है। इसका प्रमुख कारण, मेरी निगाह में, इसे बड़ों के लिए लिखे जा रहे सृजन के समक्ष न समझा जाना ही है। कोई भी सृजन, अगर वह सृजन है तो किसी भी सृजन के समक्ष माना जाना चाहिए और उसे साहित्य के इतिहास में ससम्मान स्थान दिया जाना चाहिए।

(**परिचय :** चर्चित बाल-साहित्यकार के रूप में दिविक रमेश की विशिष्ट पहचान है। दिविक रमेश वर्तमान में नई दिल्ली में रहते हैं।)

असमिया लोक साहित्य में राम
(लोकगीतों के विशेष संदर्भ में)

डॉ. अनुशब्द
संपर्क: 8876049200

लोक साहित्य लोक द्वारा निर्मित, लोक विषयक और लोक प्रचलित साहित्य है। इसका जुड़ाव विशेष रूप से श्रम और संस्कार से होता है। यह सामूहिकता की भावना को सूचित करता है, इसीलिए इसका पाठ विभिन्न उत्सवों एवं अवसरों पर होता है। लोक साहित्य हमारे पुरखों का साहित्य है। हमारे पुराने समाज का साहित्य है। इसमें जीवन के विभिन्न प्रसंगों से प्राप्त अनुभवों एवं सत्यों की वास्तविक अभिव्यक्ति होती है। इसमें भावों की अभिव्यक्ति में किसी तरह का बनावटीपन नहीं होता बल्कि भावों का भदेसपन लोक साहित्य की अपनी विशेषता होती है। इसलिए इस साहित्य की टेक्नीक और टेक्सचर में लोक की ज्यादा उपस्थिति होती है।

वास्तव में लोक साहित्य मौलिक साहित्य है। वह कच्चे-कोरवर भावों का साहित्य है। यह शास्त्रीय ज्ञान के बोझ से मुक्त तथा छंद एवं अलंकार की चिंता से रहित साहित्य है। यह अपने वाचिक रूप में किसी व्यक्ति विशेष द्वारा सृजित साहित्य नहीं है, इसीलिए इस पर कोई एक व्यक्ति न तो कॉपीराइट का दावा कर सकता है और न ही रॉयल्टी या ए.पी.आई का क्लेम ही कर सकता है। यह जनता का, जनता के लिए और जनता से जन्मा साहित्य है।

यह कहना उचित होगा कि यदि 'साहित्य समाज का दर्पण है' तो लोक साहित्य लोग समाज का, क्योंकि इसमें लोक का चेहरा ही दिखाई देता है और लोक का हृदय ही बोलता है। इसमें लोक जीवन की सभी प्रकार की भावनाएँ बिना किसी कृत्रिमता के समायी रहती हैं। लोक साहित्य की ये विशेषताएँ अविच्छिन्न रूप में लोक साहित्य के विशिष्ट अंग, लोकगीतों में भी स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ती हैं। लोकगीत लोक जीवन की अभिव्यक्ति का जीवंत और सशक्त माध्यम है। इसमें लोकहृदय के उद्गार होते हैं। देवेंद्र सत्यार्थी के शब्दों में कहें तो "लोकगीत किसी संस्कृति के मुँह बोलते चित्र होते हैं।" सामान्यतः लोक में पीढ़ियों से वाचिक रूप में प्रचलित गीतों को लोकगीत कहा जाता है। जनसामान्य के जीवन-राग, हर्ष-विषाद, आशा-निराशा, स्वप्न एवं आकांक्षाएँ आदि का निवेश इन गीतों में प्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता है। लोकगीतों में क्षेत्र विशेष की संस्कृति, सभ्यता, परंपरा एवं वहाँ के लोक जीवन की छवि अभिव्यक्त होती है। भारत की अन्य भाषाओं के साहित्य की तरह असमिया साहित्य में भी लोकगीतों की एक प्राचीन

एवं समृद्ध परंपरा रही है। असमिया साहित्य में प्रचलित लोकगीतों को असमिया साहित्य के प्रतिष्ठित विद्वान डॉ. सत्येंद्र नाथ शर्मा ने मूलतः तीन श्रेणियों में विभक्त किया है- अनुष्ठानमूलक, आख्यानममूलक और विविध विषयक गीत। इन तीनों के अंतर्गत असमिया समाज और संस्कृति में प्रचलित कई प्रकार के लोकगीत आते हैं जिनमें से प्रमुख हैं- निसुकनि गीत, बिया नाम, बिहू गीत, बारमाही गीत, नावखेलोवा गीत, दिहा नाम, दुर्गा नाम, तुलसी नाम आदि। वैसे तो इन लोकगीतों की विषयवस्तु में काफी वैविध्य है लेकिन रामकथा या राम से संबंधित कहानियों को इन लोकगीतों में केंद्रीयता प्राप्त है। हालाँकि, पूरा पूर्वोत्तर भारत विशेष रूप से असम कृष्ण भक्ति प्रधान क्षेत्र है।

दरअसल, राम और कृष्ण मनुष्यता के बहुत बड़े सपनों के नाम हैं। वे हमारी पुतलियों में नाचते हैं, धमनियों में तैरते हैं। रामकथा की जड़ें बहुत गहराई में जमी हुई हैं। इसकी उपस्थिति विभिन्न अक्षांशों एवं देशांतरों से परे है। इसीलिए यह केवल भारतीय या उत्तर भारतीय कथा नहीं है बल्कि पूर्वोत्तर भारत की कला, साहित्य एवं संस्कृति में भी यह कथा उतनी ही रची-बसी है। आदिकवि वाल्मीकि की रामकथा के बाद यदि हम आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में रचित राम कथाओं पर गौर करें तो हम पाते हैं कि सबसे पहले पूर्वोत्तर भारत की एकमात्र आर्यभाषा असमिया में रामकथा की विधिवत उपस्थिति मिलती है, जिसे हम 'अप्रमादी कवि' माधव कंदली द्वारा 14 वीं सदी में रचित 'सप्तकांड रामायण' के रूप में देखते हैं। बाद में इनके शिष्य श्रीमंत शंकरदेव एवं माधवदेव की रचनाओं में भी रामकथा का जिक्र मिलता है। हालाँकि, असमिया लोक जीवन में वाचिक रूप में रामकथा की परंपरा और भी पुरानी है। यहाँ की जनजातियों के लोकगीतों में यह कथा कब से चली आ रही है उसकी एक तारीख सुनिश्चित करना असंभव है। उदाहरण के रूप में हम कार्बी जनजाति में मौखिक रूप में प्रचलित रामकथा 'साबिन आलुन' को देख सकते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि राम और रामकथा का असमिया लोकजीवन और लोक साहित्य में अत्यंत जीवंत एवं प्राचीन उपस्थिति है। इसका साक्ष्य हमें राम के जीवन पर आधारित विभिन्न असमिया लोककथाओं, लोकगीतों, लोकनाट्य रूपों, मुहावरों, लोकोक्तियों आदि में मिलता है। अगर हम असमिया लोकगीतों में रामकथा की तलाश करें तो हम देखते हैं कि व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक के हर संस्कार में राम और उनके जीवन से जुड़ी घटना-प्रसंगों का बहुत ही सजीव वर्णन है। इस क्रम में हम देखते हैं कि एक ओर शिशु जहाँ माँ की गोद में राम पर केंद्रित निसुकनि गीत (लोरी) सुनकर सोता है तो दूसरी ओर जीवन के अंतिम क्षणों में लोग राम का नाम जपते हुए आखिरी सांस लेते हैं। यानी राम नाम की इयत्ता एवं महत्ता जीवन-पर्यंत परिलक्षित होती है। राम अपने मर्यादा एवं आदर्शों के कारण देश और काल से परे हैं। और, इसीलिए साहित्य, कला और संस्कृति में भी भिन्न-भिन्न रूपों में मौजूद हैं। घर की पुरानी पीढ़ियां अपने आने वाली पीढ़ियों में रामकथा के प्रेरक प्रसंगों का लोकगीतों एवं लोक कथाओं के माध्यम से निवेश कर उनमें दया, करुणा, सहानुभूति, न्याय इत्यादि जैसे उच्च मानवीय मूल्यों का संचार करती हैं। असमिया लोकगीतों में एक तरफ राम आदर्श पुत्र, आदर्श भाई, आदर्श पति, आदर्श शिष्य आदि के रूप में वर्णित हैं तो दूसरी तरफ

निर्दोष सीता को वनवास देने वाले निष्ठुर पति के रूप में तथा शम्बुक का वध कर शूद्र के प्रति अन्याय करने वाले राजा के रूप में भी उनके चरित्र का वर्णन मिलता है। इसी तरह बिहू गीतों में आनंद और उत्साह के क्षणों में राम का स्मरण किया जाता है। साथ ही विवाह जैसे पवित्र संस्कारों की विभिन्न विधियों में भी राम, सीता आदि मौजूद होते हैं।

निसुकनि गीतों में रामकथा:

यदि हम असमिया लोकगीतों में मानव जीवन की शैशवास्था से रामकथा की उपस्थिति को देखें तो सबसे पहले हमारा ध्यान निसुकनि गीतों पर जाता है। निसुकनि गीत यानी लोरी। माताएँ अपने शिशुओं को सुलाते समय हल्की-हल्की थपकी के साथ जो मधुर गीत सुनाती हैं उसे लोरी या निसुकनि गीत कहते हैं। हालाँकि आज के व्यस्त भौतिकतावादी जीवन में यह परंपरा भी धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही है। खैर, इन गीतों का उद्देश्य केवल शिशुओं को सुलाना ही नहीं है बल्कि उन्हें आनंदपूर्ण तरीके से नैतिकता का पाठ पढ़ाना भी है। इसके लिए माताएँ इन गीतों में भारतीय संस्कृति के महानायकों एवं आदर्श चरित्रों की प्रेरणास्पद जीवन-प्रसंगों को गीतों में ढालती हैं। इसी क्रम में निसुकनि गीतों में मर्यादा पुरुषोत्तम राम के उदात्त जीवन-चरित का, उनके जीवन से जुड़े विविध मर्मस्पर्शी एवं प्रेरक प्रसंगों का निवेश होता है। इन गीतों में कहीं राम के शौर्य एवं पराक्रम का ज़िक्र मिलता है तो कहीं उनके प्रेम, त्याग और विरह का। असमिया लोकजीवन में कई तरह के निसुकनि गीत प्रचलित हैं लेकिन राम कथा पर केंद्रित गीत बच्चों को बेहद पसंद हैं। माताएँ राम कथा के बालमन के रमने लायक प्रसंगों पर आधारित निसुकनि गीत शिशुओं को सुनाती हैं तथा यह कामना करती हैं कि इन गीतों के माध्यम से उनके बच्चों में राम जैसे उच्च मानवीय मूल्यों का संचार हो।

यदि हम अपने बालपन के दिनों को याद करें तो 'कागज की कश्ती और बारिश का पानी' वाला खेल सहज ही हमारी स्मृति में कौंध जाता है। यह खेल आज भी बच्चों में लोकप्रिय है। बालमन को आकर्षित करने वाले इस खेल के साथ राम कथा के प्रसंग को जोड़कर निर्मित एक निसुकनि गीत असमिया लोकजीवन में बहुत प्रचलित है-

	(हिंदी अनुवाद)
कलमौ पातरे नाव साजि लोलू	कलमौ के पत्तों से नाव बनवाया
इकरा पातरे बठा।	इकरा पत्तों का पतवार।
अकल रामसंद्रई कि जज्ञ पातिसे	अकेले रामचन्द्र क्या यज्ञ करेंगे
लगत नाय सारथि सीता ॥[1]	साथ में नहीं हैं सारथी सीता॥

यहाँ ध्यान देने योग्य है कि कागज के नाव और पतवार की जगह 'कलमौ' के पत्ते का नाव और 'इकरा' पत्ते का पतवार बनाने का ज़िक्र है जो यह दर्शाता है कि इस तरह के गीतों में लोकजीवन कितनी सजगता और जीवंतता के साथ उपस्थित है। साथ ही गीत की अंतिम दो पंक्तियों में राम का उल्लेख एक विरही व्यक्ति के रूप में भी हुआ है। "अकल रामचन्द्रई कि जज्ञ पातिसे लगत नाई सारथि सीता।" इससे व्यक्ति के जीवन में साहचर्य तथा सामाजिक जीवन के महत्व की ओर संकेत किया गया है। राम और सीता के अलगाव वाले प्रसंग से छोटे-बड़े सभी मर्माहत हो जाते हैं। बच्चों के मन पर भी ऐसी घटनाओं का गहरा असर पड़ता है।

इसी तरह बच्चे तीर-धनुष का खेल भी बहुत पसंद करते हैं। उनके इसी पसंद को ध्यान में रखते हुए निसुकनि गीतों में राम कथा के उन प्रसंगों का जिक्र किया जाता है जिसमें राम तीर-धनुष लेकर शिकार कर रहे होते हैं। ऐसे गीतों को सुनते-सुनते बच्चे स्वयं को राम की भूमिका में देखने लगते हैं तथा बहुत दिलचस्पी से उन गीतों को सुनते हैं। इस संदर्भ में हम यह गीत देख सकते हैं-

(हिंदी अनुवाद)

कलीया तुलसीर तले मृग पहु चरे।	तुलसी के पौधे के नीचे काले रंग का मृग चर रहा है।
ताके देखि रामचन्द्रइ शरधनु धरे ।।[2]	उसे देख कर रामचंद्र अपना धनुष उठा लेते हैं ।।

विवाह गीतों में रामकथा:

विवाह जीवन के महत्वपूर्ण संस्कारों में से एक है। इस संस्कार में कई सारी विधियों का अनुपालन होता है और लगभग हर विधि के दौरान अलग-अलग लोकगीत गए जाते हैं। यह स्थिति प्रायः हर भारतीय समाज में पायी जाती है। असमिया समाज में भी विवाह संस्कार के दौरान अलग-अलग लोकगीतों का प्रयोग होता है जिन्हें 'बियानाम' कहा जाता है। इन लोकगीतों में रामकथा के विभिन्न प्रसंगों का जिक्र मिलता है। राम और सीता इन गीतों में दूल्हा-दुल्हन के रूप में मौजूद होते हैं तथा दूल्हा-दुल्हन के माता-पिता जनक, दशरथ, कौशल्या, कैकयी आदि के रूप में। उदाहरणस्वरूप हम इस असमिया विवाह गीत को देख सकते हैं-

(हिंदी अनुवाद)

कैकयी आहिसे सुमित्रा आहिसे आहिसे रामरे माउ जनकर जीयरी जानकी सुंदरी आजि जुरण पिन्धाई साँउ।[3]	कैकयी आयी हैं सुमित्रा भी आयी हैं, राम की माता भी आयी हैं जनक नंदिनी जानकी सुंदरी को आज जुड़न पहनाकर देखेंगे।

'जुड़न' से तात्पर्य उस विशेष रिवाज से है जिसमें दूल्हे की तरफ से दुल्हन को कपड़ा, आभूषण, सिंदूर आदि भेंट स्वरूप प्रदान किया जाता है। कुछ विवाह गीतों में दूल्हे को राम मानकर रामायण की कहानी को ही गीत के रूप में गाया जाता है तथा दूल्हे के साथ निकलने वाली बारात को मिथिला यात्रा, अहिल्या उद्धार की यात्रा, सीता उद्धार हेतु लंकायात्रा आदि के साथ तुलना की जाती है। जैसे -

ओई रामे धनु धर/ हनुमंतई शर धर
लोकर कइना हुई आसे लक्ष्मण तई खर कर।[4]

अर्थात, हे राम तुम धनुष तान लो, हनुमान तुम भी बाण पकड़ो, दूल्हा-दुल्हन सो रहे हैं, लक्ष्मण तुम जल्दी करो।

असमिया विवाह गीतों में दूल्हा-दुल्हन को छेड़ने के लिए राम और सीता से तुलना की जाती है। इन गीतों में राम और सीता के मिलन-प्रसंग की बात करके दूल्हा-दुल्हन को छेड़ा जाता है।

दुल्हन के घर में जब दूल्हा आता है तब गाया जाता है-

पेपा मुरुलीये, बाजे घने-घने,
रामचन्द्र यज्ञलै जाय।
यज्ञलै जाबलै, बेला हॅल रामर,
चारेंदार सामरि थोआ।[5]

दुल्हन जब यज्ञ-स्थल (विवाह-स्थल) पर जाती है तब गाया जाता है-

राम आजि पाले मिथिला नगर
जनक रजाइ बार्ता पाले आहे रघुबर।[6]

दुल्हन जब दूल्हा को वरमाला पहनाती है तब गाया जाता है -

सखीसबे बोले सीता तुमि भाग्यवती
तोमार भैलन्त स्वामी राम रघुपति।[7]

इस प्रकार विवाह-संस्कार से जुड़े विभिन्न असमिया लोकगीतों में राम कथा अपने लोकल फ्लेवर के साथ उपस्थित हैं। कुछ विवाह गीत तो ऐसे हैं कि उनसे असमिया समाज एवं संस्कृति में स्त्रियों की स्वतंत्रता तथा श्रेष्ठता का भी बोध होता है। ऐसी स्थिति हमें न तो 'रामचरितमानस' में दिखती है और न ही 'रामायण' में। उदाहरण के तौर पर यह गीत दृष्टव्य है-

(हिंदी अनुवाद)

बिश्वामित्रई बुले हुना राम रघुवर	विश्वामित्र बोले, सुनो राम रघुवर
बाट साए आसे सीता जनकर घर	सीता जनक के घर में तुम्हारी राह देख रही है
जनकर घरे सीता आसे बात साई	जनक के घर में सीता प्रतीक्षा कर रही है।
धनुभांगि बिया कराऊँ बिदाय दिया आय	धनुष तोड़कर मैं विवाह करूंगा, आदेश दो माता।
कौशल्या बुलंत राम जुवाँ शीघ्र करि	कौशल्या बोलती है, राम जाओ शीघ्रता करो
धनु भांगि लोई आहा जानकी सुंदरी ।[8]	धनुष तोड़कर सुंदरी जानकी को ले आओ।

यहाँ ध्यान देने योग्य है कि उत्तर भारतीय राम कथाओं से जहाँ पितृसत्तात्मक समाज का परिचय मिलता है वहीं असमिया रामकथा एवं लोकगीतों में स्त्री चरित्रों की सशक्त एवं गरिमापूर्ण छवि नज़र आती है। इस संदर्भ में असमिया लोकगीतों में एक क्रांतिकारी परिवर्तन देखा जा सकता है जिसमें पिता के आदेश पर चलने वाले राम ने विवाह से पूर्व केवल अपनी माता कौशल्या से आदेश मांगा है। समाज में नारी का यह महत्व पूर्वोत्तर भारत के राज्यों के लिए भले ही सामान्य बात है लेकिन विवाह से पूर्व संतान द्वारा केवल अपनी माता से आज्ञा मांगना भारत के अन्य क्षेत्रों के लिए सहज नहीं है।

यानी असमिया विवाह गीतों में स्त्री की मजबूत छवि उभरकर आती है। इन गीतों में सीता एक तरफ साधारण असमिया लड़की की तरह कपड़ा बुनती हैं, घर का काम करती हैं तो दूसरी तरफ लंका में रावण की तमाम कोशिशों के बाद भी दृढ़ता से पति-भक्ति में लीन रहती हैं। राम और सीता के स्वयंवर की कहानी भी असमिया विवाह गीतों में कुछ नये रूप में व्यक्त हुई है। स्वयंवर से पहले राजा जनक राम के समक्ष 'शिव धनुष' उठाकर प्रत्यंचा चढ़ाने की शर्त रखते हैं। तब पुष्पवाटिका में उपजे पूर्वानुराग के कारण सीता मन ही मन सशंकित हो उठती हैं कि क्या राम इस असंभव काम कर पाएंगे? अपने इसी संदेह के कारण सीता राजा जनक से अनुरोध करती हैं कि राम को धनुष तोड़ने की आवश्यकता ही नहीं, पिताजी आप हमें ऐसे ही वचन लेकर विदा कर दीजिए-

(हिंदी अनुवाद)

केनेकोई भाङिब धनु की करिला विधि	'हे विधि, तुमने यह क्या किया, धनुष कैसे भंग होगा
सीताई बोले पिता कोइला निदारूण पण	सीता कहती हैं, पिताजी आपने यह निष्ठुर प्रण लिया
बज्रसम धनु रामे की कोई दिब गुण	वज्र के समान धनुष में राम कैसे प्रत्यंचा चढ़ाएंगे
सिकन श्यामतनु राम दशरथर सुत	दशरथ के पुत्र राम तो सुंदर कोमल तन वाले हैं
केनेकोई भाङिब रामे लोहार धनुक	वे उस लोहे के धनुष को कैसे तोड़ेंगे

नेलागे भाङिब धनु हिताई दिसे हाक
होगाअंगीकार करि पितृ दियक आमाक॥[9]

सीता मना कर रही हैं कि उस धनुष को नहीं तोड़ने से भी
पिताजी हमें केवल वचन लेकर ही विदा कर दीजिए'

यह विवाह गीत इस बात की तसदीक करता है कि असमिया समाज में नारी इतनी स्वतंत्र है कि वह अपने मन की व्याकुलता को पिता के समक्ष प्रकट कर सकती है तथा विवाह जैसे महत्वपूर्ण फैसलों में हस्तक्षेप कर सकती है। हालाँकि बाद में राम अपने स्वाभिमान तथा शौर्य का परिचय देते धनुष को न केवल बाएँ हाथ से उठाते हैं बल्कि प्रत्यंचा चढ़ाकर उसे तोड़ भी डालते हैं। इसका उल्लेख विवाह गीतों में "बाँउ हाते धनु धरि माजते भङात" (बाँए हाथ से धनुष पकड़कर तोड़ने पर) के रूप में मिलता है। इस प्रकार असमिया विवाह गीतों में वर्णित राम कथा में राम कहीं साहसी, कहीं विरही, कहीं प्रजापालक तथा निष्ठावान राजा के रूप में तो कहीं गर्भवती पत्नी को वनवास देने वाले निर्दयी पति के रूप में दिखते हैं।

बिहू गीतों में रामकथा:

बिहू असमिया संस्कृति की पहचान है। यह मूलतः कृषि केंद्रित उत्सव है। कृषि से जुड़ी विभिन्न गतिविधियों जैसे- फसलों की बुवाई, कटाई आदि के आधार पर पूरे वर्ष के दौरान तीन बिहू उत्सव मनाये जाते हैं। यथा- रंगाली बिहू, भोगाली बिहू और कंगाली बिहू। असमिया समाज में इन्हें अन्य नामों से भी जाना जाता है। जैसे- नववर्ष के शुभारंभ के अवसर पर 'बहाग बिहू', कार्तिक महीने के प्रारंभ होने पर 'काति बिहू' और मकर संक्रांति के अवसर पर 'माघ बिहू' के रूप में भी इन्हें मनाया जाता है। असमिया समाज में तीनों बिहू उत्सवों को अलग-अलग रीति-रिवाजों के अनुसार हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। 'बहाग बिहू या रंगाली बिहू' को अत्यंत आनंद के साथ मनाया जाता है। इस दौरान 'हूसरि गीत' गाने की विशेष प्रथा है। इसमें गाँव के युवक इकट्ठा होकर लोगों के घरों में जाकर लोकगीत गाते हैं तथा लोकनृत्य करते हैं। इन गीतों को ही मूलतः बिहू गीत के रूप में जाना जाता है। 'हूसरि' गीतों में अधिकांशतः रामकथा के करूण प्रसंगों को ही आधार बनाया गया है। बिहू के आनंदपूर्ण क्षणों में भी बिहू करने वाले युवक राम की वेदना से आत्मीयता का अनुभव करते हैं। अपने सुख के क्षणों में किसी के दु:ख को देखकर दुखी हो जाना गहन आत्मीयता की निशानी है। इसका प्रमाण हमें उन हूसरि गीतों में मिलता है जिनमें राम के वन गमन के पश्चात अयोध्यावासियों की दारुण व्यथा का जिक्र है-

हायरे हाय ! राम... राम आजि बने चलि जाय।[10]

इसी तरह –

राम बनवासे गॅल, कैकेयीर मन भाल हॅल।

बिहू गीत गाने वाले युवक गीतों में इस घटना पर दुख प्रकट करते हैं कि सीता-हरण से अनभिज्ञ राम को इस घटना के बारे में कौन सूचित करेगा-

प्रभुदेव आसिले बने फुरि	'प्रभु जी वन में घूम रहे थे
रावने लोई गोल सीताक हरि	रावण ने सीता का हरण कर लिया
लक्ष्मण गोइसिल बने	लक्ष्मण भी वन में गये हुए थे
देही ओई बातरि दिबोगोई कोने॥[11]	हाय, कौन उन्हें यह संदेश देगा॥'

यहाँ राम के प्रति बिहुवा युवकों (बिहू गीत गाने वाले युवक) की संवेदनशीलता, आत्मीयता तथा उन युवकों की परदुखकातरता देखने योग्य है। बिहू गीतों में राम 'मर्यादा-पुरुषोत्तम' के गंभीर आवरण से बाहर आकर साधारण युवक जैसे व्यवहार करते हैं जो अपनी पत्नी के वियोग से व्याकुल होकर रोने लगते हैं। सीता हरण के पश्चात राम की व्यथा और मनोदशा का वर्णन बिहू गीतों में इस प्रकार मिलता है-

रामे बोले लक्ष्मण भाई सीता कोइक गोइला	राम कहते हैं, भाई लक्ष्मण सीता कहाँ चली गयी
दंदुका बनते सीता रावने हरिला	दन्दुक वन से सीता का रावण ने हरण कर लिया
.....	.....
राम कान्दे इनाइ-बिनाई लक्ष्मण कान्दे रोई	राम सिसक-सिसककर रोने लगे और लक्ष्मण भी
बाटते जटायु कान्दे सीतार कथा कोई	रास्ते में सीता की बात करके जटायु रोया।
.....	.....
राम कान्दे, लक्ष्मण कान्दे, कान्दे दुई भाई	राम रो रहे हैं, लक्ष्मण रो रहे हैं, रो रहे हैं दोनों भाई
हनुमंतई गसर दालत सीतार गुने गाय[12]	हनुमान भी पेड़ की डाली पर बैठकर सीता का गुण गा रहे हैं

कुछ बिहू गीतों में जहाँ राम को भगवान का दर्जा दिया गया है वहीं राम द्वारा किये गये कुछ अन्यायपूर्ण कार्यों एवं फैसलों जैसे- बालि वध, सीता को गर्भावस्था में वनवास देना, शंबुक वध आदि पर उनसे प्रश्न भी किया गया है। जैसे-

'राम राम राम राम राम नारायण।	राम राम राम राम राम नारायण
बालिक वध करिला प्रभु की कारण॥'	बालि का वध किया आपने, किस कारण॥'
.....	.....
रामचन्द्र गोसाँई तुमि अकार्ज करिला	रामचन्द्र प्रभु तुमने अनुचित कार्य किया
सीता मातृ गर्भावती बनत एरिला[13]	गर्भवती सीता माता को वन में छोड़ा॥'

इस प्रकार राम कथा के उज्ज्वल और स्याह दोनों ही पक्षों का बहुत ही मार्मिक वर्णन बिहू गीतों में मिलता है। इस क्रम में राम और राम कथा के प्रति असमिया जाति की आत्मीयता का भी पता चलता है। यहाँ राम के प्रति सिर्फ अंधभक्ति नहीं दिखाई देती बल्कि असमिया समाज के लोगों द्वारा राम से किये गये

कतिपय अन्यायों पर प्रश्न से उनकी बौद्धिकता की भी सूचना मिलती है। किसी समाज के लोक हृदय की ऐसी मार्मिक तथा निष्पक्ष अभिव्यक्ति अन्यत्र दुर्लभ है।

बारमाही गीतों में रामकथा:

बारमाही गीत यानी साल के बारहों महीने गाये जाने वाले विभिन्न गीत। असमिया बारमाही गीतों की तुलना हिन्दी साहित्य के बारहमासा गीतों के साथ की जा सकती है। इन गीतों में साल के बारहों महीने के प्राकृतिक परिवेश के अनुरूप राम तथा सीता की विरह-दशा का वर्णन मिलता है। असमिया बारमाही गीतों में 'राम बारमाही गीत' तथा 'सीता बारमाही गीत' बेहद प्रचलित है। राम बारमाही गीतों में राम के वनवास से लेकर सीता-हरण तक की घटना का वर्णन मिलता है। इन गीतों में राम का प्रजा के चहेते राजा के रूप में वर्णन किया गया है, जिनसे बिछुड़ने पर लोगों को सारा संसार अंधकारमय लग रहा है-

पुहर मासते राम बने कोइला सार	राम ने कहा पौष महीने में वन जाएंगे
अजोध्यार नर आसे राम देखिबार	अयोध्या की प्रजा राम को देखने आयी।
अजोध्यार नर-नारी करे हाहाकार	अयोध्या के नर-नारी हाहाकार करने लगे
राम प्रभु अबिहने जगत आंधार[14]	प्रभु राम के बिना जगत अंधकारपूर्ण है।

'राम बारमाही गीत' के अनुसार माघ महीने में राम 'दिगंबर वास (दिगंबर वेश धारण) करते हैं, फाल्गुन के महीने में 'रामर पेटत लागे भूक' (राम के पेट में भूख की ज्वाला उठती है)। असमिया लोक कवि के अनुसार तब राम ने धनुष को भूमि पर रखा और पेड़ पर चढ़कर फल तोड़ा और लक्ष्मण ने सारा इकट्ठा किया। तब राम को अकस्मात उस क्षण की याद आती है जब वे अयोध्या के राजकुमार थे। उनके आगे-पीछे अनेक लोग घूमते थे। चैत्र के महीने में धूप के कारण सीता का गला सूख जाता है और गर्म बालू पर चलना सीता के लिए मुश्किल हो जाता है। तब राम वृक्षों की डालियों को नीचे खींचकर सीता के लिए छाँव की व्यवस्था करते हैं। बैशाख महीने में राम यज्ञ करते हैं, जिसमें लाखों ऋषि-मुनियों का आगमन होता है। वन में भी राम ने इन सभी ऋषि-मुनियों का यथासंभव स्वागत किया और दान-दक्षिणा भी दिया। ज्येष्ठ महीने में लोककवि ने यह कहा है कि वन में राम के पास घर-बार कुछ नहीं है। बस पत्नी है और भाई है। लेकिन इस अवस्था में भी राम अत्यंत सुखी हैं। आषाढ़ के महीने में अयोध्या से लोग आकर विलाप करने लगते हैं कि राम के बिना हमारा जीवन दिन में ही अंधकारमय हो गया है। श्रावण महीने में भारी वर्षा होने पर राम सोचने लगते हैं-

माथाय हात दिया भाबे अरण्य भीतरे	माथे पर हाथ रखकर राम वन में सोचते हैं
पितृवाक्य पालिते आइलो भाई दुईजन	पिता के वचन का पालन कर दोनों भाई यहाँ आ गए
निदारून मातृ बने दिला कि कारण।	निर्दयी माता तुमने किस कारण से हमें वन भेजा।

भाद्र महीने में राम के सामने एक विपत्ति आयी- 'सुवर्णर मृग एक आसि देखा दिल' (एक सोने का मृग दिखाई देने लगा)। आश्विन के महीने में सीता की बात सुनकर राम उस मृग के शिकार पर निकले। कार्तिक महीने में उस मृग ने राम की तरह आवाज निकाला। सीता के फटकारने पर लक्ष्मण भाई को ढूँढने निकले। लोककवि के अनुसार इस अवसर पर ही कार्तिक महीने के शुक्ल पक्ष में रावण ने सीता का हरण किया।

इस प्रकार असमिया 'राम बारहमाही गीत' में राम का उल्लेख मिलता है, जिसमें राम कभी ऋषि-मुनियों के भी पूज्य हैं तो कभी सौतेली माता की निर्दयता से व्यथित साधारण व्यक्ति भी।

नावखेलोवा गीतों में रामकथा:

मानव जीवन में श्रम के दौरान गीतों का विशेष महत्त्व है। नाविक को नाव चलाते समय होने वाले श्रम के कारण जो थकान होती है उसे कम करने के लिए वे गीत गाते हैं। पतवार की ताल पर गाये जाने वाले इन गीतों को 'नावरीया गीत' कहा जाता है। असमिया साहित्य की विशिष्ट लेखिका केशदा महंत के अनुसार 'विभिन्न धर्मीय उत्सवों में, खासकर बरपेटा में होनेवाले 'नावखेल' में व्यवहृत होने के बाद 'नावरीया गीतों' को 'नावखेलोवा गीत' कहा जाने लगा।' इन नावखेलोवा गीतों में भी रामकथा के विभिन्न प्रसंग समाहित हैं। उदहारण के तौर पर इन पंक्तियों को देखा जा सकता है-

राम आसिल रे मायामृग मारि	'राम माया मृग का वध कर रहे थे
माया करे मारीस माया चूड़ामणि	माया शिरोमणि मारीच माया कर रहा था
माया मृग धरी साधोई रामर बिघिनि	माया मृग पकड़कर राम ने विपत्ति को गले लगा लिया
आँतर करिला राम लक्ष्मण दुई भाई	राम और लक्ष्मण दोनों भाइयों को उसने दूर कर दिया
हरिला रावने सीता शून्य घरे पाय॥[15]	अकेले पाकर रावण ने सीता का हरण कर लिया॥'

'नावखेलोवा गीतों' में भी अन्य असमिया लोकगीतों की ही तरह राम-सीता के मिलन की कथा वर्णित है। इन गीतों की अंतर्वस्तु वाल्मीकि रामायण पर ही आश्रित है। इनमें लोककवि की मौलिकता ज्यादा देखने को नहीं मिलती।

अन्य लोकगीतों में रामकथा :

उपर्युक्त लोकगीतों के अलावा असमिया जनजीवन में दिहानाम, तुलसीनाम, दुर्गानाम आदि लोकगीतों का भी प्रचलन है। इन सभी गीतों में कमोबेश रामकथा की उपस्थिति है। 'दिहानाम' मूलतः ईश्वर की आराधना से संबंधित से गीत है। इन गीतों को 'उपदेश गीत' भी कहा जा सकता है क्योंकि 'दिहा' का अर्थ ही 'उपदेश' है। इन गीतों में राम और सीता की कहानी को करुण कथा के रूप में गाया जाता है। इनमें

सदा ही आशावादी दृष्टिकोण से कथा को प्रस्तुत किया जाता है। भारतवर्ष के अन्य समाजों की तरह असमिया समाज में भी 'तुलसी के पौधे' की बहुत अधिक मान्यता है। एक तुलसीनाम लोकगीत के अनुसार- 'जिटो जने तुलसीर डाले-मुले सिडे/ साताम पुरुष तार नरकत परे' अर्थात 'जो व्यक्ति तुलसी के पौधे को उखाड़ता है, उसके सात पीढ़ियाँ नरक में चली जाती हैं। असमिया तुलसी गीतों में इस पवित्र तुलसी को राम द्वारा लाया गया बताया जाता है। राम द्वारा लाये गये तुलसी के पौधे को लक्ष्मण ने सींचा और सीता ने गोबर से तुलसी के नीचे के स्थान को पवित्र किया। इसलिए 'तुलसीनाम' में यह भी गाया जाता है कि पवित्र तुलसी को लाने वाले भगवान राम के चरणों में ही जनम-जनम तक हमारा मन लगा रहे। 'दुर्गानाम' में सामान्यतः राम को ईश्वर के रूप में नहीं बल्कि भक्त के रूप में दिखाया जाता है। लंका पर विजय हासिल करने हेतु राम द्वारा शक्ति-पूजा की कथा का वर्णन इन गीतों में मिलता है। इस कथा का ज़िक्र वाल्मीकि रामायण से लेकर कृतिवासी रामायण तथा निराला की 'राम की शक्तिपूजा' तक मिलता है।

बहरहाल, लोक साहित्य से किसी भी समाज और संस्कृति का पहचान जुड़ी होती है। इसमें मौलिकता, संगीतात्मकता, उच्च मानवीय मूल्यों के प्रति आस्था आदि का विशिष्ट गुण होता है, खासकर लोकगीतों में। लोक गीतों का लोक साहित्य में अन्यतम स्थान है। असमिया लोकगीत अपनी मधुरता एवं स्थानीय संस्कृति की जीवंत अभिव्यक्ति के लिए विख्यात है। इन गीतों में इतिहास और परंपरा का अविछिन्न प्रवाह है। विशेष रूप से वैसे लोकगीतों में जो राम कथा पर आधारित हैं। इन गीतों में राम के आदर्श एवं मर्यादा की सहज अभिव्यक्ति हुई है। जीवन के विभिन्न संस्कारों से जुड़े ये गीत अपने 'लोकल फ्लेवर' तथा 'फोक एलिमेंट्स' के कारण अद्भुत हैं जो राम कथा को एक नया, अनोखा तथा मौलिक आयाम देते हैं। राम कथा पर केंद्रित असमिया लोकगीत समाज में उच्च मानवीय मूल्यों की स्थापना हेतु प्रतिबद्ध हैं खासकर ऐसे समय में जब गालिब कहते हैं कि- 'आज दुश्वार है हर काम का आसां होना/ आदमी को भी मयस्सर नहीं इंसां होना।'

संदर्भ-सूची:

1. महंत, केशदा, असमिया रामायणी साहित्य: कथावस्तुर आँतिगुरि, पृ. सं. 704
2. वही, पृ. सं. 705
3. वही, पृ. सं. 706
4. वही, पृ. सं. 707
5. वही, पृ. सं. 706
6. वही, पृ. सं. 708

7. वही, पृ. सं. 709
8. वही, पृ. सं. 707
9. वही, पृ. सं. 708
10. वही, पृ. सं. 712
11. वही, पृ. सं. 712
12. वही, पृ. सं. 712
13. वही, पृ. सं. 713
14. वही, पृ. सं. 714
15. वही, पृ. सं. 723

सहायक ग्रंथ-सूची:

1. महंत, केशदा, असमिया रामायणी साहित्य: कथावस्तुर आँतिगुरि, महंत प्रकाशन, जोरहाट, 1990
2. नाथ, डॉ. ध्रुवज्योति, रामकथा आश्रयी असमिया साहित्य,पुर्वांचल प्रकाश, गुवाहाटी, 2014
3. शर्मा, डॉ. नवीनचन्द्र, असमर लोकसाहित्य, ज्योति प्रकाशन, गुवाहाटी, 2014
4. नेओग, महेश्वर, असमिया साहित्यर रूपरेखा, गुवाहाटी, 2012
5. शर्मा, डॉ. सत्येन्द्रनाथ, रामायणर इतिवृत्त, बिना लाइब्रेरी, गुवाहाटी, 2013
6. शर्मा, डॉ. सत्येन्द्रनाथ, असमिया साहित्यर समीक्षात्मक इतिवृत्त, अरुणोदय प्रेस, गुवाहाटी, 2011
7. गोस्वामी, इंदिरा, रामायना फ्रॉम गंगा टू ब्रम्हपुत्रा, बी. आर. पब्लिशिंग कार्पोरेशन, दिल्ली,1996
8. बुल्के, फादर कामिल, रामकथा उत्पत्ति और विकास, हिंदी परिषद प्रकाशन, इलाहाबाद, 2012
9. मागध, कृष्ण नारायण प्रसाद, शंकरदेव साहित्यकार और विचारक,पंजाब यूनिवर्सिटी, पटियाला,1976

(**परिचय** : लेखक तेजपुर विश्वविद्यालय, तेजपुर, असम के हिंदी विभाग में सहायक प्रोफ़ेसर पद पर कार्यरत हैं।)

हिंदी एवं नागा जनजाति की भाषाओं का अंतर्संबंध

थुन्बुई
संपर्क : 8974848138

नागालैंड में मुख्य रूप से सोलह जनजातियाँ निवास करती हैं, जिनकी भाषा-बोलियाँ अलग-अलग हैं। इनमें से अंगामी, आओ, लोथा और सुमी ऐसी मुख्य जनजातियाँ हैं, जिनकी भाषाएँ माध्यमिक स्तर तक विद्यालयों में सिखायी जाती हैं। अंगामी भाषा 'तेन्यिदिए' ही एकमात्र नागा-भाषा है, जिसका अध्ययन-अध्यापन स्थानीय स्तर पर उच्च-शिक्षा में होता है। शेष अन्य भाषाओं में कुछ साहित्यिक-रचनाएँ तो हुई हैं, परंतु व्याकरण एवं भाषिक संरचना की दृष्टि से इन्हें सुव्यवस्थित एवं सुविकसित भाषाओं की श्रेणी में रखा जा सके, ऐसी स्थिति ये भाषाएँ नहीं प्राप्त कर पाई हैं। परंतु लोथा एवं आओ भाषा में पर्याप्त साहित्यिक रचनाएँ हुई हैं जिनमें लोक कथाओं के साथ-साथ कुछ वर्तमान सामाजिक परिस्थितियों को विषय बनाकर उपन्यासों की भी रचना हुई है। जेलियांग भाषा में अपने ऐतिहासिक पात्र रानी 'गाईदिन्ल्यु' एवं 'जादोनोंग' जैसे स्वतंत्रता सेनानियों के जीवनी पर कुछ रचनाएँ हुई हैं। वास्तव में नागा जनजातियों द्वारा अधिकांश मौलिक रचनाएँ अंग्रेजी भाषा में ही उपलब्ध हैं।

अंग्रेजों के समय से ही अंग्रेजी माध्यम में शिक्षा आरंभ होने के कारण यहाँ के लोगों का झुकाव अंग्रेजी के प्रति अधिक रहा। ऐसी स्थिति में हिंदी भाषा को एक विषय के रूप में पाठ्यक्रम में समावेश करना छात्र-छात्राओं के लिए ही नहीं बल्कि अभिभावकों एवं शिक्षाविदों के लिए भी असहज लगना स्वाभाविक था। कुछ लोगों ने हिंदी भाषा को भारतीय संस्कृति एवं हिन्दू धर्म के वाहक के रूप में भी माना। फिर भी जहाँ तक हिंदी की बात है, स्वातंत्र्योत्तर भारत के दूसरे दशक से ही यहाँ के विद्यालयों में इसके पठन-पाठन का कार्य आरंभ हो गया था। प्रारंभ में सांप्रदायिकता के रंग के प्रभाव को देखते हुए, स्थानीय लोगों ने इसका विरोध एवं बहिष्कार किया और जिन लोगों में विरोध जताने की मंशा नहीं थी, वे भी इस भाषा के प्रति पूर्णतया उदासीन बने रहे। हिंदी के विरोध या उसकी उपेक्षा के पीछे लोगों की यह भी आशंका रही है कि केंद्र सरकार के द्वारा अंग्रेजी को राजभाषा से पदच्युत करके उसके स्थान पर हिंदी को पदासीन करने की पहल की जा रही है। समय के साथ-साथ जब लोगों को लगा कि हिंदी भाषा का हिंदू धर्म या उसके किसी संप्रदाय के प्रचार-प्रसार से कोई संबंध नहीं है, तब शिक्षित नागा समाज ने इसे अपनाना आरंभ किया तथा लोगों में इसे सीखने की प्रवृत्ति भी बलवती हुई। जन-संपर्क भाषा के रूप में व्यापक स्तर पर हिंदी के हो रहे प्रयोग को भी इसकी परिणति मानी जा सकती है, क्योंकि वृहद् भारतीय समाज में रहते हुए इसके

प्रति उदासीन रहना नागा समाज क्या, किसी के लिए भी संभव नहीं है। इतना ही नहीं, व्यावसायिक एवं रोज़गार की संभावनाओं के कारण भी यहाँ के लोगों में इसके प्रति रुझान बढ़ी है।

इन सबके बावजूद जहाँ तक नागा भाषाओं की बात है, इनमें से किसी का भी मूल रूप से हिंदी अथवा किसी अन्य भारतीय भाषा से कोई संबंध न होने के कारण यहाँ के लोगों को हिंदी भाषा सीखने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इसके पीछे यह कारण भी है कि इन्हें अपनी मातृभाषा के बाद द्वितीय भाषा के रूप में अंग्रेजी सीखनी पड़ती है, तब तृतीय भाषा के रूप में हिंदी का स्थान आता है। इसके अतिरिक्त हिंदी जैसी समृद्ध भाषा की तुलना में इनकी मातृभाषा की ध्वनि से लेकर वाक्य संरचना तक की अपूर्णता के कारण भी इन्हें हिंदी को पूर्णतया आत्मसात करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। यही कारण है कि 'हिंदी भाषा' को अपना मुख्य विषय बनाकर उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले नागा छात्र-छात्राओं को ध्वनियों के घोषत्व एवं प्राणत्व संबंधी उच्चारण, व्याकरणिक कोटियों को सही ढंग से समझने तथा प्रयोग करने और संरचनात्मक दृष्टि से मानक भाषा का प्रयोग करने में कठिनाई होती है।

यदि हिंदी भाषा के स्वरों की बात की जाए तो, चूंकि अधिकांश नागा भाषाओं में ह्रस्व-दीर्घ स्वरों का अंतर नहीं पाया जाता है, इसलिए इनके व्यावहारिक पक्ष के अंतर को समझने में यहाँ के लोगों को कठिनाई होती है। अध्येता को ह्रस्व-दीर्घ स्वरों की परिकल्पना न होने के कारण कभी-कभी अध्यापकों के द्वारा तान-अनुतान के अनुभव को अनुप्रयुक्त करते हुए इनके अंतर को समझाने का प्रयास किया जाता है, जो सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक दोनों ही दृष्टियों से सही नहीं है। इसी प्रकार यदि प्राणत्व के आधार पर इनकी भाषा-ध्वनियों का विश्लेषण किया जाए, तो यह पाया जाता है कि अधिकांश भाषा-बोलियों में महाप्राण जैसी ध्वनियाँ हैं ही नहीं। जिन नागा जनजातियों की भाषा अथवा बोली में ये ध्वनियाँ पायी जाती हैं, उनके प्रयोक्ता इनका उच्चारण सहज रूप से कर लेते हैं, परन्तु जिनकी भाषा में इनका अस्तित्व ही नहीं है, उन्हें ख, छ, ठ, थ, फ के सही उच्चारण करने के लिए निरंतर अभ्यास करने की आवश्यकता होती है। घोषत्व के आधार पर यदि ध्वनियों को देखा जाए, तो सामान्यतया अघोष एवं सघोष अल्प प्राण ध्वनियों के उच्चारण में विशेष कठिनाई नहीं होती है, परंतु सघोष महाप्राण ध्वनियों – घ, झ, ढ, ध एवं भ के सही उच्चारण के लिए सायास प्रयत्न की आवश्यकता होती है। ध्वनियों के उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न की दृष्टि से कंठ्य, दंत्य, ओष्ठ्य, तालव्य तथा दंत्योष्ठ्य ध्वनियाँ सहजतापूर्वक उच्चरित हो जाती हैं परंतु मूर्धन्य एवं वर्त्स्य ध्वनियों के उच्चारण में इन्हें परेशानी होती है और ड़ एवं ढ़ जैसे उत्क्षिप्त ध्वनियों का उच्चारण तो कुछ लोगों के लिए असंभव सा प्रतीत होने लगता है।

प्राणत्व संबंधी समस्याओं को यदि विस्तार से देखा जाय, तो 'जेलियांग' नामक एक नागा जनजाति की उप-जनजाति 'जेमे' तथा 'लियांगमै' के उच्चारण संबंधी भेद की तुलना की जा सकती है। प्रायः 'जेमे' लोगों की भाषा में महाप्राण ध्वनियों का अभाव पाया जाता है। इनकी भाषा में 'रखना' क्रिया

के लिए 'काइरा' शब्द का प्रयोग किया जाता है, जबकि 'लियांगमै' भाषा में इसी शब्द के लिए 'खाईरा' शब्द का प्रयोग होता है। इन दोनों में केवल 'क' एवं 'ख' का ही भेद है और इसके पीछे ध्वनियों के प्राणत्व भेद को ही देखा जा सकता है। अधिकतर 'जेमे' गाँव के लोग महाप्राण ध्वनियों का उच्चारण नहीं करते हैं। यही कारण है कि जब हिंदी के महाप्राण ध्वनि युक्त शब्दों का यह लोग उच्चारण करते हैं, तब भी अल्पप्राण ध्वनि ही उच्चरित होती है। उदाहरण स्वरूप हिंदी के 'खाना', 'धान' अथवा 'छाता' जैसे शब्दों के उच्चारण में इनके मुख से काना, दान अथवा चाता ही निकलता है। यही कारण है कि हिंदी के अधिकांश महाप्राण ध्वनि युक्त शब्दों के उच्चारण इनके द्वारा स्पष्टतया उच्चरित नहीं होते हैं। यद्यपि यह बात मातृभाषा व्याघात के अंतर्गत ही आयेंगी, फिर भी जब तक भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से ध्वनियों के उच्चारण प्रत्यय अथवा उच्चारण स्थान की उचित शिक्षा नहीं दी जाती, तब तक इन त्रुटियों को सुधार पाना प्रायः कठिन ही रहता है।

उच्चारण संबंधी समस्याओं के साथ-साथ नागा भाषाओं एवं हिंदी में कुछ संरचनात्मक भेद के कारण भी जब अन्य भाषा के रूप में हिंदी सीखी या सिखाई जाती है तब यहाँ के लोगों को विभिन्न कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। हिंदी भाषा संरचना के अंतर्गत व्याकरणिक कोटियों के 'रूपों' में विकारों की अपेक्षाकृत अधिकता के कारण इनका सही ढंग से प्रयोग करने में नागा भाषा-भाषियों को विशेष परेशानियों का सामना करना पड़ता है। प्रायः यह देखा जाता है कि कारक एवं पुरुष जैसे व्याकरणिक कोटियों के प्रयोग की दृष्टि से हिंदी एवं इनकी भाषाओं में समानताएँ पाई जाती हैं, परंतु लिंग, वचन, काल, वाच्य आदि के प्रयोग में अंतर के कारण इनके लिए शुद्ध एवं स्पष्ट हिंदी का प्रयोग कर पाना मुश्किल हो जाता है।

यद्यपि नागा भाषाओं के सार्वनामिक रूपों एवं संज्ञा पदों में प्रत्यय-प्रयोग से द्विवचन एवं बहुवचन रूप बनाए जाते हैं, फिर भी क्रिया-रूपों में वचन के अनुसार विकार देखने को नहीं मिलता। यही कारण है कि हिंदी भाषा के प्रयोग में भी ये प्रायः क्रिया के एकवचन रूप का ही प्रयोग कर बैठते हैं। लिंग की दृष्टि से हिंदी की तरह ही सार्वनामिक रूपों में कोई भेद नहीं किया जाता है, परन्तु हिंदी में क्रिया-रूपों के विकार से जिस प्रकार सार्वनामिक रूपों के लिंग का संज्ञान हो जाता है, वह व्यवस्था इनकी भाषाओं में नहीं पाई जाती। इसलिए इन भाषाओं को बोलने वाले लोग जब हिंदी का प्रयोग करते हैं, तब मातृभाषा-व्याघात के कारण, लिंग एवं वचन के अनुसार विकृत विविध क्रिया-रूपों का प्रयोग अनायास नहीं कर जाते हैं। इसी प्रकार 'काल' के संदर्भ में भी यह कहा जा सकता है कि भाषा में प्रयुक्त वर्तमान, भूत एवं भविष्य के सामान्य रूप से तो ये परिचित हैं, परंतु हिंदी भाषा के अंतर्गत तीनों के अलग-अलग उपकालों में प्रयोग किये जाने वाले क्रिया-रूपों से अपरिचित होने के कारण इन्हें सीखने में समय लगता है। इसी प्रकार वाच्य,

वृत्ति एवं पक्ष संबंधी भाषिक संरचनाओं में भी नागा-भाषा के प्रयोक्ताओं के लिए सही एवं सटीक हिंदी का प्रयोग कर पाना कठिन हो जाता है।

उपर्युक्त प्रतिकूलताओं के होते हुए भी हिंदी की देवनागरी लिपि की कुछ ऐसी विशिष्टताएँ हैं, जो नागा भाषाओं के लिए उच्चारण एवं लेखन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। इसमें ऐसी ध्वनियाँ हैं जो नागा भाषाओं की दृष्टि से 'रोमन लिपि' में अधिक उपयुक्त हैं। उदाहरणस्वरूप हिंदी में प्रयुक्त 'अनुस्वार' (या हल चिह्न युक्त 'न' एवं 'म') ध्वनि का उच्चारण जिस रूप में हिंदी के शब्दांत या मध्य में किया जाता है, उसका प्रयोग यहाँ की भाषाओं में शब्दारंभ में किया जाता है। इस ध्वनि को रोमन लिपि के माध्यम से लिखना दुःसाध्य सिद्ध हुआ है। जब हिंदी में 'चंदन', 'मम्मठ' या 'नंदन' जैसे शब्दों का उच्चारण किया जाता है, तब चंदन शब्द में 'च' एवं 'द' के मध्य उच्चरित ध्वनि 'न्' तथा मम्मठ में दोनों 'म' के बीच प्रयुक्त 'म्' का प्रयोग यहाँ की भाषाओं के अनेक शब्दों के आरंभ में किया जाता है। यदि इन ध्वनियों का प्रयोग शब्दों के आरंभ में किया जाए, तो कुछ उदाहरण इस प्रकार दिए जा सकते हैं – 'न्दुई' (सभा, सम्मेलन), 'न्की' (आपका या तुम्हारा घर), 'म्बौपुंगो' (स्थान विशेष का नाम)। इस प्रकार हम देखते हैं कि हिंदी में अनुस्वार के रूप में उच्चरित 'अ' कार रहित दंत्य 'न्' एवं ओष्ठ्य 'म्' का प्रयोग यहाँ की भाषाओं के शब्दों के आरंभ में किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त यहाँ की भाषाओं की एक विशेषता यह भी है कि इनमें तान-अनुतान के प्रचुर प्रयोग पाए जाते हैंं वाक्य स्तर पर तो इसका प्रयोग होता ही है, शब्द या रूप के स्तर पर भी अर्थ्यांतर के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। उदाहरणस्वरूप 'केदी' शब्द का उच्चारण जब 'समरोही' स्तर पर किया जाता है तब इसका अर्थ 'धरती' होता है और जब इसे 'आरोही' तान पर बोला जाता है तब इसका अर्थ 'बड़ा' होता है।

नागा जनजातियों की भाषाओं की एक बड़ी विशेषता यह भी है कि इनके कुछ शब्द देवनागरी की 'ङ' ध्वनि से आरम्भ होते हैं, इन्हें अंग्रेजी के रोमन लिपि में 'ngut-ra' या 'ngam-ra' के रूप में लिखा जाता है। इन्हीं शब्दों को उच्चारण की दृष्टि से देवनागरी लिपि में 'ङुत -रा' या 'ङाम-रा' के रूप में लिखा जा सकता है, जिन्हें अन्य भाषा-भाषी भी आसानी से उच्चारित कर सकते हैं। इस आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि लेखन की दृष्टि से भी देवनागरी लिपि इन नागा भाषाओं के लिए अंग्रेजी के रोमन लिपि की अपेक्षा अधिक सुविधाजनक एवं वैज्ञानिक है।

अंत में यह कहना अनुचित न होगा कि अधिकांश नागा जनजाति भाषाओं की व्याकरणिक एवं संरचनात्मक दृष्टि सुव्यवस्थित न होने के कारण इन भाषाओं का हिंदी अथवा किसी अन्य विकसित या समृद्ध भाषा के साथ तुलनात्मक अध्ययन नहीं के बराबर हुआ है। यदि हमारा उद्देश्य भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन मात्र न होकर, हिंदी का प्रचार-प्रसार करना भी है तो यह उचित रहेगा कि नागालैंड में बहु-प्रचलित एवं लगभग सभी नागा जनजातियों के द्वारा प्रयुक्त 'नागामिज़' बोली का हिंदी के साथ पहले

तुलनात्मक अध्ययन किया जाए ताकि नागामिज़ को एक व्यवस्थित भाषा का रूप प्राप्त हो सके, जिसके फलस्वरूप इस भाषा के माध्यम से यहाँ के लोगों को हिंदी सीखने तथा समझने की नई राह प्राप्त हो सके। जब एक भाषा के रूप में व्यवस्थित नागामिज़ को देवनागरी में लिपिबद्ध किया जाएगा, तब इस भाषा के प्रयोक्ता देवनागरी लिपि से भी भलीभाँति परिचित हो सकेंगे। इसके बाद यहाँ की मूल जनजाति भाषाओं का भी तुलनात्मक अध्ययन सहजता के साथ किया जा सकेगा। इस प्रकार यह आशा की जा सकती है कि संरचनात्मक दृष्टि से हिंदी एवं नागामिज़ की साम्यता तथा नागामिज़ के पूर्व-ज्ञान का लाभ उठाते हुए नागा जनजाति के लोग अपेक्षाकृत सुगमतापूर्वक हिंदी को सीखने तथा आत्मसात करने में सक्षम होंगे।

(**परिचय :** लेखक नागालैंड विश्वविद्यालय, कोहिमा परिसर में हिंदी विभाग के शोध-अध्येता हैं।)

परिस्थिति और निर्मिति : मोहन से महात्मा

राजीव रंजन गिरि

संपर्क- 7011945619

गांधी जी की दक्षिण अफ़्रीका की यात्रा एक वैसे नौजवान की यात्रा थी जो अपने सुनहले भविष्य-निर्माण के लिए रोजगार के सिलसिले में मादरे वतन से दूर जाता है। 1893 में करीब चौबीस साल के बैरिस्टर मोहनदास के ख़्वाब में भी दूर तक यह ख़्याल नहीं था कि जीवन इस तरह होने वाला है। हालाँकि दक्षिण अफ़्रीका की यात्रा से पहले इंग्लैण्ड प्रवास के दौरान मोहनदास की जीवन-दृष्टि थोड़ी अलहदा थी। किशोरावस्था में यह अलहदापन दिखने लगा था। बावजूद इसके जिस दिशा में आगामी जीवन गया, उसका अंदेशा स्वयं मोहनदास को भी नहीं था। सेंटपिटर्सबर्ग में मोहनदास के जीवन में जो घटित हुआ, वह इस नौजवान बैरिस्टर के लिए भले ही नया अनुभव था पर उस देश-काल में पहली घटना नहीं थी। यही वजह है कि मोहनदास के परिचित प्रवासियों को हैरत नहीं हुई। उन लोगों ने दोस्ताना सुझाव दिया कि इसे भूलने में ही भलाई है। पर मोहनदास भिन्न मिट्टी के बने थे, यहाँ से स्पष्ट होने लगा था। इस आलेख में बैरिस्टर मोहनदास के महात्मा बनने की प्रक्रिया का विश्लेषण किया गया है।

दक्षिण अफ़्रीका प्रवास के दौरान मोहनदास करमचन्द गांधी ने रंगभेद का दंश भोगा। महसूस भी किया और पहचाना कि यह दंश, महारोग का एक लक्षण मात्र है। उसका सहज परिणाम। असल महारोग है -रंगद्वेष। इस महारोग की शिनाख़्त के पश्चात गांधी ने मन-ही-मन सोचा कि मेरा कर्तव्य क्या है? मुझे यहाँ रहकर अपने हक़ और हकूक के लिए संघर्ष करना चाहिए? या अपने मुल्क लौट जाना चाहिए? अथवा अपमान का दंश सहकर भी अपना काम (मुकदमा) खत्म करके, अपने देश वापस जाना चाहिए? गांधी ने संघर्ष की राह चुनी। इस निर्णय के बाद, वे सार्वजनिक जीवन की तरफ़ कदम-दर-कदम बढ़ने लगे। लोगों से जुड़ते गए। लोगों को जोड़ते गए। संस्था बनायी। संगठन बनाया। 'इंडियन ओपीनियन' निकाला। दोहरी चुनौती थी गांधी के सामने। एक, रंगभेदी निज़ाम की नीतियों के खिलाफ़ संघर्ष। इससे संबंधित एक चुनौती और भी थी। रंगभेद के मारफ़त, जिन्हें विशेषाधिकार हासिल था, उनके नजरिए से संघर्ष। दो, दक्षिण अफ़्रीका में रहने वाले भारतीय जो रोज-ब-रोज रंगभेद का दंश झेलते हुए इसे वैध, सहज एवं स्वाभाविक मान चुके थे, उनकी मानसिक बुनावट से संघर्ष। इन्हें रंगभेद की अमानवीयता का अहसास कराना, यह समझाना कि रंगभेद की मुख़ालफ़त में एकजुट होकर संघर्ष करना हमारा फ़र्ज है, कि इससे निजात पाया जा सकता है। संघर्ष के पक्ष में लोगों को बनाये रखने और संघर्ष को अपने नजरिए के हिसाब से जारी रखने के

साथ-साथ जिससे संघर्ष कर रहे थे, उसे अपना पक्ष समझाने के लिए गांधी को भाषण करने और लेख लिखने पड़ते थे। नतीजतन, दक्षिण अफ्रीका में हुए संघर्ष में, गांधीजी केन्द्रीय शख़्सियत के रूप में उभरे। वकालत का पेशा छोड़ सार्वजनिक जीवन में गांधी ने जो कदम बढाए, आगे बढ़ते गए।

अपनी सोच को अमली रूप देने के लिए, गांधीजी ने कई ' प्रयोग ' किए। जो सोचा, अपने विचार जाहिर किए, उस मार्ग पर पहला कदम खुद बढ़ाया। अपने मूल दृष्टिकोण- सत्य और अहिंसा का पक्ष अनेक मौकों पर स्पष्ट किया। इसकी अहमियत पर अनेक दफ़े प्रकाश डाला। गांधी की लड़ाई जिनके पक्ष में थी, उनसे संघर्ष के रास्ते और मकसद के बाबत वाद-संवाद किया। उन्हें संकीर्ण नहीं होने देने के लिए बार-बार चेताया। उनसे भी खुले व उदार दिल से संवाद किया, जिनके विरुद्ध लड़ रहे थे। उन्हें समझाने का भरपूर प्रयास किया कि वे एक नई सभ्यता की रचना के लिए संघर्ष कर रहे हैं। कोई भी उनका दुश्मन नहीं है।

अपने विचार को जाहिर करने के लिए गांधी ने 'हिन्द स्वराज' रचा। इस किताब में हिन्दुस्तान की वास्तविक दशा बताई और अपने विचार की दिशा भी दिखाई। यह किताब, गांधी की चेतना और उनके चिन्तन की बुनियाद है और बुलन्दी भी।

भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के दौरान औपनिवेशिक दासता से जूझते हुए, जो वैचारिक सरणियाँ सामने आई , उसमें गांधी कहाँ खड़े थे? तत्कालीन नेताओं, बुद्धिधर्मियों, दार्शनिकों के बीच गांधी का रिश्ता किस वैचारिक जमीन से था ? समझने की सहूलियत के लिए, शिक्षा प्राप्ति के आधार पर, अगर कोटि विभाजन करें तो पहली कोटि बनेगी उनकी, जिन्होंने अंग्रेजी शिक्षा - जिसे हम ' आधुनिक शिक्षा ' के नाम से भी जानते हैं- पाई थी। दूसरी कोटि उन लोगों की, जो इससे वंचित थे। अलबत्ता इन दोनों कोटियों के अन्दर भिन्न -भिन्न वैचारिक सरणियाँ समाहित थीं। लिहाजा ये दोनों कोटियाँ भी निर्दोष और एकरेखीय नहीं हैं।

इन कोटियों के अन्दर मौजूद आवाजों की बहुलता और मुख्तलिफ़ प्रवृत्ति, दोनों कोटियों को, जटिलता प्रदान करती हैं। आशय यह कि अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त लोगों की कोटि के भीतर मौजूद बहुस्वर कभी एक दूसरे को काटते हैं तो कभी एक दूसरे में समाते दिखते हैं। यही हाल दूसरी कोटि - अंग्रेजी शिक्षा से वंचित का हैं, इसमें भी मौजूद विविध स्वर कभी एक दूसरे से संगति करते हैं, तो कभी सामना भी। इस संदर्भ में, गांधी की मिसाल सामने रखने पर, पता चलता है कि वे पहली कोटि में आते हैं। परंतु अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त तत्कालीन बुद्धिधर्मियों, विचारकों , नेताओं , दार्शनिकों से निहायत अलहदा सोचते हैं। गांधी के शब्द और कर्म जो विचार-दर्शन प्रस्तावित व स्थापित करते हैं , वे इस कोटि के अन्य लोगों की सोच में नहीं समाते। लिहाजा, इस कोटि से सम्बन्ध होने के बावजूद गांधी इसका अतिक्रमण करते हैं।

'हिन्द स्वराज' की रचना के बाद से साफ़ होने लगा था कि गांधी की शख्सियत के प्रति अभिभूत सरीखा भाव रखने वाले, उनके वरिष्ठ और कनिष्ठ पीढ़ी के आधुनिक शिक्षा में दीक्षितों ने, इनकी अवधारणा की अहमियत नहीं समझा था। गांधी के 'राजनैतिक गुरु ' गोपालकृष्ण गोखले ने उम्मीद जाहिर की थी कि हिन्दुस्तान में कुछेक साल रहने के बाद, गांधी खुद ही इसमें निहित धारणाओं को ख़ारिज कर देंगे। गोखले की उम्मीद के विपरीत, गांधी का विश्वास ' हिन्द स्वराज ' पर दृढ़तापूर्वक बरकरार रहा। गोखले की मानिंद दूसरे लोगों ने भी, गांधी की अवधारणाओं पर, इसी से मिलता- जुलता मत इज़हार किया था। इन लोगों द्वारा प्रयुक्त शब्दों मे भले ही हेर-फ़ेर हो, परंतु उससे अभिव्यक्त आवाज की अर्थवत्ता समान -सी थी।

सवाल उठता है कि गांधी के व्यक्तित्व को असाधारण मानवीय मौजूदगी मानने वाले क्यों नहीं समझ पा रहे थे, इनके शब्द और कर्म के जरिए अभिव्यक्त होते चिन्तन-दर्शन। आशीष नन्दी के अध्ययन से इसका जवाब मिलता है। नन्दी ने बताया है कि भारतीय जमीन पर औपनिवेशिक असर की मुखालफ़त के, ऊपरी तौर पर सीधे और सरल प्रतीत होने वाले, तौर-तरीकों के अंदरूनी पहलू पेचीदगियों से लबरेज था। उस दौर में, भारतीय समाज में मौजूद परंपरा प्रदत्त जड़ता और औपनिवेशिक जकड़बंदी से संघर्ष करना फिर भी आसान था; बनिस्बत उन औपनिवेशिक मूल्यों के जो, इस संघर्ष के दौरान ही अंत:सलिला की तरह, हमारे भीतर अपनी पैठ बना रहे थे।

सिक्के का एक पहलू था भारतीय मानस का भारतीय पारंपरिक जड़ताओं और औपनिवेशिक जकड़नों से, सकर्मक रूप से जूझना;और दूसरा पहलू था कि इस संघर्ष के साथ ही वह औपनिवेशिक मूल्यों को आत्मसात करता जा रहा था। भारतीय मानस में उपनिवेशवादी मूल्यों के पैठ बनाने और स्वीकृति पाने वाली प्रक्रिया से संघर्ष बेहद मुश्किल उपक्रम था। उपनिवेशवादी मूल्य, आधुनिक शिक्षा, आधुनिकता और इससे उत्पन्न विभिन्न विचार, इस दिशा में होने वाले हस्तक्षेप भी। टैगोर भौतिक क्षेत्र और आध्यात्मिक क्षेत्र को एक-दूसरे से निहायत अलहदा रखना चाहते हैं। इसलिए यह प्रस्तावित करते है कि भौतिक मामले में हस्तक्षेप के बावजूद आध्यात्मिक क्षेत्र को स्वायत्त रखा जा सकता है और ऐसा भारत के लिए जरूरी है।

गांधी के मुताबिक आधुनिकता की समूची संकल्पना मानव-विरोधी है। गांधी भौतिक और आध्यात्मिक क्षेत्र को एक-दूसरे से काटकर नहीं देखते। आधुनिकता की संकल्पना जिस मनुष्य का निर्माण करती है, उसमें स्वायत्त अध्यात्म के लिए जगह नहीं। 'संपूर्ण मनुष्य' की रचना के लिए भौतिक विकास के साथ ही आध्यात्मिक उन्नति भी आवश्यक है। सवाल यह है कि आधुनिकता जनित भौतिक विकास जिस भू-राजनीतिक-आर्थिक-सामाजिक वातावरण का निर्माण करता है, क्या उसमें स्वायत्त अध्यात्म के लिए जगह रहती है! कहना होगा कि उस वातावरण में अध्यात्म स्वायत्त नहीं रह सकता, जैसा टैगोर मानते हैं।

भारतीय-स्वाधीनता आंदोलन के दौरान गांधी महज देश की आजादी के लिए प्राण-पण से नहीं जुड़े थे, अपितु इसके साथ ही अपने आदर्श के अनुकूल लोगों की मानसिक बुनावट रचने का भी प्रयास कर रहे थे। गांधी प्रयासरत थे, एक ऐसे संपूर्ण-मनुष्य की रचना में जो भौतिक और आध्यात्मिक रूप से विकसित हो। ऐसे मनुष्यों से ही एक नयी सभ्यता की संरचना निर्मित हो सकती थी। आध्यात्मिक रूप से श्रेष्ठ मनुष्य की रचना, गांधी के मुताबिक आधुनिक-सभ्यता में मुमकिन नहीं। इसलिए गांधी ने आधुनिक सभ्यता के बरअक्स हर पहलू के बारे में सोचा और चिंतन इज़हार किया। बड़े-बड़े कल-कारखानों के समानांतर छोटे-छोटे उद्योग-धंधे और नगर केंद्रित विकास के बजाय गाँव को केंद्र में रखकर विकेन्द्रित विकास के ढांचा का प्रस्ताव, इसी मकसद का परिणाम था।

गांधी ने अपने मत के पक्ष में वाद-विवाद-संवाद किया, शत्रुता नहीं की। भारतीय-स्वाधीनता संग्राम में गांधी ने जितने कदम उठाए, अपनी दार्शनिक अवधारणा को पूर्णता में पाने के प्रयोग-सरीखे थे। इसीलिए गांधी, जहाँ जरूरी लगा, अपना मत-परिवर्तन करने से घबराए नहीं। उनका चिंतन एक जगह ठहरा हुआ नहीं, कदम-दर-कदम बढ़ता गया है; इस शर्त पर कि उनके आदर्शों पर आधारित नई मानवीय सभ्यता की रचना हो सके।

गांधी की अगुआई में भारतीय-स्वाधीनता आंदोलन की प्रकृति और संस्कृति बदली। गांधी ने आज़ादी की लड़ाई से लोगों को जोड़ा। आंदोलन का नेतृत्व भी लोगो से जुड़ा। अपने चिंतन -दर्शन को वैचारिक और संगठनात्मक स्तर पर लागू करने के लिए, स्वराज प्राप्ति के लिए, गांधी ने गांव को केंद्रीय इकाई बनाया। गांधी के शब्द और कर्म में 'स्वराज' का खास स्थान है। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान गांधी स्वतंत्रता के बजाय स्वराज प्राप्ति की बात करते थे। 'स्वतंत्रता' शब्द के स्थान 'स्वराज' शब्द-प्रयोग सिर्फ शब्द-चयन का मामला नहीं था। 'स्वराज' मे निहित है, गांधी की चेतना, चिंता, चिंतन और ख़्वाहिश का निचोड़। यह गांधी का वैचारिक-दार्शनिक प्रत्यय है । गांधी ने कई मौकों पर 'स्वराज' को व्याख्यायित और परिभाषित किया है। अपने बीज-ग्रंथ 'हिन्द-स्वराज' के चौथे अध्याय-'स्वराज क्या है'-के आखिर में , गांधी (संपादक) कहते हैं "स्वराज को समझना आपको जितना आसान लगता हैं, उतना ही मुझे मुश्किल लगता है। इसलिए फिलहाल मैं आपको इतना ही समझाने की कोशिश करूँगा कि जिसे आप स्वराज कहते हैं, वह सचमुच स्वराज नहीं है।"

'हिन्द स्वराज' की भूमिका में, इस किताब के बारे मे बताते हुए, गांधी ने लिखा है कि "मैं पाठको को एक चेतावनी देना चाहता हूँ। वे ऐसा न मान लें कि इस किताब में जिस स्वराज की तस्वीर मैंने खड़ी की है, वैसा स्वराज कायम करने के लिए आज मेरी कोशिशें चल रही हैं। मैं जनता हूँ कि अभी हिंदुस्तान उसके लिए तैयार नहीं हैं। ऐसा कहने में शायद ढिठाई का भास हो, लेकिन मुझे तो पक्का विश्वास है कि इसमें जिस स्वराज की तस्वीरें मैंने खींची है, वैसा स्वराज पाने की मेरी निजी कोशिश जरूर चल रही है।"

'हिन्द स्वराज' में 'पाठक' का पक्ष सुनकर, गांधी (संपादक) ने कहा "इसका अर्थ यह हुआ कि हमें अंग्रेजी राज्य तो चाहिए पर अंग्रेज (शासक) नहीं चाहिए। आप बाघ का स्वभाव तो चाहते हैं, लेकिन बाघ नहीं चाहते। मतलब यह हुआ कि आप हिन्दुस्तान को अंग्रेज बनाना चाहते हैं और हिंदुस्तान जब अंग्रेज़ बन जाएगा तब वह हिंदुस्तान नहीं कहा जाएगा, लेकिन सच्चा इंग्लिस्तान कहा जाएगा। यह मेरी कल्पना का स्वराज नहीं है।"

'स्वराज' के संदर्भ में गांधी ने उपरोक्त तीन उद्धरणों में जो विचार इज़हार किया है, उसके आधार पर, गांधी की स्वराज संबंधी कल्पना के बारे में अन्दाजा लगाया जा सकता है। दो उद्धरणों में, इन्होंने साफ़ किया है कि 'पाठक' जिसे स्वराज समझते हैं, वास्तव में वह स्वराज है ही नहीं। गांधी तो यहाँ तक कहते हैं कि वे निजी स्तर पर जिस स्वराज को पाने की कोशिश कर रहे हैं, उसके किए फ़िलहाल हिंदुस्तान तैयार नहीं है।

इस संदर्भ में, 'यंग इंडिया' में छपा गांधी का एक लेख काबिलेगौर है – स्वतंत्रता बनाम स्वराज। स्वराज के मायने समझाते हुए गांधी लिखते हैं , "मेरा यह भी दावा है कि स्वराज के ध्येय से सबको सर्वदा पूरा संतोष मिल सकता है। हम अंग्रेजी पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानी अनजाने में यह मान लेने की भयंकर भूल अक्सर किया करते हैं कि अंग्रेजी बोलने वाले मुट्ठी - भर आदमी ही समूचा हिन्दुस्तान हैं।" आगे गांधी कहते हैं कि "मैं हर किसी को चुनौती देता हूँ कि 'इंडिपेंडेंस' के लिए, वे एक ऐसा सर्व सामान्य भारतीय शब्द बतलाए, जो जनता भी समझती हो। आखिर हमें अपने ध्येय के लिए कोई ऐसा स्वदेशी शब्द तो चाहिए, जिसे तीस करोड़ लोग समझते हों।" गांधी को ऐसा शब्द दिखता है- स्वराज।

बकौल गांधी, स्वराज शब्द का "राष्ट्र के नाम पर पहले- पहल प्रयोग श्री दादाभाई नौरोजी ने किया था। यह शब्द स्वतन्त्रता से काफी कुछ आधिक का द्योतक है। यह एक जीवंत शब्द है। हजारों भारतीयों के आत्म-त्याग से यह शब्द पवित्र बन गया है।" गांधी जिस तरह की आज़ादी चाहते थे,उसे व्यक्त करने के लिहाज से ' स्वतन्त्रता' शब्द तंग था। गांधी की कल्पना के अर्थवृत्त का इज़हार करने में यह शब्द अपर्याप्त था।

गांधी अंग्रेजी हुकूमत से महज राजनीतिक आज़ादी नहीं चाहते थे। उन्हें यह गवारा नहीं कि शासन की पद्धति, सोचने का तरीका और सारा ढाँचा तो बरकरार रहे, फर्क आए तो सिर्फ शासन करने वालो में। राजनीतिक स्वाधीनता हासिल कर, आंग्रेजों की गद्दी पर हिन्दुस्तानी बैठ जाएं और उसी हिसाब से शासन संभालें, जैसे अंग्रेज करते थे; इसे ' स्वराज ' नहीं कहा जा सकता। गांधी को बखूबी अहसास था कि अंग्रेजी शासन के दौरान अंग्रजीयत रच- बस गई है, भारतीय मन-मस्तिष्क में। अंग्रेजी शासक के खिलाफ़ लड़ने वाले लोगों में अंग्रेजीयत के प्रति गहरा मोह था। अंग्रेजीयत ने भारतीय दिल - दिमाग में गहरी पैठ बना ली थी। इससे संघर्ष बेहद कठिन था। राजनीतिक आज़ादी प्राप्ति के बावजूद औपनिवेशिक

शासन के दौरान, पल्लवित - पुष्पित हुए वैचारिक धरातल को, चुनौती नहीं दी जा रही है , बल्कि इसे कायम रखना जरूरी समझा जा रहा है; गांधी यह देख-समझ रहे थे। यह विडंबना गांधी के लिए तकलीफ़देह थी, जिससे आज़ादी हासिल कर भी हिंदुस्तान को हारना था। कहना होगा कि उपनिवेशवाद के दोनों हाथ में लडडू थे। जब तक हिंदुस्तान गुलाम रहेगा, अंग्रेजी शासन के रूप में उपनिवेश की जीत थी। परन्तु स्वतंत्रता - प्राप्ति के पश्चात् उपनिवेश का ख़ात्मा होने पर भी उपनिवेशवाद की हार नहीं होनी थी। ऊपरी तौर पर दिखने वाली हार में भी उसकी भावी जीत निहित थी । भारतीय जनमानस में रच-बस गया था - अंग्रेजी शासन का ढाँचा, सोचने-समझने का तरीका, कायदे - कानून, रंग-गंध, रुचि और सांस्कृतिक संरचना। यानी उपनिवेश हारकर भी जीत रहा था और हिंदुस्तान जीतकर भी हार। ऐसी हालात में हिंदुस्तान का इंग्लिस्तान बनना निश्चित था। यही हिंदुस्तान की सच्ची हार थी।

गांधी की ख़्वाइश थी, राजनीतिक आज़ादी पाने के साथ-साथ हिंदुस्तान की इस हार पर जीत हासिल करना। कारण कि इस हार से निजात पाने के बाद ही शब्द के सच्चे अर्थ में औपनिवेशिक प्रभुत्व समाप्त होता; उसका असर ख़त्म होता। तभी मुमकिन होता गांधी का स्वराज। अलबत्ता गांधी समझ रहे थे कि हिंदुस्तान की जनता स्वाधीनता आंदोलन के जरिए जिस मिशन के लिए संघर्ष कर रही है, गांधी का स्वराज उससे, कई कदम आगे है। हिन्दुस्तानी जनता की मानसिकता उतने कदम आगे बढ़ने के लिए तैयार नहीं दिख रही थी; ' हिन्द स्वराज ' के रचना काल तक तो बिल्कुल नहीं, और हिन्दुस्तानी जनता के इच्छानुसार 'पार्लियामेंट्री ढंग का स्वराज' पाने के लिए सामूहिक प्रयास।

स्वराज प्राप्ति के लिए - गांधी के मुताबिक तो हर काम के लिए - सत्य और अहिंसा की राह पर चलना अपरिहार्य है। कुछेक प्रसंगों में, इन्होंने यह परखने का प्रयास किया है कि सत्य और अहिंसा कितना कारगर है ? नतीजा के तौर पर , गांधी ने पाया है कि यह मार्ग सर्वाधिक कारगर है। गांधी ने अपने साथियों की परीक्षा भी ली है- सत्य और अहिंसा की कसौटी पर ; कि वे कितने खरे साबित होते हैं। दूसरे शब्दों में, अपने समक्ष आई अलग-अलग चुनौतियों के दौरान , गांधी ने सत्य और अहिंसा की परीक्षा ली है और इसकी श्रेष्ठता की तस्दीक की है। साथ ही खुद को व अपने साथियों- कार्यकर्ताओं को जाँचा है कि सत्य और अंहिंसा की राह पर , कब तक और कितनी दूर तलक, जा पाते हैं।

स्वराज पाने के लिए, सत्य और अहिंसा के मार्ग पर चलते हुए,' पुरुषार्थ' आवश्यक है। गांधी - विचार - दर्शन में ' पुरुषार्थ ' पुरुष - सत्तात्मक पद नहीं। यह पितृसत्ता का पोषक प्रत्यय भी नहीं है। गांधी इस शब्द का प्रयोग करते थे- बहादुरी के अर्थ में। बड़ा काम के मायने में। बगैर पुरुषार्थ के स्वराज सम्भव नहीं। पुरुषार्थ के साथ-साथ, गांधीजी त्याग पर भी जोर देते थे। गांधी दर्शन, उन की चेतना व उनके चिन्तन में त्याग- वृत्ति का खास स्थान है। गांधी प्रस्तावित करते हैं कि त्याग भी अपने आप में पुरुषार्थ है; बशर्ते त्याग समाज के लिए हो।

सच्चाई और अहिंसा के रास्ते पर, बगैर पुरुषार्थ और त्याग-भावना के, चलना मुश्किल है। सत्य, अहिंसा, पुरूषार्थ और त्याग को मिलाने से हासिल होगा - स्वराज। इन चारों के समुच्चय से प्राप्त होगा- स्वराज।

स्वदेश वापसी के साथ ही गांधीजी ने देश- भ्रमण करना शुरू कर दिया था। अब वे किसी पहचान के मोहताज नहीं थे। उनकी सार्वजनिक शख़्सियत बन चुकी थी। जहाँ जाते, लोगों से मिलते। आज़ादी के लिए चल रही गतिविधियों की जानकारी प्राप्त करते। लोग भी उनकी बातें बहुत दिलचस्पी के साथ सुनते। गांधी की बातों में लोगों को निर्दोष ईमानदारी महसूस होती थी।

गांधी के सार्वजनिक जीवन में, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में, 1916 में किया गया भाषण बेहद अहम है। इस भाषण में, गांधी के विचार अपने तेज़ के साथ अभिव्यक्त हुए थे। जिन मुद्दों को इन्होंने उठाया, श्रोताओं के दिल छूए थे। मातृभाषा में शिक्षा का सवाल उठाते हुए गांधी ने समझाने का प्रयास किया कि किसी भी भाषा में महान विचार अभिव्यक्त हो सकते हैं। श्रेष्ठ, तार्किक या वैज्ञानिक विचारों की अभिव्यक्ति के लिहाज से किसी भी भाषा को कमतर मानने- समझने वाली मानसिकता का इन्होंने खंडन किया। मातृभाषा की महत्ता, माध्यम के तौर पर भाषाओं को एक समान समझने की सिफ़ारिश करते हुए, गांधी ने राष्ट्रभाषा का प्रश्न भी उठाया। तत्कालीन शिक्षा की भाषा, शिक्षितों और देश के आवाम के बीच दूरी पैदा कर रही थी। पढ़े- लिखे लोग अपने ही देश में विदेशियों की तरह अजनबी होते जा रहे थे। यह प्रवृत्ति राजनीतिक व सांस्कृतिक तौर पर घातक थी; स्वराज के मार्ग में बाधक भी।

स्वाधीनता आंदोलन में सक्रिय संगठनों के प्रस्ताव पारित करने, कागजी कार्रवाई करने मात्र से स्वराज हासिल नहीं होगा; इस पर जोर देते हुए गांधी ने आचरण पर बल दिया और ठोस कार्यक्रमों के निर्धारण तथा उस पर अमल करना अत्यावश्यक बताया। स्वराज और इसे पाने के लिए चल रहे आंदोलन, अपनी संरचना में महाआख्यान थे; लिहाजा छोटी-छोटी समझे जाने वाली बातों की उपेक्षा हो जाती थी, इसकी विराटता में। गांधी ने इन प्रश्नों को स्वराज प्राप्ति से जोड़ा। मसलन, गंदगी का प्रश्न। बनारस स्थित विश्वनाथ मंदिर के आस-पास की गलियों में गंदगी हो, रेल के डिब्बों या किसी भी सार्वजनिक स्थान की गंदगी हो; गांधी के मुताबिक ये सभी मामले भारतवासियों की मानसिकता और आचरण को उजागर करते थे। इनका रिश्ता स्वराज आंदोलन से बिल्कुल जुदा नहीं था। गंदगी का प्रश्न उठाकर, गांधी ने सफाई को स्वराज प्राप्ति का हथियार बनाया। दरअसल, वे गंदगी फैलाने वाले को श्रेष्ठ और उसे साफ करने वाले को हेय समझने वाले दिलोदिमाग को बदलने का प्रयास कर रहे थे। जो गंदगी फैलाता है, साफ करने की जिम्मेवारी भी उसी की है; न कि किसी और तबके की। भारतीय सामाजिक सरंचना में सफाई को लेकर, व्याप्त भेदभावमूलक मानसिकता से, जद्दोजहद की जरूरत के अहसास से पनपे थे ये विचार।

बनारस के भाषण में, गांधी ने विलासमय जीवन जीने वाले लोगों द्वारा की जाने वाली गरीबी की चर्चा की सीमाओं का उल्लेख किया। कहने वाले की बात का असर तब तक सामने वाले पर नहीं पड़ता, जब तक कि खुद उसे आचरण में नहीं उतारे। जिनके शरीर खुद जेवरात से लदे हों, उनके द्वारा गरीबी की चर्चा, गरीबी और गरीबों का क्रूर मजाक के सिवा क्या है! ऐसी चर्चा बौद्धिक विलास के अलावा कुछ नहीं ! शब्द और कर्म की एकरुपता में यकीन रखने वाले गांधी को यह हरगिज़ स्वीकार नहीं हो सकता था।

गांधी की अगुआई से पहले, भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में आम अवाम की भागीदारी न के बराबर थी। आजादी की लड़ाई में मलाईदार तबके ही सक्रिय थे। यह स्वाधीनता-आंदोलन की एक बड़ी सीमा थी। गांधी ने साफ-साफ शब्दों में कहा कि जिस देश के पचहत्तर प्रतिशत से भी अधिक लोग किसान हैं, उनकी भागीदारी के बगैर आजादी मुमकिन नहीं। वकील, डॉक्टर और सम्पन्न जमींदार ही जब तक स्वाधीनता- आंदोलन से जुड़े रहेंगे, आजादी दूर ही रहेगी। गांधी ने तो यहाँ तक कहा कि यदि हम किसानों के परिश्रम की सारी कमाई दूसरों को उठाकर ले जाने दें तो कैसे कहा जा सकता है कि स्वराज की कोई भी भावना हमारे मन में है। यह इज़हार कर, गांधी एक तरफ, स्वाधीनता-आंदोलन के पाट को विस्तृत और व्यापक करने को जरूरी बता रहे थे। 1920 में कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन की चवन्नी सदस्यता का बीज-विचार यहाँ दिखता है। दूसरी तरफ, किसानों का प्रश्न स्वराज - भावना के साथ जोड़कर, इसे स्वाधीनता - आंदोलन का एक अहम सवाल बनाने की वकालत कर रहे थे।

गांधीजी हिंसा करके, अराजकता फैलाकर या किसी भी तरीके से षडयंत्र का सहारा लेकर, स्वाधीनता हासिल करना नहीं चाहते । ऐसा करने वालों के स्वदेश प्रेम के प्रति आदर -भाव रखते हुए भी, वे इसे भीरुता, कायरपन का लक्षण मानते थे। गांधी सभी भारतवासियों को स्वावलम्बी, आर्थिक रूप से सुदृढ़ बनाना चाहते थे और आध्यात्मिक रूप से श्रेष्ठ। उनकी आत्मा से औपनिवेशिक प्रभुत्व के असर को समाप्त करना चाहते थे। हिंसा, अराजकता या षडयंत्र के जरिये यह संभव नहीं था। गांधी ने कहा था कि "कुछ एक बमों और कारतूसों की मदद से स्वराज प्राप्ति का प्रयत्न केवल पागलपन से भरा एक विचार है। इन साधनों से जो स्वराज प्राप्त किया जाएगा, वह देश के गरीब लोगों के लिए नहीं होगा।" सवाल पूछा जा सकता है कि क्या बम और कारतूस से प्राप्त स्वराज देश के गरीबों के लिए भी होता तो क्या वे स्वीकार कर लेते? जवाब होगा-हरगिज नहीं। कारतूस और बम से गांधी को स्पष्ट दिक्कत थी। एक, यह गरीबों को मुक्ति नहीं दे सकता। बगैर स्वावलंबी और आर्थिक रूप से सुदृढ़ हुए, गरीब सच्चे मायने में आजाद नहीं हो पाते। दो, बम के जरिये जो स्वराज आता उसमें हिंसा के लिए जगह निश्चित रूप से रहनी थी। शक्तिशाली लोगों के वर्चस्व की सम्भावना रहनी थी। गांधी जो कल्पना करते थे, जैसा समाज बनाना, सभ्यता निर्मित करना चाहते थे, उसमें हिंसा के लिए जगह नहीं थीं। गांधी तो हिंसा और शोषण पर टिकी पूरी 'शैतानी सभ्यता' का विकल्प रचने की कोशिश कर रहे थे। इसलिए हिंसा की राह को ख़ारिज करना स्वाभाविक था। उन्होंने जोर देकर

कहा, अंग्रेजों के रहते हुए भारत का उद्धार कदापि नहीं हो सकता; बावजूद इसके वे सत्य और अहिंसा की राह पर चलकर ही आज़ादी प्राप्त करना चाहते थे भले ही अपेक्षाकृत देरी से। गांधी का भाषण जहां समापन हुआ, उन्होंने कहा था कि ब्रिटिश-साम्राज्य के इतिहास पर गौर करने से पता चलता है कि यह साम्राज्य चाहे जितना स्वातंत्र्य-प्रेमी हो (ब्रिटिश सत्ता इसका झूठा दावा करती थी), बावजूद इसके स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए स्वयं उद्योग न करने वालो को वह हरगिज स्वतंत्रता देने वाला नहीं है। गांधी ने यह भी कहा कि हिन्दुस्तान को अंग्रेजी से मुक्ति, अपना स्वराज, दान के रूप में कदापि नहीं मिलने वाला; यदि किसी दिन हमें स्वराज मिलेगा तो वह अपने पुरुषार्थ से मिलेगा।

स्वाधीनता आंदोलन का नेतृत्व करते हुए गांधी ने भारतीय जनता के पुरुषार्थ को जगाने का सफल प्रयास किया। आम अवाम को निर्भय बनाया। वे चाहते थे कि भारतवासी भयमुक्त होकर स्वाधीनता-आंदोलन में शिरकत करें। अठारह सौ सत्तावन के बाद अंग्रेजी हुकूमत की बर्बरता को हिंदुस्तानियों ने झेला था। लोगों के दिल व दिमाग पर खौफ कायम था। गांधी यह खौफ़ मिटाना चाहते थे। चंपारण सत्याग्रह में इसका सकारात्मक परिणाम सामने आया। ब्रिटिश हुकूमत के कारिंदों की लाल पगड़ी देखकर कांपने वाले किसानों ने, गांधी के प्रभाव से निर्भीक होकर, सिपाहियों के सामने अपना बयान दर्ज कराया। अपने मकसद में सफल भी हुए।

गांधी ने जब असहयोग आंदोलन आरम्भ कर, भारतवासियों से, काउंसिल ,कोर्ट और कॉलेज का बहिष्कार करने की अपील की तो गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर, महामना मदनमोहन मालवीय जैसे अनेक महत्त्वपूर्ण लोगों ने इससे अपनी असहमति जाहिर की; खासकर विद्यार्थियों से स्कूल-कॉलेज छोड़ने की अपील पर। गांधी का मानना था कि अंग्रेजी शिक्षा को त्यागे बिना मुल्क की आजादी संभव नहीं है। भारतीयों में मौजूद हीनता, पामरता और भ्रम अंग्रेजी शिक्षा का ही प्रताप है। अंग्रेजी शिक्षा गुलाम मानसिकता निर्मित करती है। बकौल गांधीजी, यह कहना सरासर झूठ है कि हमें अंग्रेजी शिक्षा नहीं मिली होती तो इस वक्त हम कोई हलचल न कर रहे होते। कहना होगा कि गांधीजी अंग्रेजी शिक्षा के सिर्फ दुष्प्रभाव को देख रहे थे; उसकी सकारात्मकता का कोई पहलू नहीं। सवाल पूछा जा सकता है कि गांधीजी खुद अंग्रेजी शिक्षा में दीक्षित थे; क्या उनके शख़्सियत-निर्माण में, इसका कोई योगदान नहीं।

गांधी ने जीवन में कई ऐसे फैसले किए,जिससे तत्कालीन कतिपय महत्वपूर्ण लोगों की (जिन्हें गांधी भी आदर करते थे) रजामंदी नहीं थी; परंतु उनके प्रति बगैर किसी कटुता के, गांधी अपनी राह पर डटे रहे। असहयोग आंदोलन गांधी का ऐसा ही एक फैसला था। असहयोग आंदोलन के दौर में ही राष्ट्रीय शिक्षा के लिए विद्यालयों-महाविद्यालयों की स्थापना की आवश्यकता महसूस की गई। परिणामस्वरूप, गुजरात विद्यापीठ, काशी विद्यापीठ, तिलक महाविद्यालय पूना जैसे संस्थानों की स्थापना हुई।

गुजरात महाविद्यालय के उद्घाटन के अवसर पर, गांधीजी ने शिक्षा संबंधी अपना मत इज़हार किया। राष्ट्रीय शिक्षा के लिए इन्होंने पारंपरिक प्रतिमानों को खारिज़ कर, नया मेयार स्थापित करने की बात कही। अन्य महाविद्यालयों से अलग कसौटी बनाने और उस पर इन राष्ट्रीय महाविद्यालयों को जांचने का प्रस्ताव रखा। गांधी ने कहा कि इनके लिए नयी कसौटी होगी-चरित्र। चरित्र की कसौटी पर, जांचने पर नये महाविद्यालय खरा साबित होंगे। यही इनकी सार्थकता और सफलता है। गांधी का मानना था कि अंग्रेजी राज में भारतीय आत्मा शुष्क हो गई है और देश निस्तेज एवं ज्ञानहीन। आलम यह है कि हमारी आत्मा भी अंग्रेजों के अधीन हो गई है, यह सबसे दुःखद बात है; सबसे बड़ी हार है। इस पराजय से मुक्ति में गांधीजी राष्ट्रीय विद्यालयों की प्रासंगिकता देखते थे और सार्थकता भी।

सा विद्या या विमुक्तये-सूत्र गांधी को पसंद आया था। विद्या का मतलब और मकसद, जो इस सूत्र से जाहिर होता था, पसन्दगी का कारण था। जिससे मुक्ति मिले, वही विद्या है। मुक्ति भी दो तरह की। एक, ऐसी विद्या जो देश को पराधीनता से मुक्त करे। इसी में अंतर्निहित है, भारतीय आत्मा द्वारा स्वीकृत औपनिवेशिक वर्चस्व से मुक्ति। असहयोग-आंदोलन के अलावा भी कुछेक अवसर ऐसे आए, जब गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर और चिंतक आनंद कुमारस्वामी जैसी महान शख्सियतें गांधी से असहमत थीं। आपसी रिश्ते में कड़वाहट पैदा नहीं हुई। मित्रता का माधुर्य कायम रहा। ऐसे संदर्भो के बारे में, यह उल्लेखनीय है कि गांधीजी हर प्रसंग को राष्ट्रीय आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में आँकते थे। उपयोगितावादी नजरिये का ही परिणाम था, कभी-कभार कला और साहित्य के खिलाफ़ रायशुमारी। गांधीजी की ऐसी मान्यताओं से इत्तेफ़ाक रखना संभव नहीं। दो, ऐसी विद्या जो सदा के लिए मुक्ति प्रदान करे। यानी, मोक्ष जिसे परम-धर्म भी कहते हैं। इसे पाने के लिए सांसारिक मुक्ति अनिवार्य है। भय में रहने वाला मनुष्य मोक्ष नहीं पा सकता। इसीलिये गांधीजी ऐसी विद्या को त्याज्य मानते थे, जिससे मुक्ति नहीं मिले। गांधीजी के मुताबिक ऐसी विद्या धर्म विरुद्ध भी है।

गांधी-मार्ग पर चलना, व्रत पालन करना सरीखा है। इसके लिए आत्मा शुद्ध और मनोबल मजबूत होना चाहिए। गांधी ने सत्याग्रहियों और असहयोग करने वालों के लिए कुछ शर्तें बताईं थी। असहयोग आंदोलन के दौर में, उन्होंने कहा था कि जिन्हें ये शर्तें स्वीकार हो, वही इस आंदोलन में हिस्सा लें। शांति को अपने हृदय पर लिखकर रखें। न शांति भंग करें, न किसी को गाली दें, न गुस्सा करें, न किसी को तमाचा मारें और न शर्म-शर्म की आवाज़ लगायें। अगर किसी ने इसका पालन करने में भूल की हो तो उसे अपनी भूल स्वीकार कर, पश्चाताप करना चाहिए। भूल स्वीकारने, पश्चाताप करने और इससे सीख लेने वाले को गांधीजी सच्चा बहादुर मानते थे।

गांधी के स्वराज के राह में बाधा 'शैतानी सभ्यता' के प्रति मोह भाव रखने वाले थे। इससे भी बड़ी बाधा पेश कर रहे थे-प्राचीन संस्कृति के नाम पर, समाज में अस्पृश्यता और देवदासी जैसी घिनौनी प्रथा के

समर्थक। साथ ही मंदिर में पूजा और मस्जिद में इबादत करने वालो के बीच दुश्मनी मानने-फैलाने वाले। गांधी इन दोनों तरह के लोगों कृत्य धर्म विरोधी मानते थे। ऐसे लोगों के खतरनाक रवैये के प्रति सचेत रहने को प्रेरित करते थे। प्राचीन संस्कृति के पुनरुद्धार के एक प्रसंग में इन्होंने कहा था कि आप प्राचीन संस्कृति के सभी तत्वों का उपादानों का ही तो पुनरुद्धार करना चाहेंगे, जो उच्चादर्शपूर्ण हैं और जिनका स्थायी महत्व है। आप किसी भी ऐसे उपादान का पुनरुद्धार तो कर ही नहीं सकते, जो इनमें से किसी भी धर्म के विरुद्ध पड़ता हो। यह थी गांधी के संघर्ष के संघर्ष की जमीन। इसी जमीन पर स्वराज का बीज अंकुरित हो सकता था ,पल्लवित और पुष्पित भी हो सकता है।

(**परिचय :** लेखक युवा गांधीवादी चिंतक हैं, वर्तमान में दिल्ली विश्वविद्यालय के राजधानी कॉलेज में बतौर सहायक प्रोफेसर अध्यापन-कार्य में संलग्न हैं।)

त्रिपुरा की लोक कथाओं में नारी: कॉकबरक भाषा के संदर्भ में

डॉ. नुकफाँटी जमातिया
ईमेल: nukjamatia@gmail.com

मानव जीवन में लोक साहित्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। किसी भी समुदाय की संस्कृति की झलक उसके लोक साहित्य में निहित होती है। उस समुदाय की सामाजिक संरचना, धार्मिक आस्था, लोक मान्यताएँ एवं विश्वास, सामाजिक कानून व्यवस्थाएँ तथा रीति-नीति के प्रत्यक्ष दर्शन लोक साहित्य में ही स्पष्ट में दिखाई देते हैं। मनुष्य जन्म से लेकर मरण तक के सफ़र में बहुत ही गहरे रूप में अपनी लोक मान्यताओं से संबद्ध रहता है। भारत के पूर्वोत्तर में स्थित आठ राज्यों में से एक है-'त्रिपुरा', जिसमें 19 जनजातियाँ निवास करती हैं। 'कॉकबरक' इस प्रदेश की प्रमुख भाषा है, जो मुख्यत: आठ जनजातियों-त्रिपुरी (देबबर्मा), रियांग, जमातिया, नुवातिया, मुरासिंह, उचई, कलई व रुपिनी जनजातियों द्वारा बोली जाती हैं। कॉकबरक भाषा तिब्बती-चीनी भाषा परिवार से संबद्ध है जो तिब्बती-बर्मी शाखा से विकसित 'बोडो' प्रशाखा की भाषा है।

'कॉकबरक' भाषा त्रिपुरा राज्य की द्वितीय सरकारी भाषा है। सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक दृष्टि से उपेक्षित होने के बावजूद लोक साहित्य इस भाषा में व्यापक रूप में विद्यमान है। वस्तुत: इस भाषा में लोक साहित्य का स्वरूप लिखित से ज्यादा मौखिक है। आज भी तुलना करें तो इस भाषा में प्रकाशित साहित्यिक पुस्तकों के अभाव को देखा जा सकता है। प्राचीन समय से ही मौखिक अभिव्यक्ति यहाँ लोक साहित्य का माध्यम रहा है। हालांकि वर्तमान में लिखित अभिव्यक्ति की ओर अधिक से अधिक ध्यान दिया जा रहा है, जिससे मौखिक तौर पर हम जिन लोक कथाओं को सुनते आये हैं उन्हें सहेज कर सुरक्षित रखा जा सके। वस्तुत: इस भाषा में लोक साहित्य का स्वरूप लिखित से ज्यादा मौखिक है।

कॉकबरक लोक कथाओं में मुख्यत: झूम-खेती वर्णन, कृषि-वर्णन, प्रेम-वर्णन, धार्मिक विश्वास आदि मुखरित हुआ है, इनमें नारी की उपस्थिति भी प्रमुख रूप से बनी रही है। 'कॉकबरक लोक कथाओं में स्त्री' पर बात करते हुए यह कहना उचित होगा कि यहाँ नारी की भूमिका प्रारंभ से ही महत्वपूर्ण रही है। चाहे वह सकारात्मक स्वरूप में हो या नकारात्मक स्वरूप में। किसी भी साहित्य और समाज में स्त्री और पुरूष को सिक्के के पहलुओं के समान स्वीकारा गया है। जो एक दूसरे के अभाव में अपूर्ण है, अस्तित्वहीन हैं। दोनों ही प्रकृति के दो आवश्यक अंग हैं। दोनों के मिलने से ही एक परिवार की संकल्पना होती है, नारी और

पुरूष की इसी पूर्णता का प्रतीक ही समाज है। हर एक जाति, सभ्यता और संस्कृति तथा समाज में नारी का एक विशिष्ट स्थान है, कोई भी कथा नारी के अभाव में अपूर्ण सी प्रतीत होती है।

कॉकबरक भाषा-भाषी समाज में स्त्री-जीवन के विविध आयाम को जानने और समझने के लिए उसके अतीत और वर्तमान को समझना अत्यंत आवश्यक है। पूर्वोत्तर को लेकर प्राय: आम लोगों की यह धारणा रही है कि इन राज्यों में रहने वाली जनजातियों का समाज मातृसत्तात्मक है। यहाँ स्त्रियों की भूमिका सामाजिक-धार्मिक कार्यक्रमों में महत्वपूर्ण है। उन्हें इच्छानुसार कार्य करने की पूर्ण स्वतंत्रता है। अपनी इच्छानुसार वर का चुनाव कर प्रेम-विवाह करने की विशेष छूट है आदि, लेकिन वास्तविकता कुछ और ही है।

कॉकबरक भाषी परिवारों में हमें पितृसत्तात्मक व्यवस्था ही देखने को मिलती है। परिवार में पिता ही मुखिया होता है, और लगभग सभी अधिकारों का मालिक भी। घर के सभी सदस्यों को उसके द्वारा लिए गए निर्णयों को मानना पड़ता है। किसी भी महत्त्वपूर्ण कार्य हेतु पिता की अनुमति और सलाह लेना भी जरूरी समझा जाता है। परिवार में पिता घर के हर कार्य को संभालता है, उसी तरह वह समाज के प्रत्येक धार्मिक-सामाजिक कार्यों में भी सजग रहता है। वहीं स्त्रियाँ घरेलू कार्यों के साथ-साथ कृषि संबंधी कार्यों में पूरा हाथ बँटाती हैं। देखा जाए तो कृषि संबंधित कार्यों में स्त्रियों की भागीदारी तीन गुना रहती है। आशय यह है कि मुख्यत: घर के भीतरी काम को स्त्रियाँ ही करती हैं और बाहरी काम, नौकरी आदि पुरूषों के हिस्से होते हैं।

'कॉकबरक लोक कथाओं में नारी' को स्पष्ट करते हुए मैं कुछ महत्वपूर्ण एवं बहुचर्चित लोक कथाओं का ज़िक्र करना चाहूँगी, जिसमें कॉकबरक भाषी स्त्रियों की स्थितियाँ स्पष्ट हुई हैं। आरंभ से देखें तो त्रिपुरा राज्य में राजा का शासन था, आम जनता राजा के नियमों, आदेशों को मानने को बाध्य थी। राजसी सैनिक अपनी-अपनी शक्तियों मनमाना दुरुपयोग करते थे। ऐसी परिस्थितियों में इस समाज की स्त्रियों को किन-किन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता था, वे सारी स्थितियाँ कॉकबरक लोक कथाओं में बखूबी अभिव्यक्त हुई हैं। कॉकबरक भाषी समाज में ऐसी कथाएँ भी मिलती हैं, जहाँ स्त्री, पुरुषों के भोग-विलास का शिकार होती रही हैं। अपने ही परिवार में, अपने कहलाने वाले लोगों के हाथों घर की स्त्रियाँ अपने स्त्रीत्व की रक्षा नहीं कर पाती। ऐसी ही कथा है 'कान्चनमाला' की। जिसमें कान्चनमाला को अपने जेठ की वासनाओं की आग में विधवा का जीवन यापन करना पड़ता है।

'कान्चनमाला' की कथा उस समय की है जब त्रिपुरा राज्य में राजतंत्र था। जब-जब राज्य में युद्ध छिड़ने की सूचना आती, तब राज्य की सैन्य शक्ति बढ़ाने हेतु जितने भी विवाहित या अविवाहित युवक थे उन्हें सेना में भर्ती होना ही पड़ता था। यह ऐसे ही एक परिवार की कथा है जिस घर का बड़ा पुत्र पहले से ही राज्य की सेना में नियुक्त था। जो कि राजधानी में ही रहता था। जब वह लम्बे अरसे के बाद अपने छोटे भाई

की शादी में घर आया तो अपने भाई की पत्नी को देखकर आश्चर्यचकित रह जाता है। जिस लड़की को उसने बचपन में देखा था अब वह अत्यंत रूपवती बन चुकी थी, वह और कोई नहीं कान्चनमाला थी। यहीं से कान्चनमाला की ज़िन्दगी की त्रासदी का आरंभ होता है। कान्चनमाला को देखकर जेठ की सोई हुई वासना जागृत हो उठती है और वह अपने ही छोटे भाई की पत्नी को पाने के लिए लालायित व बेचैन हो उठता है। ऐसे ही समय में सूचना आती है कि युद्ध छिड़ने वाला है। अत: सैनिकों की भर्ती की जाएगी। कान्चनमाला का जेठ मौके का फायदा उठाकर अपने छोटे भाई को अपने साथ राजधानी लेकर चला जाता है। बेचारी नवविवाहिता कान्चनमाला पति वियोग में ही रह जाती है।

तीन महीनों के बाद जब कान्चनमाला का जेठ अकेला ही घर वापस आता है तो उत्साही कान्चनमाला अपने पति का समाचार पूछती है। पहले तो जेठ कुछ नहीं बताता, किन्तु तीन-चार पात्र शराब के पी लेने के बाद उसके मुँह से सच्चाई बाहर निकल आती है कि उसके पति को वह कैद करके कहीं छोड़ आया है। अब वह कभी वापस नहीं लौटेगा, जिसे सुनकर वह बहुत दुखी हो जाती है। कान्चनमाला समझ जाती है कि यह सब उसके जेठ का किया धरा है। उसका पति फिर कभी लौटकर वापस नहीं आता और वह अपने ही घर में जेठ द्वारा शोषण का शिकार बनकर रह जाती है। उसे विधवा के रूप में जीवन यापन करना पड़ता है।

इसी तरह एक और कथा है-'कॉकतासादी'। यह लोककथा भी राजतंत्र शासनकाल की कथा है। जिसमें आम परिवार का चित्रण है। 'कॉकतासादी' अर्थात् 'बातें न करना' या मौन रहना। राजतंत्र काल में आम जनता को अपनी आवाज उठाने का अधिकार नहीं था। अत: राजसी सैनिक अपनी मन-मर्ज़ी करते थे। बेटी-बहन सुरक्षित नहीं थी। इनाम के लोभ में किसी की भी बहन-बेटी को उठाकर राजमहल ले जाते थे। 'कॉकतासादी' लोककथा में माता-पिता दोनों बेटियों को काम पर जाने से पूर्व सदैव घर से बाहर न निकलने, जोर से न बोलने की हिदायत इसलिए देते थे कि उनकी बेटियों के साथ कुछ ऊँच-नीच न हो जाए। अपनी बेटियों की सुरक्षा की दृष्टि से वे ऐसा करते थे। बेटियाँ भी सदा माता-पिता की बात मानती थीं। इतनी सावधानी बरतने के बावजूद दोनों युवतियाँ राजा के सिपाहियों द्वारा हर ली जाती हैं, और माता-पिता को बेटियों की जुदाई सहनी पड़ी। वे अपनी बेटियों की रक्षा करने में असफल ही रह जाते हैं।

कॉकबरक भाषा में ऐसी कई कथाएँ हैं, जहाँ नारी अपनी पहचान एवं अस्तित्व बनाए रखने के लिए संघर्ष करती है। किन्तु जब संघर्ष साथ छोड़ दे ऐसी स्थितियों में उसे मोक्ष का मार्ग अपनाना पड़ता है। उदाहरण के लिए सुप्रसिद्ध 'चेथुवाँग' लोककथा को मिसाल के तौर पर देखा जा सकता है। 'चेथुवाँग' लोककथा में, बड़े भाई को अपनी ही सगी बहन से प्रेम हो जाता है। नदी पार करते समय भाई अपनी बहन की टाँगों को देख मोहित हो जाता है। तब से वह इस जिद में बैठ जाता है कि वह अपनी ही बहन से विवाह करेगा। अपने पुत्र की इस बेबुनियाद और लज्जापूर्ण हठ से माता-पिता को बहुत आघात पहुँचता है। किंतु

वह इस असंगत प्रस्ताव के लिए अपने माता-पिता पर जोर डालता है। अपने पुत्र के इस हठ के आगे दोनों हथियार डाल देते हैं और विवाह की तैयारी में लग जाते हैं। इधर बहन इन सब से बेख़बर जी रही थी। घर में शादी की तैयारियाँ शुरू होती है, जिसे देख कर वह उत्साहित होकर पूछती है कि- किसके साथ भाई का ब्याह हो रहा है?...दुल्हन कैसी है?...कौन है?...कहाँ से है? ...किन्तु माता-पिता उससे कुछ भी नहीं कहते।

सच्चाई से बेख़बर वह अपनी ही शादी की तैयारियाँ जोर-शोर से करने में जुट जाती है। शुरूआत में उससे बातें छुपाई जाती हैं किन्तु जैसे-जैसे दिन नजदीक आते गए उसे सच्चाई का पता चल जाता है। बहन पर माता-पिता अपने ही भाई से विवाह करने के लिए दबाव डालते हैं, जिसे वह साफ इंकार कर देती है। वह परिवार के लोगों को समझाती है, विनती करती है, लेकिन कोई सुनने वाला नहीं होता। वह रोती-गिड़गिड़ाती है पर परिवार मूक बना रहता है। अंतत: शादी का दिन आ ही जाता है। वह बहुत दुखी होकर अपने ईश्वर की स्तुति करती है और 'चेथुवाँग' पेड़ के ऊपर बैठकर रोती हुई गाती है कि-

"लक चेथुवाँग लक!

आङ कुथार अङ खे,

तेई आनि कुथार मुङ

ओ हावो साजकना तङखे

लक चेथुवाँग लक!"

अर्थात-

"बढ़ो चेथुवाँग बढ़ो!

अगर मेरा स्त्रीत्व पवित्र है,

और इस पवित्रता की कथा

सदियों तक सुनायी जाएँ,

तो, "बढ़ो चेथुवाँग बढ़ो!

तभी चेथुवाँग की शाखाएँ ऊपर की ओर बढ़ने लग जाती हैं और आकाश में विलीन हो जाती हैं। जब उसके पास कोई चारा न बचा तो उसने एक मात्र राह को चुना- मोक्ष की राह। अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए वह हार नहीं मानती, समझौता नहीं करती और अन्तत: मोक्ष के मार्ग को अपना लेती है।

'कॉकबरक' भाषी समाज में विवाह एक महत्त्वपूर्ण धार्मिक उत्सव माना जाता है। यहाँ एक विवाही प्रथा प्रचलित है, बहु विवाह को सामाजिक अपराध माना जाता है। इस समाज में विधवा विवाह और तलाक भी मान्य है, युवक-युवतियाँ आपस में स्वतंत्र रूप से मेल-जोल रखते हैं, किन्तु स्त्रियों को इच्छानुसार वर चुनने का अधिकार नहीं रहा था। अगर वह अपने मनपसंद वर का चुनाव करती है और परिवार उसे नापसंद कर दे, अस्वीकार कर दे तो उसे परिवार और समाज दोनों से ही बहिष्कृत कर दिया जाता था।

इसी तरह की वेदना बहुचर्चित 'खुमपुई' लोककथा में अभिव्यक्त हुई है। यह लोक कथा कॉकबरक भाषी समाज में बहुत चर्चित है, जिसमें एक ऐसे 'अचाई' (ओझा) के परिवार की कहानी है जो अपनी जवान बेटियों के प्रति लापरवाह है। जवान बेटियाँ खुद अपने जीविकोपार्जन के लिए संघर्षरत हैं। तपती धूप, बारिश की मार सहती दोनों बहनें 'झूम' में अथक परिश्रम करती हैं, और पिता को कोई फ़िकर नहीं। बड़ी बहन 'राइमा' को झूम खेती करते-करते एक श्रापित युवक जो कि अजगर के रूप में है, से प्रेम हो जाता है और अपनी इच्छा से वर का चुनाव कर वह अपने को उस युवक की विवाहिता स्वीकार कर लेती है। अपनी छोटी बहन साइमा से वचन लेती है कि घर में किसी से कुछ न कहे। कुछ दिनों तक माता- पिता से यह बात छुपी रहती है, लेकिन जैसे ही पिता को इस बात की भनक लगती है वह छोटी बेटी साइमा से सच्चाई उगलवा लेता है और गुस्से से पागल हो उठता है। वह पिता, जिसने कभी अपनी बेटियों के सुख-दुख का ख़्याल नहीं रखा। वह बेटी के द्वारा उठाए गए इस कदम से बहुत नाराज और अपमानित होता है। समाज में अपना अपमान समझता है। मौका मिलने पर अपने ही दामाद की धोखे से हत्या कर देता है। दु:खी व हताश होकर राइमा जल समाधि ले लेती है। उसके पास कोई और चारा नहीं बचता। अर्थात् बहन (चेथुवांग लोककथा), राइमा (खुमपुई लोककथा) आदि स्त्रियों की आत्महत्या को सामाजिक नैतिकता पर एक आघात के रूप में देखा जा सकता है।

कॉकबरक लोक कथाओं में नारी चेतना और उसके कर्मठ जीवन, त्याग, उत्सर्ग आदि गुणों के साथ उसके गौरव का चित्रण किया गया है। कॉकबरक भाषी स्त्रियाँ प्राय: स्वावलंबी और अस्तित्ववादी होती हैं। जिसकी गूँज इस भाषा की लोक कथाओं में आज भी मुखरित है। स्त्री-चित्रण इस भाषा की लोक कथाओं में व्यापक रूप में अभिव्यक्त है। वह इतनी सामर्थ्य रखती है कि प्रतिकूल परिस्थितियों में वह अपने अस्तित्व की रक्षा कर सकती है। अपने पैरों पर खड़ी भी हो सकती है।

यही कारण है कि कई स्त्रियाँ विवाह न करके अपने माता-पिता या भाई के साथ रहना पसंद करती थीं। स्त्रियों के इस फैसले को समाज में बुरा नहीं माना जाता है। वर्तमान में भी खास तौर पर इस तरह की स्थितियाँ 'जमातिया समाज' में दिखती हैं। कॉकबरक लोककथाओं में वर्णित स्त्रियों के इस संघर्ष से स्पष्ट होता है कि अतीत में उनकी स्थिति विचित्र रही होगी, लेकिन विवाह के बाद उन्हें अपनी प्रवृत्ति के अनुसार चलने में कोई रोक-टोक नहीं थी। सामान्य जीवन के अलावा भी समाज के सामाजिक-सांस्कृतिक कार्यों में पति के साथ भाग लेती थी। अब स्थिति दूसरी है, आज स्त्रियाँ भी इच्छानुसार वर का चुनाव कर सकती हैं। दूसरे शब्दों में उसे भी प्रेम विवाह करने की स्वतंत्रता है।

कॉकबरक भाषा-भाषी समाज की स्त्रियाँ भी इस बात को समझ चुकी हैं। उनमें चेतनाएँ विकसित हो चुकी हैं। आज वह जीवन की विपरीत स्थितियों से न तो डरती हैं और न ही पलायन करती हैं। वह विषम से विषम स्थितियों से संघर्ष करते हुए अपनी क्षमता और शक्ति का परिचय देती हैं। बेटी, बहू, पत्नी, माँ के रूप में त्याग, दया, क्षमा, ममता, समर्पण, धैर्य आदि का परिचय वह सदियों से देती आयी हैं। अब वह शिक्षा और ज्ञान के क्षेत्र में आगे बढ़ना चाहती हैं। हर संरचनात्मक एवं संगठनात्मक कार्यों में पुरुषों के समान भाग लेकर समाज में अपनी भूमिका को पुख़्ता करना चाहती हैं।

निष्कर्षत:, कॉकबरक भाषा के रचनाकारों ने मौखिक और लिखित साहित्य दोनों में नारी चेतना और नारी के कर्मठ जीवन, त्याग, उत्सर्ग आदि गुणों के साथ उसके गौरव एवं चेतना का चित्रण किया है। माना कि कॉकबरक भाषी स्त्रियाँ पूर्व में सामाजिक, परिवारिक बंधनों बंधी हुई थी, किंतु वे तब भी स्वावलंबी थीं और वर्तमान में भी हैं। वह इतनी सामर्थ्य रखती हैं कि अपने पैरों पर खड़ी होकर अपने और जरूरत पड़ने पर अपने पूरे परिवार का भार वहन सकती हैं। वह अनपढ़ हो या पढ़ी-लिखी, शहरी हो या ग्रामीण, कामकाजी या फिर गृहिणी उनके अंदर अभिव्यक्ति का सामर्थ्य है। समाज की स्वस्थ व्यवस्था के लिए जीवन की सबसे बड़ी और पहली आवश्यकता सामाजिक प्राणियों की स्वतंत्रता है, खासतौर पर स्त्री की स्वतंत्रता सबसे महत्त्वपूर्ण है। जिस समाज, समुदाय और प्रदेश की स्त्रियाँ स्वतंत्र, स्वावलंबी और चेतित होंगी, उसी की उन्नति होगी और विकास संभव होगा।

सहायक ग्रंथ :

1. नयापथ (त्रिपुरा विशेषांक) : सं. मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, नई दिल्ली, 2010
2. स्टेटस एण्ड एम्पॉवरमेन्ट ऑफ ट्राइबल वोमेन इन त्रिपुरा:डॉ. कृष्णा नाथ भौमिक, कल्पज पब्लिकेशन, दिल्ली, 2005

(**परिचय :** लेखिका एकलव्य मॉडल डे बॉर्डिंग स्कूल किल्ला, उदयपुर, गोमती त्रिपुरा में शिक्षिका हैं।)

लेखकनामा

अनिल यादव

संपर्क : 9452040099

अगर कहानी, उपन्यास, कॉलम, स्क्रिप्ट, विज्ञापन, खबरें लिखना काफी है तो मैं एक लेखक हूं। वैसे ही जैसे राजस्व प्रशासन के आखिरी छोर की कड़ी लेखपाल होता है। वह आदमी की आजीविका और भावनाओं से जुड़ी सबसे जाहिर चीज धरती के टुकड़े की कानूनी स्थिति और लगान का मूल्यांकन करता है। उसकी कलम से लिखी रपट के आधार पर सरकार आपको बताती है कि इस साल धान या गन्ने का रकबा कितना है और अनुमानित उपज देश का पेट भर पाने के लिए काफी होगी या नहीं। लेकिन लेखपाल को कोई प्रेमचंद या गोर्की नहीं कहता। मैं भी लेखक नहीं हूं। अगर होता तो कहानी के उस्ताद ज्ञानरंजन मेरी यात्रा पुस्तक की पीठ पर यह क्यों लिखते कि अनिल भविष्य का लेखक हो सकता है। स्वयं प्रकाश ऐसा क्यों लिखते कि मैने कहानी के आकाश में एक तारे की तरह प्रवेश भर किया है। मेरी दोस्त जर्मनी की यायावर लेखिका इडा हैट्टेमर हिगिन्स यह क्यों लिखती कि मैं लेखक हो सकता हूं लेकिन अपनी प्रतिभा को बरबाद कर रहा हूं। काशीनाथ सिंह को अक्सर ऐसा क्यों लगता कि...ये तो गया काम से।

लिटरेचर में मुझसे दूर तक गए ये लोग सच कहते हैं। मैं लेखक होने के रास्ते में हूं। उस मोड़ पर जहां सारा रोमांस हवा हो जाता है। एक सतत बेचैनी बाकी सब कुछ को झकझोरते हुए मटमैली आंधी की तरह मन के अंतरिक्ष में फैलती जाती है। लिखना आपके जीवन के पुराने ढर्रे और प्रिय चीजों की कुर्बानी मांगने लगता है। दे सकते हो तो दो और अंधेरे में टटोलते, गिरते आगे बढ़ो वरना अपनी डेढ़ किताबों और अपराधबोध के साथ गाल पर उंगली धरे राइटरनुमा पोज देते हुए फोटू खिंचाते रहो। वैसे जियो जैसे कोई प्रेमी बाप के दबाव में दहेज लेकर अनजान सुशील कन्या के साथ जीता है।

लिखना एक रहस्यमय काम है इसलिए उसके बारे में बात करने वाला अक्सर पांच अंधों द्वारा हाथी के वर्णन जैसी मुग्धकारी अबोधता में भटकने लगता है। अगर अपने लेखन पर बोलना हो तो मजा बहुत आता है लेकिन सामने वाले के हाथ कुछ नहीं लगता। ये दुनिया आदमी के भीतर कैसी अनुभूतियों के रूप में दर्ज हुई है, इसे कागज पर उतार पाना ही लिखना है। बाकी सब सलमे सितारेबाजी है। दिक्कत यह है कि जिन्दगी का चलन लेखन के खिलाफ है। बचपन से हमें सचाईयों को भुलाकर खुद को ऐसे व्यक्त करना सिखाया जाता है जो समाज में सर्वाइवल के लिए जरूरी होता है। इस प्रैक्टिस के कारण हम खुद को ऐसे

तहखाने में बंद कर देते हैं जहां से पूरे जीवन के दौरान पश्चाताप, विस्मय और मृत्यु के एकांत में सिर्फ कुछ घंटों के लिए बाहर आ पाते हैं।

कम से कम एक बार मैने इस तहखाने से बाहर आने की गंभीर कोशिश की थी लेकिन किसी और अतल अंधेरी खाई में जा गिरा। 1999 में अंतिम महीनो में मैंने अमर उजाला के मालिक, संपादक अतुल माहेश्वरी को एक अर्जी दी कि मैं लेखक बनने के लिए अनिश्चितकालीन छुट्टी चाहता हूं। वे हंसे, कई लोगों को अप्लीकेशन दिखाकर हंसाया लेकिन मेरी जिद के कारण यह कहते हुए छुट्टी दे दी कि फिर नौकरी की जरूरत हो तो आ जाना। मैने पीएफ का पैसा निकाल कर दिल्ली के दरियागंज के फुटपाथ से दुनिया के उन लेखकों की दो बोरा किताबें खरीदीं जिन्हें किशोरावस्था से पढ़ना चाहता था। अपने दोस्त शाश्वत के पास चंडीगढ़ गया। वह दुनिया में इकलौता आदमी था जो मुझ पर यकीन करता था और मेरे लेखक बनने के प्रोजेक्ट का सच्चे दिल से नेतृत्व करना चाहता था।

शाश्वत ने अपने मकान में मुझे अलग कमरा दिया। मेरे लिए आलमारी, मेज, कुर्सी, कागज, स्याही की स्टाइलिश दवात के अलावा एक ट्रांजिस्टर भी खरीद कर लाया। नौकर को सख़्त निर्देश था कि अगर मैं कुछ लिखता दिखूं तो कमरे में कदम न रखे। उसने वे सारे संभव इंतजाम किए कि मैं हर तरफ से निश्चिंत होकर लिख और पढ़ सकूं। दस बारह दिन मैने कमरा सजाने में लगाए। कुर्सी पर बैठकर, शिवालिक की पहाड़ियां देखते हुए सादे कागजों पर तरह-तरह के हस्ताक्षर और उन्हें घेरे में लिए फूल पत्तियां और चीलगोंजर बनाता रहा। फिर न जाने क्या हुआ कि कुंभकरण की तरह सोने लगा। सोलह-अठारह घंटे लंबी नींद। शाम को थोड़ी देर के लिए उठकर सबसे पास के बार में जाता था और देर रात लौटकर फिर सो जाता था। यह सिलसिला चार महीने चला जिसमें मैने एक पंक्ति भी नहीं लिखी। शाश्वत घबरा गया। डाक्टर को दिखाया गया तो पता चला एक्यूट डिप्रेशन है जिसका नींद से बेहतर और कोई इलाज नहीं है। थोड़ा ठीक हुआ तो खिलौना गाड़ी का चस्का लग गया। कालका से बैठकर शिमला, एक दिन वहां रूक कर वापस कालका। ज्यादातर किताबें मैने उस ट्रेन को घेरे में लिए सुंदर भू-दृश्य में बैठकर पढ़ीं लेकिन कुछ लिख नहीं पाया। मेरे पास लिखने को कुछ था ही नहीं। अगर रहा भी हो तो उसका सोता बंद था।

मेरे मन में एक लंबी अंधेरी सुरंग है जिसकी एक दीवार कल्पना और एक दीवार स्मृति से बनी है। सब कुछ इस सुरंग से दिल की धड़कन की लय पर गुजरता है और दूसरे छोर पर बिल्कुल नए रंग रूप में प्रकट होता है। इसी प्रवाह में से मैं लिखने का एक विषय चुनता हूं। अगर विषय में इतना दम है कि वह मेरी इच्छा शक्ति का स्विच ऑन कर काम पर लगा सके तो लिखा जाता है वरना वापस उसी सुरंग में समा जाता है। जब अलहदीपने के कारण अच्छे विषय का दम घुटने लगता है तो वह फंतासी की लंबी रील में बदलकर सोने नहीं देता। अक्सर एक बिंब आता है कि मैने एक पूरा उपन्यास मन से सरकाकर हाथ की उंगलियों के पोरों पर इकट्ठा कर लिया है। एक योगी की एकाग्रता से खुद को संयोजित कर मैं कंप्यूटर के की-बोर्ड पर

पंखो से फड़फड़ाते हाथ सिर्फ दो बार रखता हूं और सामने स्क्रीन पर अक्षर मधुमक्खियों की तरह उड़ते हैं जो जरा सी देर में किताब में बदल जाते हैं। जिस विषय के साथ ऐसा होता है मैं समझ जाता हूं यह कभी नहीं लिखा जाएगा।

कल्पना के जंगली घोड़े मेरे भीतर सदा से हिनहिनाते थे और उनकी जैविक उपस्थिति मैं महसूस करता था। बाहरी दुनिया में उनकी दौड़ विचित्र ढंग से शुरू हुई थी। मेरे नाना के घर के पिछवाड़े के सीवान का नाम है सोनही जहां एक मिडिल स्कूल है। मैं और मेरा छोटा भाई सुनील हर सुबह उस स्कूल के फील्ड में यूं ही टहलते हुए वहां पड़े सारे कागज बटोर कर एक कुंएं की जगत पर इकट्ठा करते थे। ये कापियों पर कवर के रूप में चढ़ाए गए अखबारों और पत्रिकाओं के पन्ने होते थे जिन्हें हम बड़े मनोयोग से घर से मां द्वारा बुलाए जाने तक पढ़ते और चकित होते थे। किसी चिंदी से मिली एक जानकारी हमारी जिज्ञासा को उकसा देती थी लेकिन आगे पढ़ने को और कुछ नहीं होता था लिहाजा उसे कल्पना से जोड़ कर पूरा करने के अलावा और कोई रास्ता नहीं था। उन कागज के टुकड़ों के आधार पर सारी दुनिया के बारे में हम लोगों ने ऐसी-ऐसी कहानियां बना रखी थीं कि अगर उनसे संबंधित लोग सुन पाते तो गश खा जाते। उदाहरण के लिए कोलम्बस बहुत लंबा था और समुद्र में जब जहाज तेजी से चलने लगता था तो डर कर बस-बस चिल्लाने लगता था। रद्दी कागजों का ढेर हमारा ब्रह्मांड था जिसमें हम कल्पना के घोड़ों पर सवार होकर मनमौजी राजकुमारों की तरह भटकते थे। अब भी बरसात में सड़ते कागज की महक मुझे अपने साथ उड़ाकर सोनही के मिडिल स्कूल में छोड़ आती है। इससे भी बहुत पहले से घर में रखे बक्सों की चीजें चोरी से देखना और उनके आधार पर उन्हें बरतने वाले लोगों की जिन्दगियों का अनुमान लगाना मेरा प्रिय काम हुआ करता था।

बहरहाल अभी तो मैं सिर्फ यह चाहता हूं कि मुझे युवा लेखक न कहा जाए। लेखक का उम्र से कोई रिश्ता नहीं होता और मैं तो लेखक ही नहीं हूं। अधिक से अधिक मुझे स्मृति और कल्पना की सुरंग के मुहाने पर रंगीन मछलियां पकड़ने की घात में बैठा आदमी कहा जा सकता है। दूसरे मैं चाहता हूं कि मेरे परिचय में कहीं यात्रा वृत्तांत "वह भी कोई देस है महराज" का जिक्र न किया जाए। हद से ज्यादा प्रशंसा मुझे उदास कर देती है। नार्थ ईस्ट की यात्रा को लिखने की मुझमें इच्छा शक्ति ही नहीं थी इसीलिए दस साल लगे लेकिन यह किताब अब मेरे पीछे भूत की तरह लगी हुई है। बहुत हो गया, मैं चाहता हूं यह किताब जल्दी से मेरे डेड पास्ट का हिस्सा बन जाए और मैं उससे उबर कर कुछ नया करने की सोच सकूं। माफ कीजिएगा जब अभी लेखक ही नहीं हूं तो कैसा लेखकनामा।

(**परिचय :** अनिल यादव पेशे से पत्रकार एवं स्वतंत्र लेखक हैं। अपनी घुमक्कड़ प्रवृत्ति एवं लेखन से हिंदी पाठकों के बीच अनिल यादव की विशिष्ट पहचान है।)

अरुणाचल की हिंदी

हरीश कुमार शर्मा
संपर्क - 9436053279

राजभाषा की दृष्टि से 'ग' क्षेत्र में परिगणित किए जाने वाले समस्त हिंदीतर-भाषी राज्यों में अरुणाचल प्रदेश वह राज्य है, जहां हिंदी सर्वाधिक बेहतर स्थिति में है। समस्त हिंदीतर-भाषी राज्यों में यह ऐसा अकेला राज्य है जिसने हिंदी को पूरे अपनेपन के साथ स्वीकार किया है। शताधिक जनभाषाओं वाले इस राज्य में हिंदी आज मात्र संपर्क-भाषा की ही भूमिका में ही नहीं है, अपितु शिक्षा, शोध एवं लेखन की ओर भी मजबूत कदम उठा रही है। प्रदेश के प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में यहां तक कि सुदूरस्थ अंचलों तक में ऐसे लोग अवश्य मिल जाएंगे, जो बाहरी व्यक्ति से हिंदी में संवाद कर लेंगे। पर हां, यह अलग बात है कि उस हिंदी का अंदाज अलग होगा- विशेष तौर पर पुराने लोगों का। नई पीढ़ी का, और वह भी यदि कोई पढ़ा-लिखा व्यक्ति होगा तो उसके साथ यह समस्या भी नहीं होगी। वह जमाना पीछे छूटा जबकि यहां के लोग स्वयं ही अपनी हिंदी पर हँसते थे। इस संबंध में एक किस्सा यहां बड़ा प्रचलित है। यहां के एक अधिकारी किसी समारोह में सम्मिलित होने के लिए किसी हिंदी-भाषी राज्य में गए। वहां अपनी बारी आने पर उन्होंने पूरे मन से हिंदी में अपना भाषण दिया। जब वापस आकर बैठे तो बगल वाले सज्जन ने बधाई और अचरज मिश्रित भाव से कहा कि 'अरे! आपकी भाषा तो हमारी भाषा से बहुत मिलती है!'

आज अरुणाचल में बहुत से पढ़े-लिखे लोग जब हिंदी बोलते हैं तो वह इतनी परिष्कृत होती है कि सिर्फ़ बोलने के आधार पर उनमें और हिंदी भाषी व्यक्ति में अंतर करना मुश्किल हो जाए। तथापि यहां जनसामान्य की हिंदी का अपना एक अलग अंदाज है; जिसके कारण आप उसे बंबइया हिंदी, मद्रासी हिंदी, कलकतिया हिंदी आदि की तरह अरुणाचली हिंदी कह सकते हैं। यह अंदाज यहां की खूबसूरती है, भारत के वैविध्यपरक स्वरूप की खूबसूरती है और हिंदी भाषा की क्षमताओं एवं विशिष्टताओं की खूबसूरती है। हिंदी में यह बहुत जबरदस्त गुण है कि आप उसमें कितने ही शब्द अन्य भाषाओं के डाल दीजिए, उसके व्याकरण में कितनी ही छूट ले लीजिए, कितनी ही गलतियां कर लीजिए; फिर भी वह हिंदी रह सकती है। और, हिंदी रह ही नहीं सकती है, एक दूसरे की बात को समझ-समझा भी सकती है। भाषा का सबसे बड़ा काम एक की बात को दूसरे तक पहुंचाना होता है और जहां वह यह कर पाने में कामयाब है, वहीं वह स्वयं भी कामयाब है। अरुणाचली हिंदी की भी यह बड़ी विशेषता है। उसका स्वरूप चाहे जैसा भी हो, पर वह यहां विभिन्न भाषा-भाषियों में भावों, विचारों के आदान-प्रदान में अपनी सफल भूमिका निभा रही है।

कोई भी भाषा जब विस्तार लेगी तो उसका स्वरूप भी विस्तृत और बहुआयामी होगा। अरुणाचली हिंदी, हिंदी की इस बहुआयामिता का विस्तार है। लेकिन, इसका मतलब यह नहीं है कि जो जैसा है उसे वैसा ही रहने देना चाहिए और उसमें सुधार के कोई प्रयत्न ही नहीं होने चाहिए। जब कोई भाषा मानक भाषा से बहुत दूर चली जाती है तब एक नई भाषा ही जन्म ले लेती है। संस्कृत से उद्भूत भारत की अनेक भाषाओं के साथ ऐसा ही हुआ है, पर अरुणाचल के लोग इस ओर एकदम सजग हैं। सजग ही नहीं, अपनी हिंदी में उत्तरोत्तर सुधार के लिए सचेष्ट भी हैं। हम लोग यहां विश्वविद्यालय में हैं- सर्वाधिक पढ़े लिखे लोगों के बीच। जिनसे हमारा सतत संबंध रहता है, उनमें अधिकांश हिंदी से जुड़े विद्यार्थी, शोधार्थी, अध्यापक हैं। इसलिए यहां बोली जाने वाली हिंदी से हम अरुणाचली हिंदी का बहुत अनुमान नहीं लगा सकते, तथापि यहां के बहुत अच्छी हिंदी बोलने वाले लोग भी प्रायः बातचीत में कहते हैं कि 'हमारी हिंदी तो ऐसी ही है' या 'क्या करेगा सर, हम लोग का हिंदी तो ऐसा ही है!' यह कहते-कहते भी कि 'हमारी हिंदी अच्छी नहीं है' या 'हमें अच्छी हिंदी नहीं आती'- बोलने वाला हिंदी में बहुत अच्छा भाषण दे जाता है। यह अपने में और भी अधिक सुधार की ललक का ही नतीजा है। जरूरत अपने भीतर इस तरह की हीन भावना लाने की नहीं, उन कारणों को समझने की है- जिनको दूर करने से भाषा में और भी पारंगत हुआ जा सकता है। तो आइए यहां की हिंदी के स्वरूप पर दृष्टिपात करते हुए उस पर थोड़ी चर्चा करें। लेकिन उससे पहले एक महिला वक्ता के व्याख्यान का एक अंश नमूने के तौर पर देखें और ध्यान रखें कि यह एक पढ़े-लिखे (हिंदी नहीं) सामान्य जन की भाषा है।

''...इसलिए हम लोग आप लोगों से बहुत एक्सपेक्ट है। वेल एजूकेटेड आदमी होता है उसका नंबर एक तो डिसीप्लिन होगा। आशा करता है आप लोग हमारा आशा को पूरा-का-पूरा करने का कोशिश करेगा। मैंने सोशल सर्विस पर ज्यादा जोर देता था। सोशल सर्विस करके मुझे खुश थे। स्टेट गवरमेंट से बिल्कुल भी फंड के ऊपर डिपेंड नहीं करता है। नियम-नीति प्रोसीजर को करने को थोड़ा समय लग रहा है। हमें आगे बढ़ने नहीं मिल रहा है। यह का वजह से (आप सभी का आशीर्वाद से, अच्छा सोच से) हम लोग जरूर आगे बढ़ने को जारी है और हमको लगता है आगे बढ़ पाऊंगी। आप लोगों के प्लेटफार्म को मैं एडवांटेज उठाने अपना बात को रख रहा है।...''

किसी भी भाषा के तीन महत्त्वपूर्ण पक्ष होते हैं- वर्ण, शब्द और वाक्य। वर्णों का सही ज्ञान न होने पर तथा उचित प्रयोग न कर पाने से शब्द-निर्माण में गलती होती है। उचित शब्दों के उचित स्थान पर प्रयोग न हो पाने से वाक्य ठीक से नहीं बन पाते और वाक्य ठीक से न बन पाने से अर्थ पूर्णतः नहीं खुल पाता। अर्थात्, अर्थबोध में बाधा आती है। शब्द के सही प्रयोग न होने से अनेक त्रुटियां भाषा में होती हैं। वाक्यों का पूरा दारोमदार ही शब्दों और उनके यथास्थान सटीक प्रयोग पर निर्भर होता है। शब्दों के गलत प्रयोग से वाक्य का अभिप्राय भी गलत समझ लिए जाने का ख़तरा पैदा होता है।

जहां तक वर्णों की बात है तो वर्णों के उचित संयोजन से शब्द-निर्माण होता है। सर्वविदित है कि हिंदी देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। इसकी वर्णमाला में वर्णों की संख्या अधिक होने से एक सामान्य व्यक्ति को, विशेषकर हिंदीतर क्षेत्र के व्यक्ति को इसे सीखने और ठीक-ठीक प्रयोग करने में कठिनाई होती है। हिंदी जितनी बोलने-समझने में सुगम-सरल है, लिखने में उतनी ही कुछ लोगों के लिए कठिन लगती है। यही कारण है कि अरुणाचल में बोलचाल के स्तर पर तो हिंदी खूब प्रचलित है, पर लिखा-पढ़ी के स्तर पर वह बहुत ही कम प्रचलन में है। कक्षा 10 तक हिंदी अध्ययन की अनिवार्य व्यवस्था होने से हिंदी पढ़ना-लिखना तो प्रायः सभी पढ़े-लिखे लोग जानते हैं, फिर भी बाद में उसमें कुछ लिखने-पढ़ने में, विशेषकर लिखने में संकोच करते हैं। अभी नई पीढ़ी में हिंदी में उच्च शिक्षित लोगों की बहुत अच्छी संख्या यहां हो गई है और यह नित्य-निरंतर बढ़ रही है। तथापि जो शिक्षार्थी-विद्यार्थी हिंदी में उच्च शिक्षित हैं और अध्ययन तथा शोध तक से जुड़े हैं, उनसे भी छोटी-मोटी गलतियां हो जाती हैं। इस गलती के पीछे का कारण देवनागरी लिपि नहीं, उसमें लिखने-पढ़ने वालों की लापरवाही नहीं; अपितु प्रारंभिक स्तर की शिक्षा में अध्यापकों द्वारा विद्यार्थियों को ठीक से नहीं समझा पाना है। देवनागरी वैज्ञानिक और सुव्यवस्थित इसीलिए कही जाती है कि उसे एक बार ठीक से जान-समझ लिया जाए तो फिर गलती की संभावना बहुत कम रह जाती है। यदि वर्णमाला ठीक से याद हो, उसको लिखने का सही ढंग पता हो तथा उच्चारण शुद्ध हो तो लिखने में अशुद्धि की बहुत कम संभावना रह जाती है। पर यह काम होता है विद्यालय स्तर पर। खेदजनक है कि अरुणाचल में स्कूली स्तर पर ही विद्यार्थियों में यह भारी कमी रह जाती है, जो बहुत आगे जाने पर भी उनका पीछा नहीं छोड़ती। आखिर यह मूल की भूल का सवाल है। यहां हिंदी लिखने-पढ़ने में होने वाली गलतियों के दो प्रमुख कारण हैं- एक तो मात्राओं के सही प्रयोग का ज्ञान न होना और दूसरा उच्चारण-संबंधी अंतर।

अरुणाचली हिंदी की खूबसूरती इस बात में है कि यहां 'ङ' जैसे वर्ण का बहुत सुंदर इस्तेमाल किया गया है। 'क' वर्ग के इस अनुस्वार को हिंदी ने लगभग विस्मृत सा ही कर दिया था, अरुणाचल ने इसे विशिष्ट महत्त्व प्रदान कर एक तरह से पुनरुज्जीवित कर दिया। प्राथमिक कक्षाओं में जब हम लोग अंत्याक्षरी खेलते थे और अंत में यदि 'ड़' आ जाता था तो कहते थे 'ड़ से नहीं बनी चौपाई, देखो तुलसी की चतुराई।' मतलब 'ड़' से कोई शब्द या पद शुरू नहीं होता। 'ङ' की भी लगभग ऐसी ही स्थिति है। वह भी इसी तरह का वर्ण है। पर अरुणाचली हिंदी की यह विशेषता है कि यहां 'ङ' का शब्द के अंत में भी प्रयोग हो सकता है, मध्य में भी और आरंभ में भी। अंग्रेजी में इस उच्चारण को ng मिलाकर लिखा जाता है। सियाङ, ताङसा, ङमदिर आदि ऐसे ही शब्द हैं।

शब्दों की दृष्टि से देखें तो यहां की हिंदी में अंग्रेजी शब्दों का काफी चलन है। हिंदी-उर्दू के बहुत से शब्द यहां बहुप्रयुक्त होते हैं, यथा- उपाय, समय, अनुरोध, दुख, योजना, तकलीफ़, दिल, माथा आदि। अच्छा होता कि अंग्रेजी के बजाय स्थानीय शब्दों की बहुलता यहां की हिंदी में होती तो उसकी शब्द-संपदा

और भी समृद्ध हो पाती तथा स्थानीय भाषाओं से और भी निकटता स्थापित हो पाती। इस तरह दोनों भाषाओं का भला हो पाता। यद्यपि यहां की हिंदी में प्रचलित कुछ स्थानीय शब्दों का अन्दाज द्रष्टव्य है, जैसे- गिरना, बुकना, टानना, नमना, फुर्ती करना, गेजू, आस्ते, घुराना आदि-आदि।

वर्ण शब्द के लिए महत्त्वपूर्ण है, शब्द वाक्य के लिए महत्त्वपूर्ण है और वाक्य विचार के लिए। विचार को यथानुरूप पहुंचाने के लिए यथाशक्य वाक्य होना बहुत आवश्यक होता है। अशुद्ध वाक्य खटकता है और विचार-प्रवाह में तो बाधा पहुंचाता ही है, अर्थबोध में भी अड़ंगा लगाता है। वाक्य में अशुद्धियां होने के अनेक कारण हैं, पर हम अरुणाचली हिंदी के विशेष संदर्भ में जिक्र करें तो कई चीजें सामने आती हैं। लिंग, वचन, काल, क्रिया, सहायक क्रिया, कारक चिह्न आदि की सही समझ न होने के कारण इस तरह की गलतियां होती हैं।

कर्ता, कर्म और क्रिया- यह तीन वाक्य के सर्वप्रमुख अवयव हैं। कर्ता में संज्ञा और सर्वनाम दोनों समाहित होते हैं। संज्ञा में तो खैर क्या ही गलती की जा सकती है, सिवाय इसके कि उसकी वर्तनी अशुद्ध हो और उसके अनुरूप वाक्य-संरचना (लिंग, वचन आदि के गलत प्रयोग के कारण) न हो। संज्ञा के स्थानापन्न सर्वनाम हैं। संज्ञा का काम कई बार सर्वनामों से लिया ही जाता है। अरुणाचली हिंदी में अक्सर इस तरह की गलतियां होती हैं। यहां या तो सर्वनाम का गलत प्रयोग होता है या फिर सर्वनाम के अनुरूप क्रिया या सहायक क्रिया का प्रयोग नहीं होता। यहां स्ववाचक सर्वनाम 'मैं' के स्थान पर 'हम' का प्रचलन अधिक है। 'हम' सामूहिकता का बोधक सर्वनाम है और 'मैं' वैयक्तिकता का बोधक है। भाषा पर सोच और संस्कार का भी बड़ा असर पड़ता है। जनजातीय समाजों की जीवन-शैली में ऐकान्तिकता के बजाय सामूहिकता का महत्त्व अधिक रहता है। यह भी यहां 'हम' के अधिक प्रयोग का कारण हो सकता है। यहां की हिंदी में विशेष बात यह है कि सर्वनाम बहुवचनी होने के बाद भी क्रियापद एकवचन का ही उसके साथ लगाया जाता है, जैसे- 'हम जाएगा', 'हम करने नहीं सकेगा'। इसी तरह परवाचक सर्वनाम के साथ होता है। सम्मानसूचक सर्वनाम 'आप' का प्रयोग अपने से बड़ों के लिए होता तो है, पर क्रियापद इस तरह का प्रयुक्त नहीं होता, जैसे- 'आप जाएगा कि नहीं', 'हम भी क्या करेगा और आप भी क्या करेगा', 'आप आ गया'। जहां एकवचनी सर्वनाम का प्रयोग होता है वहां बहुवाची क्रियापद का प्रयोग होता है, जैसे 'मैं करते थे' या 'मैं पढ़ते थे'। इसी तरह सर्वनाम के गलत प्रयोग के दो उदाहरण विद्यार्थियों की भाषा से देखें- 'उन्होंने (कबीर) मूर्ति-पूजा, तीर्थयात्रा, जाति-पांति के भेदभाव के सख़्त खिलाफ़ थे।' या 'जाति-पांति की तत्कालीन वज्र अर्गलाओं के बीच रहते हुए भी वे वर्णाश्रम व्यवस्था का खुलकर विरोध किया है।' इन दोनों वाक्यों में से पहले वाक्य में जहां 'वे' का प्रयोग होना चाहिए था वहां 'उन्होंने' तथा दूसरे वाक्य में जहां 'उन्होंने' का प्रयोग होना चाहिए था, वहां 'वे' का प्रयोग किया गया है।

क्रियापदों ही नहीं, सहायक क्रिया के प्रयोग में अधिकतर गलती होती है और इसका प्रमुख कारण लिंग, वचन ही नहीं, काल के भी भेद का अन्तर न कर पाना है। इसीलिए विद्यार्थी अक्सर समसामयिक कवियों के साथ भूतकालिक तथा कबीर आदि पुराने कवियों के साथ वर्तमानकालिक क्रिया या सहायक क्रिया का प्रयोग कर बैठते हैं। इसी तरह से पुल्लिंग के साथ स्त्रीलिंग तथा स्त्रीलिंग के साथ पुल्लिंग क्रिया जोड़ देने से कभी-कभी 'कबीर कहती है' हो जाता है और 'मीराबाई कहता है' लिख दिया जाता है।

दूसरी बड़ी बात है, कारक चिन्हों के सही-गलत प्रयोग की। अरुणाचली हिंदी में या तो कारक चिन्हों का प्रयोग होता ही नहीं है या फिर गलत होता है। कारक चिन्हों के बिना प्रयुक्त कुछ वाक्यों के नमूने देखें- 'खाने दिल नहीं है', 'जाने दिल नहीं है', 'हम बहुत दुख हो गया सर', 'हम बहुत दुख लग गया', 'आप लोग क्यों तकलीफ़ होना है, हम लोग क्यों तकलीफ़ पाना है', 'हम गलती टाइप कर दिया है', 'आप हमसे ऐसे क्यों बोला है', 'जिन लोग अकाउंट खुलना था उन लोग अकाउंट नहीं खुला है'... वगैरह-वगैरह। कारक चिन्हों का जहां प्रयोग होता भी है तो बहुधा वह गलत होता है, जैसे- 'करने नहीं सकता है' या 'करने नहीं सकेगा'। इस तरह का एक उदाहरण देखें- 'हम तो सर आगे पढ़ने नहीं सकेगा, पिताजी को बीमार हुआ है'। कहीं-कहीं अनावश्यक परसर्गों का भी प्रयोग होता है अर्थात् कारक चिह्नों का अपव्यय होता है, जैसे- 'तुम अन्दर में क्या बैठा है, बाहर में आओ न!' या 'आपका बाइक को खराब हुआ है सर' तो कहीं दोहरे परसर्गों का प्रचलन यहां देखने को मिलता है, जैसे- 'कबीर ने स्वयं को भक्त कहते थे'। कुल मिलाकर कहें तो यहां की हिंदी में कारक चिह्नों का अभाव एवं अपव्यय दोनों से सम्बन्धित समस्याएं देखने को मिलती हैं।

यहां की हिंदी में 'में' परसर्ग के अधिक प्रयोग को देखते हुए कह सकते हैं कि अरुणाचली हिंदी 'में' मयी है। अंदर में, बाहर में, यहां में, वहां में, घर में, बाहर में, नदी में, पहाड़ में, धरती में, आकाश में- सभी जगह यहां 'में' का ही साम्राज्य है। 'पर' बेचारा यहां के लिए पराया है। यदि कहीं है भी तो ऐसी जगह कि जहां उसकी जगह ही नहीं है, जैसे- 'कबीर ने मनुष्यता पर महत्त्व दिया है' या 'कबीर हिन्दू और मुसलमान दोनों पर कभी भेदभाव नहीं किया।'

यहां 'ना' की ताकत बहुत बड़ी है। यह असमिया प्रभाव है। इसके बिना कुछ लोगों के वाक्य की गाड़ी आगे नहीं बढ़ती। 'हम ना सर आलो चला गया था', 'हम ना ऐसे हो गया सर', 'आज धूप देगा ना कि सर', 'बड़ा मजा है ना', 'वह गाना बहुत मजा था ना' इत्यादि। यहां मजा शब्द सचमुच बड़े मजे में है। उसका भाषा में धड़ल्ले से प्रयोग होता है। 'यह' शब्द भी यहां की भाषा का बड़ा संबल है। 'यह हो गया सर। यह का वजह से ऐसा हो गया।' बिहार में प्रयुक्त होने वाले 'अथि' की तरह कभी-कभी तो 'यह' का बड़ा रोचक प्रयोग देखने को मिल जाता है, जैसे- 'यह की वजह से यह हो गया, इसलिये यह करना पड़ा है।' इसी तरह से 'ऐसे' का भी यहां की भाषा में खूब सहारा लिया जाता है- 'हम नाऽ ऐसे हो गया सर, हम कल

पासीघाट चला गया है।' अथवा 'ऐसे हो गया.. हम उस आदमी को बोला है, पर वो हमारा बात को नहीं माना है। फिर आलो जाके लौट के आया है।'

क्रियापदों में 'सकना' क्रिया यहां बहुत सामर्थ्यवान है। 'सकेगा?', 'सकेगा कि नहीं?', 'हम नहीं सकेगा।' 'हम तो करने नहीं सकता है!', 'यह आदमी लेकिन सकता है!' इत्यादि 'सकना' के ऐसे प्रयोग हैं कि उनके आगे कर्ता, क्रिया, कर्म सभी मौन रह जाते हैं और रोचक यह, कि मौन रहते हुए भी वांछित अर्थ की प्रतीति करा देते हैं। पासीघाट महाविद्यालय में रहते समय एक बार बाज़ार से पचास किलो का सीमेंट का बोरा मोटर साइकिल पर ही लादकर ला रहा था। पहाड़ी चढ़ाई का रास्ता, पेट्रोल की टंकी से लेकर सीट तक बोरे का ऐसा विस्तार कि ब्रेक तक पैर पहुंचने भी मुश्किल! फिर भी किसी तरह ला ही रहा था। एक राहगीर को बड़ा विस्मय हुआ और उसके मुंह से बेसाख़्ता निकल पड़ा- 'ओऽ सकेगा क्या!'

शब्दों की दृष्टि से देखें तो शब्द-मितव्ययिता तथा शब्दापव्यय के साथ सटीक शब्द के प्रयोग का अभाव भी यहां की हिंदी की विशेषताएं हैं। उदाहरण के लिए 'आप बहुत खतरा आदमी है' या 'वह बहुत खतरा है'। जाहिर है यहां वक्ता का अभिप्राय खतरा से नहीं, खतरनाक से है। इसी तरह से क्रियापदों का अपने तरीके से प्रयोग होता है- 'सिस्टम को हम ऐसे पसंद नहीं होता है'। 'आदमी लोग ऐसे ही बोलता रहता है।'

अरुणाचली बोलियों में लिंग-भेद नहीं है। इसीलिये हिंदी में भी प्रायः इस तरह का ध्यान नहीं रह पाता। यही कारण है कि यहां लड़का भी जाता है और लड़की भी जाता है। ट्रक भी आता है और बस भी आता है। जायेगा सर, पढ़ेगा सर, खायेगा सर जैसे कथनों का प्रयोग लड़का भी करता है और लड़की भी करती है। 'कुक्कुर साला! देगा हम तुमको एक!' यह मत समझिए कि यह वाक्य किसी लड़के का ही होगा, लड़की का भी हो सकता है। वचन की दृष्टि से देखें तो यहां एकवचन-बहुवचन का ध्यान नहीं रखा जाता; इसीलिये यहां सब बोलता ही है, बोलते या बोलती कोई नहीं हैं। 'हम बोला है', 'आप बोला है', 'प्रिंसिपल सर बोला है' आदि कुछ इसी तरह के वाक्यों के नमूने हैं।

'होगा' की चर्चा के बिना अरुणाचली हिंदी की बात अधूरी है। 'होगा' यहां कुछ अति प्रचलित शब्दों में से एक है। इसका प्रयोग मात्र स्थानीय लोग ही नहीं करते, बाहर के लोग, यहां तक कि हिंदीभाषी भी इससे समरस हो गये हैं। लोग मानते हैं कि यह असमिया शब्द 'होबो' का हिंदी रूपान्तरण है। यह नकारात्मक एवं सकारात्मक दोनों प्रकार के अर्थ-गुणों से सम्पन्न है। यानी 'होगा' का अर्थ स्वीकार भी हो सकता है तथा नकार भी। इसका पता भंगिमा से लगता है। पर, यदि सामने वाला अनाड़ी हुआ तो यह अंदाजा लगाना मुश्किल हो जाता है कि जबाब 'हां' में आया कि 'न' में। पासीघाट प्रवास काल में एक मैडम ने एक बार एक किस्सा सुनाया था कि एक बार किसी के यहां कुछ परिचित जन आये। उनको कहीं

जाना था, किसी से मिलने। जब वे जाने लगे तो उन्होंने कहा कि खाना बना रहे हैं, लौटकर खाते हुए जाना। 'होगा मैडम' उन्होंने कहा, और फिर तो वे मैडम 'होगा' का अर्थ 'हां' समझ, खाना बनाकर इंतजार ही करती रह गयीं। मेहमान लौटकर आये ही नहीं, उधर से ही चले गये, जैसा कि वे अपने 'होगा' से संकेत कर गये थे। कभी-कभी लोग 'होगा' के स्थान पर 'हो जायेगा' का भी प्रयोग करते हैं।

(**परिचय :** लेखक राजीव गांधी विश्वविद्यालय, ईटानगर, अरुणाचल प्रदेश के हिंदी विभाग में प्रोफ़ेसर पद पर कार्यरत हैं। ई-मेल: hksgpn@gmail.com)

भारतीय नेपाली कथा-साहित्य में कोलकाता महानगर का प्रतिनिधित्व

डॉ. कविता लामा
संपर्क : 9832066182

कोलकाता पश्चिम बंगाल की राजधानी है। इसे भारत के वृहत महानगरों की बौद्धिक एवं सांस्कृतिक राजधानी के रूप में भी जाना जाता है। हुगली नदी के पूर्वी किनारे पर स्थित कलकत्ता को जनवरी, 2001 से कोलकाता नाम से जाना जाता है। पश्चिम बंगाल के रेनेसा के उद्गम स्थल के रूप में भी कोलकाता की विशिष्ट पहचान है। सन् 1947 में भारत की स्वाधीनता के पश्चात् कोलकाता को भारतीय आधुनिक शिक्षा, विज्ञान, संस्कृति, साहित्य, कला और राष्ट्रीय विचारधारा का केंद्र माना जाता है। पूर्वी और पश्चिमी संस्कृति से प्रभावित होने के साथ-साथ कोलकाता सांस्कृतिक विविधता का मूल स्त्रोत है। विशिष्ट नाट्य परंपरा, कला, फिल्म, थियेटर और साहित्य के विकास में भी कोलकाता की अपनी समृद्ध परंपरा है। इस महानगर ने भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता को जीवंत रूप में संरक्षित करने का कार्य किया है। विश्व प्रसिद्ध दार्शनिक, कवि, लेखक, कलाकार, संगीतकार एवं फिल्म निर्देशकों के जन्म स्थल के रूप में भी कोलकाता की विशिष्ट ख्याति है। 19वीं और 20वीं शताब्दी में भारत के महान नायक राजाराम मोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, सन् 1913 में एशिया के साहित्य में पहले नोबेल पुरस्कार विजेता प्राप्त कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर, वैज्ञानिक जगदीश चंद्र बोस, विश्व प्रसिद्ध फिल्म निर्माता तथा निर्देशक सत्यजीत रे, शांति नोबेल पुरस्कार से सम्मानित मदर टेरेसा, अर्थशास्त्र में नोबेल पुरस्कार प्राप्त अमर्त्य सेन आदि सभी विद्वानों को कोलकाता जैसे महानगर ने जन्म दिया है। सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक क्षेत्र में विशेष योगदान देकर इन विद्वानों ने भारत में कोलकाता को विश्व पटल पर विशिष्ट पहचान दिलाई है।

कोलकाता एक महानगर की परिधि तक सीमित न होकर पूर्वी भारत की सांस्कृतिक विरासत एवं शिक्षा का केंद्र है। 'सिटी ऑफ जोय' के नाम से पहचाना जाने वाला कोलकाता भारत का सांस्कृतिक केंद्र भी माना जाता है। बहुभाषिक, बहुसांस्कृतिक एवं बहुधार्मिकता से संपृक्त कोलकाता आज भारत के साथ-साथ विश्व में साहित्य, संगीत और संस्कृति के ज्ञानार्जन के लिए एक विस्तृत जगह उपलब्ध कराता है। यह महानगर समाज, साहित्य एवं संस्कृति के गहन अध्ययन एवं ज्ञान के क्षितिज के विस्तार के लिए भी सुप्रसिद्ध है। कोलकाता को साहित्य में रेखांकित करने अथवा साहित्य-लेखन से पूर्व यहाँ के जन-जीवन एवं शैली को समग्रता में समझना अत्यंत आवश्यक है। स्पष्ट है कि पुस्तकालय में उपलब्ध दो-चार पुस्तकों के अध्ययन मात्र से किसी भी समुदाय या वर्ग की जीवन शैली का पता नहीं चल सकता है। एक प्रकार से देखें

तो कोलकाता की विकसित एवं समृद्ध परंपरा से न सिर्फ भारतीय साहित्य अपितु नेपाली साहित्य भी काफी प्रभावित एवं प्रेरित है।

भारतीय नेपाली भाषा साहित्य और कोलकाता का संबंध

'भारतीय नेपाली साहित्य' का आशय उस साहित्य से है जो भारतीय नेपाली नागरिकों द्वारा बोली जाने वाली एवं भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची में अंतर्निहित भाषा है। पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग और कलिङ्पोंग जिले, तराई-डुवर्स और उत्तर पूर्वी आठ राज्यों में से त्रिपुरा एवं अरुणाचल प्रदेश को छोड़कर सिक्किम, असम, मेघालय, मिजोरम एवं मणिपुर और पूर्वी उत्तर प्रदेश के बनारस और उत्तरांचल के भाग्सू एवं देहरादून में लिखे जाने वाले साहित्य को ही नेपाली साहित्य माना जाता है। उल्लिखित राज्यों में से वर्तमान में दार्जिलिंग, तराई-डुवर्स, सिक्किम, असम और मिजोरम आदि राज्यों में नेपाली साहित्य लेखन और साहित्यिक गतिविधियां सक्रिय रूप में देखने को मिलती हैं। देहरादून और बनारस के लेखकों द्वारा भी नेपाली साहित्य में कुछ काम हो रहा है।

कोलकाता से भारतीय नेपाली भाषा एवं साहित्य का ऐतिहासिक संबंध है। यह संबंध बहुत ही पुराना और नजदीक का है, विशेषकर दार्जिलिंग एवं तराई-डुवर्स से। प्राथमिक पाठशाला में नेपाली भाषा में अध्ययन-अध्यापन हेतु मान्यता सर्वप्रथम कोलकाता द्वारा ही प्रदान की गई, इससे नेपाली समुदाय के शैक्षिक और भाषिक विकास का संबंध है। जैसे- फोर्ट विलियम कॉलेज के फारसी भाषा के प्राध्यापक जे. ए. एटन द्वारा लिखित नेपाली भाषा का पहला व्याकरण A Grammar of Nepali Language का प्रकाशन सन् 1820 में कोलकाता से ही हुआ है। सन् 1916 में दार्जिलिंग के स्कूलों में नेपाली को द्वितीय भाषा के रूप में पढ़ाये जाने की अनुमति मिली। इसके बाद "हरिप्रसाद प्रधान, धरणीधर शर्मा और सूर्यविक्रम ज्ञवाली के लगातार प्रयास के बाद बंगाल सरकार ने 30 जुलाई, 1926 को एक सूचना जारी करके सभी सरकारी विभागों में 'नेपाली पहाडिया वा खस कुरा' के स्थान पर 'नेपाली' शब्द प्रयोग करने का आदेश दिया।" (प्रधान, 2010 दो.: 34) साथ में "सन् 1955 में भारत के नेपाली भाषियों को अपनी भाषा में प्रवेश परीक्षा देने की अनुमति प्रदान की और सन् 1961 में बंगाल सरकार द्वारा नेपाली भाषा को दार्जिलिंग के पर्वतीय अंचल में सरकारी कामकाज की भाषा के रूप में मान्यता प्रदान की गई। इसके अलावा भारत के कुछ विश्वविद्यालयों में भी नेपाली भाषा को मान्यता देने के साथ-साथ नेपाली भाषा एवं साहित्य में 'ऑनर्स' के अध्ययन-अध्यापन का कार्य प्रारम्भ हुआ।" (नेपाली और विष्ट, 2017: 254) स्पष्ट है, प्रशासनिक और प्राज्ञिक दोनों क्षेत्रों में नेपाली भाषा के विकास में कोलकाता की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। बंगाल सरकार के अधीन सन् 1977 में स्थापित उत्तर बंगाल विश्वविद्यालय के नेपाली विभाग में सबसे पहले स्नातकोत्तर और बाद में एम. फिल. एवं पीएच. डी. के अध्ययन-अध्यापन के सुचारु संचालन कार्य को भी भारतीय नेपाली भाषा के विकास में एक और उपलब्धि के रूप में देखा जा सकता है। कोलकाता

दार्जिलिंग और सिक्किम के लोगों के लिए भी उच्च शिक्षा अर्जित करने का केंद्र बना, इस बात से यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि कलकत्ता का नेपाली समाज के साथ संबंध का दायरा सीमित न होकर अत्यंत सुदृढ़ एवं विस्तृत है। स्पष्ट है, जो लोग पढ़ने, काम करने एवं घूमने के मकसद से कोलकाता आए हुए थे, उन्होंने ही कोलकाता को देखकर नेपाली साहित्य लेखन का कार्य किया है। इनकी रचनाशीलता से गुजरते हुए हमें इनकी रचनाओं में उक्त संदर्भों का पुख़्ता प्रमाण मिल जाता है।

भारतीय नेपाली कथा-साहित्य में कोलकाता का चित्रण

भारतीय नेपाली साहित्य में कोलकाता महानगर के प्रसंग के आने का मतलब बंगाल की मिट्टी की गंध, महल से लेकर झुग्गी-झोपड़ी में रह रहे आम आदमी के वास्तविक जीवन, यहाँ के परिवेश में उपस्थित पात्रों के द्वारा हरेक कोने, गली, गाँव और शहर के लोगों के जीवन-दर्शन, मूल्य एवं मान्यता आदि को विस्तृत रूप में समझने से है। दूसरे शब्दों में कहें तो कोलकाता महानगर के आम जन-जीवन से जुड़े गंभीर प्रश्नों तथा उनके जीवन के सर्वांगीण पहलुओं को वृहत्तर फ़लक पर रेखांकित करने से है। भारतीय नेपाली साहित्य में कोलकाता के सही प्रतिनिधित्व होने का अर्थ केवल वाह्य सौंदर्य का वर्णन करना ही महत्त्वपूर्ण नहीं बल्कि इसकी आंतरिक कुरूपता को चिन्हित करना भी है, भारतीय नेपाली साहित्य इस बात का निर्वहन करने में पूर्णतया सफल रहा है। प्रेम-प्रणय का संदर्भ, कारागार का जनजीवन, वैश्यालय में महिलाओं की दयनीय स्थिति, फिल्म इंडस्ट्री में हो रहे स्त्री शोषण, स्त्री जीवन के मनोविज्ञान आदि अनेक संदर्भ भारतीय नेपाली साहित्य में प्रमुखता से उभरकर आए हैं। यहाँ के साहित्य में कोलकाता का यथार्थपरक एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण पूरी जीवंतता के साथ हुआ है। कोलकाता की इसी बाहरी एवं भीतरी कुरूपता, विसंगतिपूर्ण स्थिति एवं कोलकाता में बसे हुए नेपाली जनजीवन का अन्वेषण करते हुए इन दोनों पक्षों को समान रूप से नेपाली कथाकारों ने अपने साहित्य में ईमानदारीपूर्वक दर्ज किया है।

भारतीय नेपाली भाषी समाज के लिए कोलकाता साहित्य एवं संस्कृति का केंद्र रहा है। सन् 1936 में रूपनारायण सिंह द्वारा नेपाली भाषा में लिखित पहला उपन्यास 'भ्रमर' इसका ठोस प्रमाण है। प्रेम प्रणय के प्रसंग पर केंद्रित यह उपन्यास कोलकाता की पृष्ठभूमि पर आधारित है। नेपाली साहित्य में आधुनिक युग की शुरुआत का पहला श्रेय भी इसी उपन्यास को जाता है। इस उपन्यास में कोलकाता के परिवेश का सजीव चित्रण मूल रूप में होने का कारण यह है कि रूपनारायण सिंह की उच्च शिक्षा कोलकाता के ही विभिन्न शैक्षणिक संस्थानों से हुई है। सन् 1926 में स्कटिस चर्च कॉलेज से उन्होंने आई. ए. प्रथम श्रेणी, सन् 1928 में सेंट जेभियर कॉलेज से डिंस्टिंगसन सहित बी. ए. और कलकत्ता विश्वविद्यालय से बी. एल. की डिग्री हासिल की। विद्यार्थी जीवन से ही साहित्यिक रुचि, अङ्ग्रेज़ी एवं बांग्ला भाषा का ज्ञान होने के कारण उन्होंने दोनों भाषाओं की पुस्तकों का गंभीर अध्ययन किया है। बांग्ला साहित्य के बंकिमचंद्र चटर्जी एवं शरतचंद्र के साहित्य से प्रभावित होने के कारण उनके साहित्य में घटनाओं का यथार्थ चित्रण देखने को

मिलता है। रूपनारायण सिंह का मंतव्य है : "कोलकाता विश्वविद्यालय में बी. एल. की पढ़ाई के दौरान ही नेपाली भाषा में एक सामाजिक उपन्यास लिखने की इच्छा हुई।" (सिंह, 1936: 5), 'भ्रमर' उपन्यास को उक्त संदर्भ में जीवंत उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है। किसी भी रचनाकार का अपने देशकाल एवं परिवेश से गहरा जुड़ाव होता है। हम उसे उसके समय एवं समाज से अलग करके पारिभाषित नहीं कर सकते हैं। रूपनारायण सिंह कोलकाता के परिवेश में इतने रच-बस गए हैं कि उनके उपन्यास 'भ्रमर' में यहाँ की संस्कृति एवं समाज का सजीव चित्रण होना, अत्यन्त सहज एवं स्वाभाविक है।

भिन्न-भिन्न खंडों और उपशीर्षकों में विभक्त इस उपन्यास में लेखक द्वारा न सिर्फ कोलकाता बल्कि दार्जिलिंग, बनारस तथा बर्मा के रंगून के परिवेश का भी चित्रण किया गया है। लेकिन इस उपन्यास के पात्र और कथावस्तु कोलकाता के परिवेश में ही परिक्रमा करते हुए दिखाई देते हैं। प्रथम खंड के अध्याय-2 **'मायाको मोहभंग'** की पहली पंक्ति "इन्द्रशेखर कोलकाता में एम. ए. कर रहा है।" उद्धरण से उक्त संदर्भ की पुष्टि हो जाती है। इसी महानगर में अध्ययन के दौरान ही शेखर को माया नाम की एक लड़की से प्रेम हो जाता है लेकिन दोनों का प्रेम सफल नहीं हो पाता और संबंध विच्छेद हो जाता है। यह पूरी घटना कोलकाता महानगर में ही घटित हुई। अध्याय-7 **'शेखर का आँखा उघ्रन्छन्'** शीर्षक के अंतर्गत लेखक ने दिखाया है कि शेखर का दार्जिलिंग में वीणा नाम की दूसरी लड़की से प्रेम हो जाता है। दार्जिलिंग से लौटने के पश्चात् वह कलकत्ता के 87, कॉलेज स्ट्रीट से वीणा के लिए प्रेम पत्र लिखता है। शेखर द्वारा पत्र को पोस्ट किए जाने के समय लेखक ने कलकता का वर्णन इस प्रकार किया है : "साँझ हो गई है। बाहर हरिसन रोड में ट्राम, घोड़ागाड़ी, मोटर और रिक्शे की आवाज से कोलाहल मची हुई है, और फिर आगे कॉलेज स्ट्रीट में भी काफी शोरगुल और बहुत भीड़-भाड़ है। हरिसन रोड और कॉलेज स्ट्रीट के दोनों रास्तों में अनेक स्त्री-पुरुष खड़े दिखाई दे रहे हैं। कोई ट्राम की प्रतीक्षा में है तो कोई टैक्सी वाले को आवाज दे रहा है। कॉलेज के छात्र, अध्यापक, ऑफिस के किरानी, पुलिस, कोर्ट के वकील, बड़े बाजार का व्यापारी, पॉकेटमार, गुंडा, दरबान एवं समाज के प्रत्येक श्रेणी के मनुष्य वहाँ दिख रहे हैं लेकिन सभी अपने-अपने काम में व्यस्त हैं।" (पृ. 40) लेखक ने अपने इस उपन्यास में कलकत्ता के एक व्यस्त जनजीवन का चित्रण किया है। इसी व्यस्तता के बीच एक लड़का खुद को बस से बचाता हुआ सड़क पार करते समय टकराकर घोड़ागाड़ी के नीचे आने से दुर्घटनाग्रस्त हो जाता है। कलकत्ता की गली-गली में दिन प्रतिदिन इस तरह की सामान्य घटनाएँ घटती रहती हैं, इस पर विचार करते हुए कॉलेज स्ट्रीट के हॉस्टल के कमरे के आगे खड़े होकर शेखर इन सभी दृश्यों को देख रहा था।

उपन्यास की प्रमुख नारी पात्र वीणा का पत्र पाने के बाद विचलित होकर शेखर अपने मन को स्थिर करने के लिए कॉलेज स्ट्रीट की तरफ चला गया। तत्कालीन समय का एक और दृश्य इस प्रकार चित्रित है- "अलबर्ट हल के आगे लोगों की भीड़ को देखकर वह भीतर चला गया। स्वामी सदानंद का व्याख्यान

कलकत्ता में हो रहा था। वेदांत के शिक्षा प्रचार के निमित्त स्वामी सदानंद भारत के विभिन्न शहरों में जाकर व्याख्यान करते थे।" (पृ. 43) स्वामी जी का यह व्याख्यान 'प्रेम' पर केंद्रित था। शेखर का मन इस व्याख्यान को सुनकर स्थिर हो गया। कारण यह कि इसके पहले वह प्रेम के सही अर्थ एवं मायने से पूर्णतया अनभिज्ञ था, उसके लिए प्रेम की परिभाषा बिल्कुल अलग थी। स्वामी जी के व्याख्यान से प्रेम के सही अर्थ एवं महत्त्व को समझने के बाद शेखर की सोच एवं उसका जीवन पूरी तरह परिवर्तित हो जाता है। तृतीय खंड-1 'जहाजमा' के अंतर्गत हुगली से रंगून जाने का प्रसंग चित्रित हुआ है। कलकत्ता के सबसे पुराने बन्दरगाह की अपनी विशिष्ट पहचान है। इस बन्दरगाह की गतिविधियों का चित्रण कुछ इस प्रकार है- "अरणकोला जहाज हुगली नदी के 'उटरम' घाट छोड़कर समुद्राभिमुख हुआ। जहाज रंगून जाने वाला है। ऊपर 'डेक' में अनेक प्रकार के यात्री हैं जैसे- व्यापारी, कुली और चीनियाँ आदि। यह सब निम्न श्रेणी के पैसेंजर हैं। इनके बीच की खाली जगह में डेक का तख़्त और खुले आकाश उसकी छत है।" (पृ. 67) हुगली नदी में अवस्थित यह बन्दरगाह कलकत्ता का एक मुख्य आकर्षण है जो 'भ्रमर' उपन्यास के अध्याय-एक में चित्रित है।

कालीघाट का मंदिर धार्मिक और ऐतिहासिक दृष्टि से कलकत्ता का दूसरा महत्त्वपूर्ण स्थल है। कलकत्तावासियों की इस मंदिर के प्रति गहरी आस्था है। *'भ्रमर'* उपन्यास के पात्र शेखर की माँ मैना देवी और प्रेमिका वीणा भी इसी आस्था से इस मंदिर की शरण में आई हैं। चतुर्थ खंड के अध्याय एक 'कालीघाटको मंदिरमा' में एक नेपाली परिवार कलकत्ता के उत्तर प्रांत श्याम बाजार में भाड़े के मकान में रह रहा है। बहुत दिनों से अस्वस्थ मैना देवी काली माँ को भोग देने का वचन दी हुई थी। मंदिर के प्रति मैना देवी की आस्था का वर्णन लेखक ने इस प्रकार किया है: "कालीघाट के मंदिर में देवी की प्रतिमा के आगे मैना देवी बहुत देर तक नतमस्तक रही। दोनों हाथ में लाल रंग का फूल है, आँख से आँसू झलक रहे हैं। मातृ हृदय का करुण क्रंदन देवी माँ के आगे ज्ञापित कर रही है।" (पृ. 100)

दार्जिलिंगवासी नेपालियों के लिए कलकत्ता उस समय से ही शिक्षा का केंद्र रहा है। प्रस्तुत उपन्यास के अधिकांश पात्र इसी उद्देश्य के निमित्त कलकत्ता आए। शेखर और माया के साथ-साथ अन्य पात्र के रूप में वीणा भी शिक्षा अर्जित करने के लिए कलकत्ता आई। शेखर के प्रेम में धोखा खाई हुई माया कलकत्ता छोड़कर बनारस जाने के बाद मेडिकल की पढ़ाई के लिए पुनः कलकत्ता वापस आ गई। शेखर का दोस्त मोहन भी कलकत्ता से विधि की पढ़ाई कर रहा है। गौरतलब है, कलकत्ता में लोगों के रहने का मूल उद्देश्य विधि, मेडिकल, एम. ए आदि की शैक्षणिक डिग्री एवं उपाधि प्राप्त करना ही रहा है। इसके अलावा खिदिरपुर में विजया नाम की लड़की पर गुंडों का आक्रमण होना, शेखर को चोट लगना, अस्पताल पहुँचना जैसी कोलकाता महानगर में घटित तमाम वास्तविक घटनाएँ इस उपन्यास में प्रमुखता के साथ चित्रित हुई हैं।

'भ्रमर' उपन्यास के अतिरिक्त रूपनारायण सिंह का नौवें कथा-संग्रह 'कथा नवरत्न' में दार्जिलिंग के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक जीवन के विभिन्न पक्षों को लेकर कहानियाँ संकलित हैं। इसी संग्रह में संकलित 'धनमती का सिनेमा स्वप्न' एक ऐसी कहानी है जिसमें धनमती दार्जिलिंग नेपाली समाज की एक अशिक्षित एवं आर्थिक रूप से कमजोर परंतु जीवन में बड़ा नाम कमाने और सिनेमा की हीरोइन बनने की महत्त्वाकांक्षा रखती है। यह कहानी धनमती के जीवन के उतार-चढ़ाव को चित्रित करती है। दार्जिलिंग में माँ के साथ एक छोटी सी चाय की दुकान चलाकर अपना जीवन निर्वाह करने वाली धनमती का सपना सिनेमा की हीरोइन बनने का है। दुकान में एक दिन चाय पीने के लिए आए हुए सुंदरलाल से धनमती की मुलाकात हो जाती है। जब उसे यह पता चलता है कि धनमती अपनी सुन्दरता से आत्ममुग्ध होकर रात-दिन हिरोइन बनने का सपना देख रही है तो सुन्दरलाल उसकी अज्ञानता का फायदा उठाकर धनमती को हिरोइन बनने के लिए उकसाता है और धनमती उसकी बातों को सच समझकर मालती देवी बनने का सपना देखने लगती है। एक दिन दार्जिलिंग के किसी होटल में कलकत्ता से आए हुए फिल्म निर्माता सुरेन बाबू से सुंदरलाल ने धनमती की मुलाक़ात कराई। इसके बाद धनमती ने महसूस किया कि उसका सपना हकीकत में बदलने जा रहा है। सुंदरलाल के साथ वह हीरोइन बनने के लिए कलकत्ता जाने को राजी हो जाती है जिस का वर्णन इस प्रकार है: "उल्लू के आवाज देने के कुछ महीने बाद कलकत्ता के सियालदह स्टेशन में बंगाली सुंदरलाल और मालती देवी रेल से उतरते हैं।

सुरेन बाबू की मोटर बाहर खड़ी थी। सुंदरलाल ड्राइवर के साथ आगे बैठ गया, बंगाली और धनमती पीछे बैठ गए। मोटर कलकत्ता के दक्षिणी दिशा की ओर बढ़ गई। मोटर में पीछे बैठे हुए बंगाली ने धनमती के बाएँ कंधे पर हाथ रखते हुए नाटकीय अंदाज में कहा "स्वागतम प्रिय !" कलकत्ता महानगर तुम्हारा स्वागत करता है। अब सरोज फिल्म इंडस्ट्री तुम्हारे जैसे कलाकार को पाकर धन्य हो जाएगा।" (पृ.81)

महिलाओं के प्रति कुदृष्टि रखने वाला सुरेन बाबू के साथ वह कलकत्ता के तीन मंजिले मकान में दो दिन तक रही। मेट्रो सिनेमा बंगालियों का मुख्य थिएटर है। टलीवुड में न्यू थिएटर को देखने के पश्चात् धनमती के मन में यह विश्वास जगने लगा कि उसे थिएटर में ले लिया जाएगा लेकिन कलकत्ता में तीन महीने बीत जाने के बाद अभी तक उसके सपने पूरे होने के कोई आसार नहीं दिख रहे थे। इसके बाद शीला देवी जो पहले से फिल्म उद्योग से जुड़ी हुई सिनेमा की हिरोइन थी, उसने धनमती को समझाते हुए कहा कि उसके जैसी अशिक्षित लड़कियों के लिए कभी भी फिल्म की हीरोइन बनना संभव नहीं है साथ ही उसे अपने घर दार्जिलिङ लौट जाने की भी सलाह दी। सुंदरलाल और सुरेन बाबू उसका केवल शारीरिक शोषण ही कर रहे हैं। शीला द्वारा इस प्रकार की सही जानकारी देने के बाद भी धनमती का दिमाग नहीं खुलता है। परिणामस्वरूप बिना विवाह किए ही वह एक बच्ची की माँ बन जाती है। कलकत्ता की गलियों में तमाम

ठोकर खाने के बावजूद अंत में एक बेटी को कोख में लेकर वह दार्जिलिंग आ जाती है। फिर माँ की उसी चाय की दुकान में काम करते हुए वह अब अपनी बच्ची को सिनेमा की हीरोइन बनाने के सपने बुनने लगती है।

भारतीय नेपाली साहित्य में नाटककार के रूप में ख्याति प्राप्त सिक्किम प्रदेश के ध्रुवकुमार लोहागण का 'रजनीगंधा' अत्यंत चर्चित कथा-संग्रहों में से एक है। इस कहानी की मुख्य पात्र रजनी है। कहानी में अन्य पात्र के रूप में रोशन कलकत्ता के सेंट जेभियर कॉलेज में बी. ए. तृतीय वर्ष का छात्र है। कहानी में लेखक ने कथा का आरंभ एस्प्लानेड रोड की एक शाम के मनमोहक एवं सुंदर दृश्य से किया है, जिसकी सड़कों पर घूमते हुए लोगों को स्वर्ग की अनुभूति होती है, रजनी और रोशन भी इसी रमणीय शाम एवं कलकत्ता की भीड़ का एक अभिन्न हिस्सा हैं। एक दिन शाम के समय वह डलहौजी से पैदल चलते हुए एस्प्लानेड पहुँच जाती है। ग्रैंड होटल के सामने खड़े रोशन की दृष्टि जब रजनी पर पड़ती है तो वह उसके प्रति इतना आकर्षित हो जाता है कि ईडेन गार्डन की दूसरी मुलाक़ात में ही वह रजनी को प्रपोज कर देता है। लेकिन रजनी उसके प्रेम प्रस्ताव को अस्वीकार कर देती है। रजनी का हीरोइन बनने का सपना ही उसे कलकत्ता आने के लिए प्रेरित करता है। हीरोइन बनने का सपना बुन रही रजनी की नज़र एक दिन अखबार के एक विज्ञापन पर पड़ जाती है। पत्रिका में दिए गए विज्ञापन वाले स्क्रीनटेस्ट में रजनी को सफलता मिलती है। कलकत्ता में आउटडोर शूटिंग के लिए आई हुई रजनी के साथ एक बड़ी घटना घटती है। यहाँ उसे कोल्डड्रिंक में कुछ मिलाकर बेहोश कर दिया जाता है। नींद खुलने के बाद उसे यह पता चलता है कि वह कोलकाता के सोनागाछी वैश्यालय में है। रोशन को जब रजनी इस घटना के बारे में बताती है तो वह उसे वहां से निकलने का आग्रह करता है, लेकिन रजनी उसके इस प्रस्ताव को ठुकराते हुए इसी पेशे में से जुड़कर काम करने की बात पर अड़ जाती है। लेखक ने इस कहानी के माध्यम से समाज में रह रहे छद्म चरित्र एवं महिलाओं के साथ हो रहे छल तथा बर्बर प्रसंग को प्रमुखता के साथ उद्घाटित किया है।

शादी के नाम पर झाँसा देकर लड़कियों को बेच देना और उसे देह-व्यापार जैसी वृत्तियों में झोंक देने की घटनाएँ हमारे समाज में आए दिन घटती रहती हैं। वीमेन ट्रैफिकिंग जैसे मुद्दों को लेकर भारतीय नेपाली साहित्य में कई कहानियां लिखी गई हैं। समकालीन कहानीकार प्रकाश हांखिम की कहानी 'आमी तुमाके भालो बासी' इसी पृष्ठभूमि पर केन्द्रित है। इस संग्रह के अंतर्गत संकलित 'सुनपसीना' (2012) कहानी में लेखक ने एक खेती-किसानी कर रहे गरीब घर की लड़की के जीवन एवं उसके संघर्ष को दिखाया है। इस कहानी की मुख्य पात्र सरला है। उसे पढ़ने लिखने में कोई दिलचस्पी नहीं है। उसे अपने सौंदर्य के प्रति घमंड है। मोबाइल मिलने के बाद सोशल मीडिया के माध्यम से विशाल नाम के एक लड़के से उसकी बातचीत शुरू हो जाती है। विशाल सरला से शादी करके उसे कोलकाता के सोनागाछी में ले जाकर बेच देता है। कलकत्ता के सोनागाछी में मनोविनोद नाम के एक लड़के से सरला की मुलाक़ात होती है। सरला के साथ

हुई घटना से दुखी होकर मनोविनोद पुलिस का सहारा लेकर सरला के पिता को वहाँ बुलाकर उसको वहाँ बचा लेता है। सरला मनोविनोद को 'आमी तुमाके भालो बासी' कहते हुए वहाँ से चली जाती है। लेखक ने इस कथा के जरिए वर्तमान परिवेश में महिलाओं के साथ हो रहे अन्याय, छल-छद्म, शादी के नाम पर यौन-शोषण एवं देह व्यापार जैसी निंदनीय घटनाओं को दिखाने का प्रयास किया है।

अच्छा राई 'रसिक' भारतीय नेपाली कथा साहित्य में एक विशिष्ट हस्ताक्षर के रूप में शुमार किए जाते हैं। 'पूर्णिमा की रात' कहानी से साहित्य के क्षेत्र में पदार्पण करने वाले 'रसिक' का निबन्ध विधा में बहुत सार्थक एवं महत्त्वपूर्ण हस्तक्षेप रहा है। रसिक द्वारा सन् 1955 में लिखा गया 'लगन' उपन्यास एक सामाजिक उपन्यास के रूप में चर्चित है। 20 परिच्छेदों में विभाजित इस उपन्यास के 11वें परिच्छेद में कलकत्ता महानगर की सामाजिक पृष्ठभूमि को चित्रित किया गया है। कलकत्ता घूमने और देखने की उत्कट इच्छा से दार्जिलिङ से पहली बार कलकत्ता आए हुए कृष्णचन्द्र ट्राम से उतरते ही चौड़ी सड़कों को देखकर आश्चर्यचकित हो जाता है। मित्र की बहन सुभद्रा से मिलने आए वह रास्ते में कुछ लड़कों को आते देखकर नेपाली में पूछते हैं- "महाशय, यहाँ साइकल दोकान कहाँ छ?" (पृ.106) वास्तव में वह वहाँ एक "गुरुङ साइकल दोकान" को ढूँढ़ रहे थे। नाम से यह स्पष्ट हो जाता है कि दार्जिलिङ के नेपाली समुदाय के लोगों का कलकत्ता में न सिर्फ आना-जाना है बल्कि वह यहाँ छोटे-मोटे व्यवसाय में भी संलग्न हैं। कलकत्ता जैसी भीषण गर्मी में भी उन्हें पारंपरिक वेषभूषा दौरा सुरुवाल पहनकर चलते देख लोग अचंभित हो जाते हैं। दार्जिलिङ से आई हुई सीधी-साधी लड़की सुभद्रा के रूप-रंग एवं हाव-भाव में हुए बड़े परिवर्तन को देखकर कृष्णचन्द्र चौंक गया। सुभद्रा पूरी तरह से कलकत्ता के रंग में रंग गई थी, जो उसे बिल्कुल पसंद नहीं आया। कृष्णचन्द्र के पूछने पर उसे यह पता चला कि कलकत्ता में गठित नेपाली साहित्यिक संस्थाएं नाटक, कविता, कथा-गोष्ठी के आयोजन करने के अलावा अपने लोगों के सुख-दुःख में भी सहयोग करती हैं। निश्चित रूप से इससे नेपाली समाज की सक्रिय गतिविधि के बारे में पता चलता है। उपन्यास की पृष्ठभूमि कोलकाता होने के कारण इसमें कई जगहों पर बङ्गला और हिन्दी भाषा का भी प्रयोग किया गया है।

रूपनारायण सिंह की लेखन प्रवृत्ति से प्रभावित भारतीय नेपाली साहित्य में दूसरे कथाकार कृष्णसिंह मोक्तान हैं, जिन्होंने सन् 1949 में अपनी पहली कहानी 'गरीबको आँसु' के माध्यम से साहित्यिक यात्रा की शुरुआत की। मोक्तान ने रामकृष्ण वेदांत आश्रम से अपनी औपचारिक शिक्षा ग्रहण करके सन् 1954 में विश्व भारती शांति निकेतन से समाज विज्ञान में डिप्लोमा और कलकत्ता विश्वविद्यालय से राजनीतिशास्त्र से एम. ए. प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किया। कोलकाता में कुछ दिनों तक पुलिस विभाग में नौकरी करते हुए उन्होंने कलकत्ता के जन-जीवन को बहुत ही नजदीक से महसूस किया। प्रेसीडेंसी कारागार में जेलर के रूप में कार्य करते हुए इन्होंने वहाँ के कैदियों जैसे सुल्तान अली, मदन, निर्मल सेन और अशोक आदि से मुलाक़ात की और इनके जीवन की कथा को अपने उपन्यास 'जीवन परिक्रमा' (1964) में दर्ज

किया। संस्मरणात्मक शैली में लिखा गया यह उपन्यास विषय के स्तर पर अन्य नेपाली भाषा के उपन्यासों की तुलना में पूर्णतया भिन्न है। जेल विभाग में कार्य करने के दौरान इन्होंने बंदियों के जीवनानुभव, अपराधियों की मनोवृत्ति एवं चरित्रों की वास्तविक घटना का विश्लेषण अपने इस उपन्यास में किया है। कारागार के सुपर्यवेक्षक की भूमिका में प्रमुख पात्र चंद्रशेखर है। वह कलकत्ता की यूनिक कॉलोनी में किराए का मकान लेकर अपनी पत्नी सरस्वती देवी के साथ रह रहा है। उसने अपनी श्रीमती को कारागार के विभिन्न कैदियों की कथा सुनाई है। चंद्रशेखर नौकरी के सिलसिले में जलपाईगुड़ी से कलकत्ता आया जहां उसकी मुलाक़ात धर्मराज धिताल के साथ चतुरमान सुब्बा जैसे आर्थिक रूप से विपन्न व्यक्ति के साथ हुई। उपन्यास के दूसरे परिच्छेद में कलकत्ता जैसे महानगर के व्यस्ततम जीवन में प्रत्येक कार्य के लिए पंक्ति में लगना पड़ता है। जीवन निर्वाह के लिए चन्दन नगर से चलकर कलकत्ता में नौकरी करने वाले सुबोध बाबू, बनगाँव से कलकत्ता आने वाले गोपाल बाबू के रात-दिन की रेल-बस यात्रा का वर्णन इस उपन्यास में अत्यंत यथार्थपरक ढंग से हुआ है। सन् 2003 में प्रकाशित 'जीवन गोरेटो' उपन्यास को सन् 2006 में साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रदान किया गया। इस उपन्यास का पूर्वाधार ' *जीवन-परिक्रमा* ' उपन्यास है। इस उपन्यास में चित्रित पृष्ठभूमि भी कलकत्ता के नगरीय जीवन और उसके आस-पास का रहा है। उपन्यास में चित्रित मिस्टर नटवरलाल, चारू मजूमदार, प्रमोद दास गुप्त और नाटा मल्लिक जैसे चर्चित बंदियों के जीवन-दर्शन का विस्तृत वर्णन किया गया है। अपराध जगत को लेकर नेपाली साहित्य में बहुत कम लिखा गया है। उपन्यास के संदर्भ में कृष्णसिंह मोक्तान का मंतव्य है : "जीवन के लंबे, घुमावदार, असभ्य, चमकदार एवं विषमताओं से भरे रास्ते में मिले हुए विचित्र, असामान्य, रोमांचक, देखने में साधारण परंतु भीतर से नृशंस हत्यारा-हत्यारिन, कुरूप और खुरदुरे आवरण के भीतर छिपी हुई सुन्दर प्रतिभा और कीचड़ के बीच खिले कमल के फूलों का चरित्र-चित्रण एवं उनके अद्भुत आख्यानों को इस ग्रंथ में लिपिबद्ध किया गया है।" (पृ.111)

सन् 1967 में कविता विधा से साहित्य में प्रवेश करने वाली विंद्या सुब्बा ने नेपाली साहित्य में अब तक 17 रचनाएँ लिखी हैं। नेपाली कथा-साहित्य में अपनी विशिष्ट छाप छोड़ने वाली विंद्या सुब्बा द्वारा सन् 1999 में लिखे गए उपन्यास 'अथाह' को सन् 2003 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से विभूषित किया गया है। भारतीय कथा-साहित्य में अपना उच्च स्थान बनाने में सफल विंद्या सुब्बा ने कविता, यात्रा-वृत्तान्त और आलोचना विधा में अपनी कलम चलाई है। यह उपन्यास कलकत्ता के मानसिक रोगियों के विभिन्न कथा पर आधारित है। कथा की प्रमुख पात्र प्रीति सुबोध बाबू की बेटी है, उपन्यासकार स्वयं प्रमुख पात्र के रूप में नर्सिंग शिक्षा में डिग्री हासिल करके कुछ महीनों के लिए कलकत्ता के मानसिक चिकित्सालय में रोगियों के उपचार एवं सेवा के लिए तत्पर हो जाता है। प्रथम पुरुष दृष्टिकोण में लिखे गए इस उपन्यास में महानगर के उस मानसिक अस्पताल का चित्रण इस प्रकार से किया है- "पूरा अस्पताल चारों और से सीमेंट की सलाखों से घिरा हुआ था, सबसे बाहरी लोहे का मूलद्वार और फिर उसी द्वार के माध्यम से प्रवेश करने के बाद, स्त्री-

पुरुष भाग को लोहे की दो रेलिंग दरवाजों से अलग कर दिया गया था। बहुत चौड़ा, बरामदे से पहले हरे रंग की दूब का एक पुरुष भाग और उससे भी छोटे आँगन में पीपल के पेड़ के साथ स्त्री भाग।"(पृ.6) इस विवरण से स्पष्ट होता है कि अस्पताल में रोगियों के लिए अच्छी एवं अनुशासित व्यवस्था है। विभिन्न संप्रदायों और जातियों से विवाहित, कुछ अविवाहित, कुछ सफ़ेद बालों के साथ, कुछ बुजुर्ग विशेषतः मानसिक रूप से बीमार महिलाओं में, दार्जिलिंग की तकभर कमान में रहने वाली माया एक समय में आकर ठहर गई है। वह अभी भी अपनी उम्र 35 साल बताती है, जिसको अपने ही भाइयों ने इस अस्पताल में छोड़ दिया है। कोलकाता के विभिन्न जगहों और विभिन्न कारणों से आए मानसिक रोगियों का इलाज अभी भी इस अस्पताल में चल रहा है उनमें से बीस वर्ष की प्रीति, चौबीस वर्ष की अपराजिता, संध्या, जिता, शशि, छब्बीस-सत्ताईस साल की गंगा, अठारह-उन्नीस साल की अस्मिता आदि शामिल हैं जो विवशता, विश्रृङ्खलित मन और गतिविधियों में अपना जीवन-यापन कर रहे हैं। इन सबका चित्रण सुब्बा ने अपने इस उपन्यास में किया है। कोलकाता के बस यात्रा में दिखने वाला कष्ट, पति के साथ बिताया हुआ पल, शीतकाल के बाद गर्मी में कृष्णचुड़ा और पलास के वृक्ष को देखकर दार्जिलिंग में खिलने वाला चाँप और गुराँस की याद और शाम के समय कोलकाता के दृश्य का अत्यंत मनोहर वर्णन उपन्यास में मिलता है- "सूर्यास्त के बाद धुंधलके में, हरी घास के मैदान अधिक आकर्षक हो गए हैं। लोग पेड़ों के नीचे बैठकर बातें करते हैं और फिर एक-दो जोड़े दंपति अपने बच्चों का हाथ पकड़कर उन्हें घूमा रहे होते हैं। रात को यह मैदान, वृक्ष और वातावरण अत्यंत शांत रहता है।" (पृ॰ 42) उपन्यास में कुछ-कुछ जगहों पर कोलकाता महानगर के सौंदर्य चित्रण के साथ दार्जिलिंग के प्राकृतिक सौन्दर्य का तुलनात्मक रूप मिलता है। विंध्या सुब्बा का जुड़ाव नर्सिंग से होने के कारण उनके इस उपन्यास में कोलकाता प्रवास प्रशिक्षण के समय किए गए अनुभवों का भी चित्रण मिलता है। वह लिखती हैं- "इस पेशे में कई चरित्रों से मेरी भेंट हुई। कुछ चरित्र ऐसे हैं जिसको मैं कभी भूल नहीं सकी, कुछ चरित्र मेरे मन में बैठे हैं, कुछ मेरे आँखों में, कुछ चरित्र बार-बार मेरे सामने आते हैं और कुछ मेरी रचनाओं के पन्नों में बंद हो गए हैं।" (पृ. 60) 'अथाह' उपन्यास में उन्होंने अपने इन्हीं अनुभवों बहुत ही व्यवस्थित एवं सहज ढंग से अभिव्यक्त किया है। दूसरे शब्दों में कहें तो यह उपन्यास उनके इन्हीं अनुभवों का मुकम्मल दस्तावेज़ है।

विंद्या सुब्बा बार-बार अपनी रचनाओं में पलास और कृष्णचूड़ा का ज़िक्र करती हुई दिखाई देती हैं। कारण यह कि उन्हें प्रकृति विशेषकर फूलों और पेड़ों से अत्यंत लगाव है। तराई में खिलने वाला पलास और कृष्णचूड़ा का फूल आज भी इनकी रचनाओं में यत्र-तत्र मिलते हैं। मुख्यतः दो रचनाओं का जिक्र यहाँ पर हुआ है। सन् 2003 में प्रकाशित दूसरे कथा-संग्रह 'हस्पिस' में संकलित कहानी 'पलास फुल्नलाई बसंत पर्खन्दैन' (पलास फूलने के लिए बसंत की प्रतीक्षा नहीं करता) की पृष्ठभूमि भी कोलकाता है। कहानी की पात्र मुनियाँ जिस गली में रहती है, उस गली को रहने के लिए उचित स्थान नहीं माना जाता है। रचनाकार ने उस गली का नामोल्लेख कहानी में कहीं भी नहीं किया है। यह कथा कलकत्ता महानगर के संदर्भ में इस

अर्थ में महत्त्वपूर्ण है कि कथाकार ने फूले हुए पलाश के फूल की सुंदरता को कलकत्ता में आकर ही देखा है, इस फूल का अधिक महत्त्व सरस्वती पूजा के लिए दिखाया गया है। दार्जिलिंग में भी यह विश्वास है कि पंचमी में पलाश के फूल की अपेक्षा उसकी मुरझाई शाखाओं को ही चढ़ाया जाता है। लेकिन कलकत्ता महानगर के महान त्यौहारों में से सरस्वती पूजा के दिन ही इस फूल का अधिक महत्त्व होता है। कथाकार ने अपने लड़के प्रणय के साथ घूमते हुए वर्णन कथा में इस प्रकार किया है- "तराई इलाके इस मौसम में कितने आनंददायक होते हैं। इस पार्क के एक ओर पलाश का एक वट है। दार्जिलिंग में सरस्वती पूजा के समय सूखी हुई डाली को ही पलाश के फूल के रूप में प्रयोग करते हैं लेकिन तराई में आकर ही ज्ञात हुआ कि पलाश का फूल और वट कैसा होता है। विवाह के उपरांत हम तराई के जिस इलाके में रहते थे, उसके आस-पास पलाश के फूल थे। पता ही नहीं चला कि मुझे किसी मौसमी फूल के फूलने के इंतजार की आदत कैसे पड़ गई। बसंत पंचमी से ही बसंत आरंभ हो जाता है और उसी समय बसंत के मौसमी फूल फूलने लगते हैं। इस जगह पर बसंत आगमन से पूर्व ही पलाश के फूलने का दृश्य बनना शुरू हो जाता है, जिसे देखकर पवित्रता की सुखद अनुभूति होती है। पूर्ण रूप से विकसित पलाश कितना रमणीय दिखता है। सरस्वती पूजा के कुछ दिन पहले ही पलाश के वृक्ष से किसी व्यक्ति ने फूल को डाली सहित तोड़ लिया, इस प्रकार का दृश्य देखकर मुझे अत्यंत क्षोभ हुआ। सुना है, सरस्वती पूजा में पलाश के फूल का होना जरूरी है, उसी समय ही उसकी बिक्री भी अधिक होती है।" (पृ. 19) इस कथा में कलकत्ता महानगर को तराई इलाका कहा गया है। कथा के आरंभ के कुछ हिस्से को हम मिसाल के तौर पर देख सकते हैं: "कलकत्ता के एक बाजार में अचानक मुनिया के साथ मुलाक़ात हुई।" (सुब्बा, 2003: 13) एक प्रकार से देखें तो लेखक ने अपनी इस कथा में मुनिया के बचपन के दिनों का चित्रण बहुत ही बारीकी से किया है, पूर्वदीप्ति शैली के प्रयोग से निश्चित रूप से यह कथा अधिक जीवंत एवं प्रभावी हो जाती है। 'कृष्णचूड़ा र पलाश फुल्ने देशबाट' (कृष्णचूड़ा और पलाश फूलने वाले देश से) कथा में भी कलकत्ता में समुद्र के किनारे बस यात्रा करते समय कृष्णचूड़ा फूल को देखकर लेखक बहुत आकर्षित हो जाता है। इस यात्रा में कलकत्ता का वर्णन कहानीकार ने बहुत ही मनोयोग के साथ सुन्दर ढंग से किया है।

कथा, उपन्यास एवं नाटक में सफलतापूर्वक कलम चलाने वाले समीरण छेत्री प्रियदर्शी सामाजिक यथार्थवादी कथाकार के रूप में स्थापित हैं। 'फुटेको मुरली' (1964), 'असफल चित्रकार' (1967), 'अर्को मान्छे', (1986), 'निर्वाणको रात', 'नीलो झींगा' (सन् 1993), 'गैरीगाउँकी चमेली' (सन् 2007) छः कथा संग्रह और दो उपन्यास 'बलिवेदी' और पोखिएको जिंदगी' लिखने वाले समीरण भारतीय नेपाली कथा साहित्य में इन्द्रबहादुर राई के बाद इस पीढ़ी के प्रमुख हस्ताक्षर हैं। समीरण प्रियदर्शी की कथाभूमि अपने समकालीन कथाकारों से कई मायने में भिन्न है। उन्होंने अपने समाज से कथा भूमि के रूप में ऐसे विषयों को चुना है जिस पर अन्य रचनाकारों का ध्यान सामान्यतया अब तक नहीं गया है। वह अपनी कहानियों में हमेशा कुछ नये और अलग विषयों को लेकर उपस्थित होते हैं। समीरण कलकत्ता को भारतीय

स्वाधीनता आंदोलन के इतिहास के एक महत्त्वपूर्ण अध्याय के रूप में देखते हैं। उन्होंने अपनी ज़्यादातर रचनाओं का ताना-बाना इसी पृष्ठभूमि पर बुना है। इसे इनकी रचनाशीलता के वैशिष्ट्य के रूप में देखा जा सकता है। कलकत्ता एक समय में भारत के स्वाधीनता आंदोलन का मुख्य केंद्र था। पहला कहानी संग्रह 'फुटेको मुरली' के अंतर्गत एक कहानी 'के लिएर आएँ' (क्या लेकर आया) में स्वाधीनता आंदोलन में सुवासचंद्र बोस द्वारा गठित ईकाई 'आजाद हिन्द फौज' की कहानी और गोर्खा सेनानी द्वारा अंग्रेजों के विरुद्ध की लड़ाई के वर्णन पर आधारित है। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में कलकत्ता महानगर का भी अपना एक सार्थक एवं स्वतंत्र हस्तक्षेप रहा है। उस समय की कलकत्ता की स्थिति का वर्णन लेखक ने जिस प्रकार से किया है, उल्लेखनीय है- "कलकत्ता की गलियों में भूख से बेहाल चीखें थी। फुटपाथ पर लावारिस लाश, अधमरे और तड़प रहे लोगों की भीड़ थी। मोटर, ट्राम बंद थे। रास्तों पर सन्नाटा था। केवल हवाई जहाज की आवाज आ रही थी। शहर के बीच में सिपाहियों के एक समूह ने एक अंग्रेज़ सार्जन पर ईंट से वार करके उसे गिराकर ट्रक से उतरकर भाग गए। स्वराज आंदोलन का एक और दल 'महात्मा' का नारा लगाते हुए आगे बढ़ रहा था। दिन-प्रतिदिन भुखमरी से मरने वालों की संख्या बढ़ ही रही थी। बड़ी-बड़ी बिल्डिंग के गंदे नाले से बहते हुए भात को भी खाने के लिए लोग मजबूर थे। मनुष्य खाने के लिए मर रहे थे, उन्हें देखकर ऐसा लग रहा था जैसे वह खाने के लिए कुत्ते बिल्ली की तरह लड़ रहे हों। अब मनुष्य का हाड़-मांस ही खाने को शेष रह गया था। सियालदह प्लेटफॉर्म पर भी भूख से पीड़ित लोग कराह रहे थे। नींद न आने से भी आँखें नींद का अनुभव कर रही थी। आंदोलन के एक समूह स्वयंसेवक से पूछने के बाद मैंने अपना परिचय दिया कि मैं नेताजी के आजाद हिन्द फौज का सदस्य हूँ। उसके बाद मुझे उठाकर वह अपने गुप्त दफ़्तर ले गए जो बाजार के दूसरी ओर एक कोने में स्थित था।" (पृ. 58-59) कथाकार स्वयं इस कथा में प्रमुख पात्र के रूप में उपस्थित है।

समीरण द्वारा लिखी गई 'नीलो झिंगा' कहानी-संग्रह में संकलित एक कहानी 'कालो झोला' की पृष्ठभूमि भी कलकत्ता महानगर ही है। इसकी कथा भी आजाद हिंद फौज से संबद्ध है। भारत को स्वाधीनता दिलाने में भारतीय नेपाली वीर-वीरांगनाओं के बलिदान के अनलिखे इतिहास एवं भूली हुई उन घटनाओं को सियालदह के ट्राम स्टॉप पर गंदे व फटे कपड़े पहनकर बैठने वाले वह पात्र जो ज्यादातर चिल्लाते रहते हैं, वह दूसरे पात्र लेफ़्टीनेंट कर्नल बुडाथोकी का इस बारे में विस्तृत वर्णन करते हैं। इस कथा में सिर्फ कलकत्ता का ही अधिक वर्णन न होकर हावड़ा, बालीगंज जैसे प्रमुख स्थानों का भी उल्लेख है।

नारी हिंसा पर आधारित समीरण की एक और कहानी 'ब्यारेकपुर लोकल' में कथाकार ने ब्यारेकपुर से सियालदह जाने वाली एक लोकल ट्रेन में हुई एक संवेदनशील घटना का चित्रण किया है। यह कहानी 'गैरीगाउँकी चमेली' संग्रह में संकलित है। कथा का आरंभ उल्लेखनीय है: "मैं ब्यारेकपुर-सियालदह का डेली का पैसेंजर था। उस दिन सियालदह स्टेशन से ट्रेन के छूटने के कुछ देर बाद चार जवान

लड़के मेरे डिब्बे (कम्पार्टमेंट) में घुस गए, उनकी उम्र 25-26 की रही होगी।" (पृ. 40) कथा में वर्णित इस प्रकार की घटनाएँ कलकत्ता जैसे व्यस्त महानगर में आए दिन घटती रहती हैं। उस दिन चलती हुई ट्रेन में यह घटना घटित हुई। डिब्बे में बैठे दो प्रेमी-प्रेमिकाओं पर चारो युवकों ने अन्य यात्रियों को नज़रअंदाज करते हुए लड़की के साथ बदसलूकी करने की कोशिश की। अन्य पचास लोगों ने उस घटना को घटित होते देखकर भी किसी प्रकार का प्रतिकार नहीं किया गया, लेकिन एक महिला ने हिम्मत दिखाते हुए बोला: "क्या वहाँ पर कोई मर्द नहीं है?" आँख के सामने एक मासूम लड़की... ?" उसने फिर बोला- "मुझे प्रतिकार करने वाले एक मर्द की तलाश है।" (पृ. 43) महिला के इस कथन को सुनकर कथाकार के मन में हिम्मत आ जाती है और वह अकेले उस लड़की को चारो युवकों से बचाने में सफल हो जाता है। कथाकार कहता है- "मुझे बदमाशों के साथ अकेले लड़ते हुए देखकर अन्य लोग भी सक्रिय हो गए। सभी लोगों को मेरे साथ खड़े देखकर चारो युवक ट्रेन से कूद गए। मैंने पकड़े गए लड़के को ट्रेन से धक्का (से) दिया। इसी समय प्लेटफॉर्म पर रूकने का सिग्नल दिखाई दिया, ट्रेन ब्यारेकपुर पहुँच गई।" (पृ. 44) इस कहानी के माध्यम से लेखक ने स्वार्थी मनोवृत्ति एवं संकुचित मानसिकता से ग्रस्त समाज के ऐसे चरित्रों को दिखाने का प्रयास किया है जो हत्या, छेड़खानी, बलात्कार जैसी संवेदनशील घटनाओं को सामने घटते हुए देखकर भी विरोध करने में सक्षम होने के बावजूद तमाशबीन एवं मूकदर्शक बने रहते हैं। कहानीकार ने ऐसे छद्म और स्वार्थी मानसिकता वाले व्यक्तियों पर टिप्पणी की है साथ में यह बताने का भी प्रयास किया है कि हमें अपनी चेतनाशून्य वृत्तियों से सजग होकर अभिव्यक्ति के खतरे उठाने की जरूरत है, इससे कहीं न कहीं आए दिन हो रही घटनाओं पर हम अंकुश लगाने में काफी हद तक सफल हो सकते हैं।

भारतीय नेपाली आख्यान साहित्य के मूल स्तंभ के रूप में इन्द्र सुन्दास अपने समय के चर्चित कथाकारों में से एक हैं। 'चामलको महँगी' कथा द्वारा साहित्य में प्रवेश करने वाले कथाकार सुंदास ने अपनी रचनाओं में विशेषतः दार्जिलिंग के परिवेश का चित्रण किया है। इनके द्वारा लिखी गई रचना 'अनुताप' की कथा में कोलकाता में घटित कुछ घटनाओं का वर्णन है। गाँव में पले-बढ़े जयचन मैट्रिक पास करके बी.ए. की पढ़ाई के लिए कोलकाता आता है उसके बाद वहीं से बी.एल. भी करता है। कोलकाता आने से पहले वह तारा से प्रेम करता है और उसी से शादी करने के लिए सोचता है, लेकिन कलकत्ता में आने की बाद उसकी परिस्थिति बदल जाती है। उसकी मुलाकात धनाड्य परिवार के एक साथी की बहन सुलोचना से हो जाती है जो अभी बी. ए. की पढ़ाई कर रही है। कोलकाता में शहरी परिवेश के कारण जयचन तारा को प्रेम तो करता है लेकिन धीरे धीर उसे भूलता जा रहा था, वह उसे अपने से दूर रखता था- "कोलकाता में तारा के लिए जो मन व्याकुल हुआ करता था गाँव में आकर वह सुलोचना के लिए बैचेन होता है।" (पृ॰77) वह सब कुछ भूल जाता है और अंत में सुलोचना से शादी कर लेता है। इससे एक बात पक्की है कि गाँव से पढ़ने आया हुआ युवक जब शहर के वातावरण में एक बार घुल-मिल जाता है तो उसे शहर की आबोहवा से निकाल पाना बहुत ही मुश्किल कार्य है। तारा को धोखा देकर सुलोचना से शादी

करना और दूसरी ओर तारा की एक गरीब लड़के के साथ शादी होना, कोई नहीं टाल सकता है, इस तरह के तमाम उदाहरणों को लेखक ने अपनी रचना में बहुत ही बेबाकी से रेखांकित किया है।

कलकत्ता को केंद्र में रखकर कई रचनाएँ लिखने वाले भारतीय नेपाली आख्यानकार मणि कुमार सुब्बा ने 'टुकी' कविता के माध्यम से सत्तर के दशक में अपनी साहित्यिक यात्रा प्रारम्भ की। इन्होंने अपनी जीवन यात्रा का 33 वर्ष कलकत्ते में नौकरी करके ही व्यतीत किया। इनका पहला कहानी संग्रह 'तुवाँलोभित्रको सम्झना' (1996) में कुल ग्यारह कहानियाँ संकलित हैं। इस संग्रह में संकलित कहानियों की पृष्ठभूमि कलकत्ता महानगर के जन जीवन एवं उनके भोगे हुए यथार्थ पर आधारित है। सन् 2005 में प्रकाशित 'चंद्रबाला' की 18 कहानियों का संग्रह भी कलकत्ता महानगर पर ही आधारित है। इसक संग्रह में संकलित 'महानगरी को रात र आफ्नो माञ्छे को... लाश' कहानी में लेखक ने सियालदह स्टेशन के फुटपाथ पर पड़े एक बेहोश, अधमरे व लावारिश व्यक्ति की बदहाल स्थिति का चित्रण किया है। इस कहानी में सियालदह स्टेशन पर कांचाबहादुर नाम का एक व्यक्ति बदहाल स्थिति में फुटपाथ पर पड़ा हुआ मिलता है। कलकत्ता में स्थापित जन कल्याण संघ के सदस्य रामबहादुर द्वारा इसकी सूचना वहाँ की जनकल्याण संघ संस्था को दी जाती है। इसके पश्चात् संस्था के सदस्यों द्वारा उस लावारिश व्यक्ति का चिकित्सकीय उपचार कराए जाने के दौरान अस्पताल मौत हो जाती है। व्यक्ति के पूरी तरह से अपरिचित होने के बावजूद भी वहाँ की जनकल्याण संघ संस्था द्वारा उस व्यक्ति का विधिवत अंतिम संस्कार किया जाता है। जनकल्याण संस्था के एक सदस्य के रूप में इस घटना में लेखक स्वयं उपस्थित है। इस घटना के माध्यम से सुब्बा ने नेपाली समुदाय के सामंजस्यपूर्ण सौहार्द्र एवं एक दूसरे के प्रति उनके सहयोगात्मक व्यवहार पक्ष को बहुत जीवंत रूप में प्रस्तुत किया है। 2011 में प्रकाशित कहानी संग्रह 'दिभ्रम' के अंतर्गत एक कहानी 'रात यसरी जिउँछ' में लेखक ने कलकत्ता की हर्कट्ठा गली के वैश्यालय को केंन्द्र में रखा है। कथा का प्रारम्भ इस प्रकार है- "प्रचंड गर्मी से बेहाल वातावरण। इसमें लोगों की खचाखच भीड़। चारो तरफ रिक्शा, ट्राम और बसों से भरी हुई सड़क। वाहनों की आवाजाही से वातावरण कोलाहलमय हो गया था। यह एक व्यस्ततम शहर है। यहाँ उच्च तबके के लोग एयर कंडीशन में रात्रि व्यतीत करते हैं।.... रजनीगंधा, बेलफूल, गजरा, झुमका आदि का क्रय-विक्रय चल रहा है। होटल-रेस्टोरेन्ट में ग्राहकों की आवाजाही और मौजमस्ती जारी है।" (पृ. 1) इस वर्णन से एक विशेष प्रकार के परिवेश का भान होता है।

भारतीय नेपाली साहित्य के आख्यान विधा में डुवर्स क्षेत्र के प्रतिनिधि साहित्यकार बद्रीनारायण प्रधान का नाम बड़े ही आदर से लिया जाता है। मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित प्रधान ने अपने लेखन में प्रगतिवादी धारा को आत्मसात किया है। भारतीय बाल साहित्य में भी इन्होंने अपनी महत्त्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज की है। इनकी एक कहानी 'ड्राइभर तेजवीरको कथा' में कलकत्ता का चित्रण देखने को मिलता है। अल्पशिक्षित तेजवीर गाँव के परिवेश में ड्राइवरी सीखने के बाद कलकत्ता महानगर में ड्राइवरी करता है।

कलकत्ता को 'क्यालकाटा' उच्चारण करने वाला तेजवीर ड्राइवरी की नौकरी मिलने के बाद गाँव की पहले से पसंद की हुई एक लड़की इंद्रेणी से विवाह करके उसे कलकत्ता ले जाता है, जिसने इसके पहले कभी सिलीगुड़ी तक नहीं देखा था। जिसका वर्णन इस प्रकार है: "कलकत्ता की भीड़, गाड़ियों की आवाज, लोगों की खचाखच भीड़ को देखकर इंद्रेणी ने समझा कि मेला लगा है। पति का हाथ पकड़ते हुए इंद्रेणी अपने पति से पूछती है- क्या यही है आपका क्यालक्याटा?" (पृ.61) उसने कलकत्ता की जीवन-शैली को बहुत जल्दी ही समझ लिया। उसके पति ने उसे कलकत्ता के प्रमुख स्थलों जैसे चिड़ियाघर, बोटनिकल गार्डन, हावड़ा ब्रिज, विडला प्लानटोरियम, भिक्टोरिया मेमोरियल एवं म्यूजियम आदि का भ्रमण कराया। अपनी जन्मभूमि को भूलकर वे दोनों अब कलकत्ता के माहौल में रच-बस गए। वैवाहिक जीवन सुखमय व्यतीत हो रहा था, इसी समय गाड़ी मालिक की कुदृष्टि तेजवीर की सुन्दर और हृष्टपुष्ट पत्नी पर पड़ जाती है, तेजवीर को इसका पता नहीं चल पाता है। घर में पत्नी के मायके गए हुए का बहाना बनाकर गाड़ी मालिक द्वारा इंद्रेणी को अपने घर में खाना बनाने के बुलावे पर तेजवीर उसे समझाकर भेज देता है। कुछ दिन अच्छी तरह बीतने के बाद मालिक उसके अकेले होने का फायदा उठाकर इंद्रेणी की इज्जत पर हाथ डाल देता है। इस कुकर्म के विषय में इंद्रेणी घर आकर अपने पति को सब कुछ बता देती है। मौका देखकर तेजवीर गाड़ी मालिक से बदला लेने को सोचता है लेकिन कुछ दिन तक वह इस घटना पर कुछ प्रतिकार नहीं करता। कुछ दिन बीतने पर वह योजनाबद्ध तरीके से मालिक से बदला लेने में सफल हो जाता है। इस से पहले वह इंद्रेणी को ट्रेन से दार्जिलिंग भेजकर वह भी नौकरी छोड़कर दार्जिलिंग चला जाता है। यहीं पर कहानी खत्म हो जाती है।

भारतीय नेपाली साहित्य के समकालीन लेखन में कालुसिंह रनपहेंली एक चर्चित कवि, कहानीकार एवं गीतकार के रूप में उल्लेखनीय नाम है। 2011 में प्रकाशित कहानी संग्रह 'प्रश्नचिन्ह' में संकलित एक कहानी 'धमिलिंदै गइरहेको एउटा साँझ' में कलकत्ता महानगर के सुप्रसिद्ध स्थल विक्टोरिया मेमोरियल का सजीव चित्रण देखने को मिलता है। यह कहानी दो पात्रों की आधुनिक विचारधारा पर केन्द्रित है जिसमें दो अपरिचित पात्रों द्वारा किया गया संवाद कथा में इस प्रकार से है:

"कलकत्ता महानगरी।

विक्टोरिया मेमोरियल के सामने स्थित बाग-बगीचे का दृश्य एकाएक जीवंत होकर आँखों में समा जाता है। विक्टोरिया मेमोरियल के ऊपर जलती हुई चमकती बत्ती।

"एक्सक्यूज मी!"

"यस प्लीज!"

"आप मेरे साथ चल सकते हैं?"

"ओके... नो प्रोब्लेम" (पृ.77)

नेपाली आख्यान के ज्यादातर पात्र उच्च शिक्षा के निमित्त ही कोलकाता आए। जैसे- रनपहेंली के उक्त कथा का पात्र दिपेस कलकत्ता में मेडिकल की पढ़ाई करने के लिए आया। पात्र का वास्तविक नाम दिपेस और विदिषा है लेकिन दोनों ने विक्टोरिया मेमोरियल की पहली मुलाक़ात में ही झूठ बोलकर अपना नाम दिपेस ने गगन और विदिषा ने सुस्मिता एक दूसरे को बताया। सुस्मिता नाम की अपरिचित लड़की ने पहली मुलाक़ात में ही गगन के साथ प्रेम के नाम पर कुछ भी करने को तैयार हो जाती है। इस प्रकार का व्यवहार देखकर गगन के मन में सुस्मिता के प्रति इस प्रकार का संदेह होता है कि सुस्मिता को किसी व्यक्ति ने उस शहर में छोड़ दिया हो व बेच दिया हो। इस प्रकार की दलदल स्थिति से सुस्मिता को बचाने के लिए दिपेस विक्टोरिया मेमोरियल प्रतिदिन जाता है लेकिन उसकी मुलाक़ात सुस्मिता से नहीं होती है। इस बीच (अंत में) दिपेस की मँगनी तय हो जाती है और वह इसके निमित्त जिस घर में जाता है उस समय गगन की मुलाक़ात सुस्मिता से हो जाती है। यहीं दोनों को एक दूसरे के असली नाम का पता चलता है। इस तरह विक्टोरिया मेमोरियल में दिखे प्रेममय दृश्य में कृत्रिम प्रेम का ढोंग रचकर शारीरिक संबंध स्थापित करने में कोई असहजता महसूस न होने जैसी घटना का इस कथा में वर्णन किया गया है।

सिक्किम में नेपाली भाषा एवं साहित्य को विकसित करने में रश्मिप्रसाद आले की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। सन् 1947 में गंगटोक में गठित 'नेपाली साहित्य सम्पर्क समिति' के संस्थापक सदस्य आले ने सन् 1958 में प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका 'सुनाखरी' का सम्पादन किया है। लेख, निबंध एवं कथा आदि में कलम चलाने वाले आले की एक कहानी 'भूईचालो' भारतीय नेपाली कथा विशेषांक में संकलित है।

सभी रचनाकारों की तरह ही आले ने भी अपने कथा साहित्य में कलकत्ता के आकर्षण को महसूस किया है। उन्होंने अपनी कहानी 'भूईचालो' में कलकत्ता महानगर को देखने की इच्छा मात्र नहीं बल्कि उसे अपने सौभाग्य के रूप में स्वीकार किया है। सिक्किम से अपने ही एक मित्र के साथ कलकत्ता पहुँचे हुए आले ने कलकत्ता का चित्रण करते हुए लिखा है- "कलकत्ता में भी चिड़ियाघर, जादूघर, विक्टोरिया मेमोरियल, हावड़ा का पुल, इत्यादि के भ्रमण के साथ ही घर से बच्चों एवं पत्नी द्वारा भेजी गई चीजों की लंबी सूची में लिखे सामनों को खरीदने के लिए वह चौरंगी, डलहाउजी, धर्मताला और बड़ा बाजार घूमते-घूमते पूरी तरह थक गया है। भीड़ और पाकेटमार के डर से वह त्रस्त है। होटल का किराया चुकाने में असमर्थ होने की फिक्र के साथ-साथ उसे अपने फटे हुए झोले को पाकेटमारों से बचाने की चिंता है।" (पृ. 546) तीन दिन तक कलकत्ता में रहने के बाद वह जब सिक्किम घर लौटने के लिए सियालदह स्टेशन से रेल में चढ़े तो सोने के बाद रेल के हिलने की स्थिति से लेखक को भूकंप का अनुभव हुआ। इस भूकंप ने पूरी तबाही मचा दी, लेकिन नींद खुलने पर लेखक को आभास हुआ कि वह स्वप्न देख रहा था।

भारतीय नेपाली साहित्य के चर्चित लेखक नुरनराई 'जुदू' ने अपने कहानी संग्रह 'ठेलमठेलभित्रको बोध' में अपने समय की तत्कालीन विसंगतिबोध एवं चुनौतियों को उद्घाटित किया है। इस संग्रह की चर्चित

कहानी 'मैले नौकरी छाड़ने निर्णय लिएँ' जातीय अस्मिता पर आधारित है। कहानी का मुख्य पात्र कलकत्ता के अंग्रेजी स्कूल का एक अध्यापक है। सामाजिक भेदभाव एवं जातीय दंश से त्रस्त होकर वह अंत में नौकरी छोड़ने का निर्णय ले लेता है। इस कहानी में लेखक ने कलकत्ता के तत्कालीन समाज में जाति के नाम पर हो रहे भेदभाव, हिंसा एवं मानसिक प्रताड़ना को दिखाने का प्रयास किया है।

जीवन नामदुंग द्वारा संकलित एवं संपादित पुस्तक 'गाब्रियल रानाका कथाहरू' संग्रह में नेपाली समाज के जनजीवन के प्रत्येक पहलुओं को उजागर किया गया है। इस संग्रह में संकलित 'कलकत्ता शहरभित्र जन्मेको एउटा कथा' में नेपाली समाज की जीवंत संस्कृति को रेखांकित किया गया है। कहानी का मुख्य पात्र कांछा कलकत्ता में स्थित हजारीरोड के किनारे एक पंजाबी रेस्टोरेन्ट में कुक के रूप में काम करता है। लेखक ने इस कहानी में कांछा को एक सहज, मिलनसार एवं हँसमुख पात्र के रूप में चित्रित किया है। इस कहानी में लेखक ने कलकत्ता में भिन्न-भिन्न जगहों जैसे- भवानीपुर, खिदिरपुर एवं पार्क सर्कस आदि स्थानों पर रहने वाले नेपाली समुदाय का विवरण प्रस्तुत करते हुए नेपाली समाज की मिश्रित संस्कृति को भी रेखांकित किया है। दीवाली पर्व के समय की नेपाली संस्कृति का सजीव चित्रण भी कहानी में प्रमुखता से उद्घाटित हुआ है। कलकत्ता में नेपाली समाज को एकजुट करने की दिशा में भी इस कहानी का सार्थक हस्तक्षेप देखने को मिलता है।

भारतीय नेपाली साहित्य के चार उपन्यासों एवं कहानियों में कलकत्ता में अलग–अलग समय में घटित घटनाओं, समाज की छोटी-बड़ी समस्याओं एवं स्थलों को रचनाकारों ने जिस रूप में महसूस किया, उसका जीवंत चित्रण उनकी रचनाओं में देखने को मिलता है। आधुनिक नेपाली साहित्य में कलकत्ता का वर्णन विशेष रूप से होना निश्चित रूप से महत्त्वपूर्ण है। एक प्रकार से देखें तो आधुनिक नेपाली साहित्य के लिए यह प्रसंग गर्व का विषय है। कलकत्ता का वर्णन करने का मतलब वहाँ की भाषा, जीवन-शैली एवं संस्कृति को साहित्य में लाना है। नेपाली साहित्य में इसके मौलिक स्वरूप का चित्रण प्रमुखता से दिखाई देता है। आज का कोलकाता, वह कलकत्ता नहीं है। कलकत्ता ने आम जनमानस को संघर्ष करना सिखाया है। इस प्रकार के चित्रण पुरानी चीजों को ताजा कर देते हैं। अभी वह कलकत्ता नहीं है जो धनमती के सिनेमा स्वप्न में चित्रित है। परिवर्तित कलकत्ता को नजदीक से देखना है तो आज के साहित्य को पढ़ना जरूरी है। साहित्य में चित्रित विभिन्नों पात्रों ने कलकत्ता की संवेदना एवं संघर्ष को जिस प्रकार से महसूस किया है, उसकी विस्तृत चर्चा प्रस्तुत प्रपत्र में की गई है। समय की गति के अनुरूप भौगोलिक एवं सामाजिक संरचना, व्यक्ति की सोच, रहन-सहन एवं जीवन शैली आदि सब में बदलाव हुआ है। कल का कलकत्ता आज कई दृष्टियों से अत्यंत रमणीय एवं विकसित तो जरूर हुआ किन्तु कुछ दृष्टियों से इसने अपनी कृत्रिमता, पारंपरिक ढांचे एवं मौलिकता को भी खोया है। फिर भी कल और आज का कलकत्ता, साहित्य में उसी रूप में जीवित है जैसा इसे पाया गया, देखा गया और महसूस किया गया है।

कोलकाता से विशेषकर दार्जिलिङ, तराई-डुवर्स एवं सिक्किम ने बहुत कुछ सीखा और ग्रहण किया है। साहित्य, कला और संगीत में समृद्ध कलकत्ता ने जीवन के विविध रंगों में घुलना-मिलना सिखाया है। एक प्रकार से कहें तो अनेकता में एकता के संधान की मूल अवधारणा को हमने कोलकाता से ही ग्रहण किया है। कलकत्ता महानगर कभी सोता नहीं, यह कहावत भारतीय नेपाली आख्यानों के द्वारा पुष्ट हो जाती है। कलकत्ता को जैसी सांस्कृतिक राजधानी माना जाता है, नेपाली आख्यानों में इसका चित्रण विस्तृत रूप में हुआ है। यहाँ के साहित्यिक जीवन का मुख्य आधार सांस्कृतिक आदान-प्रदान है। यहाँ की बोली जाने वाली भाषा, समाज, साहित्य एवं संस्कृति ने नेपाली साहित्य को समृद्ध करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भारतीय नेपाली कथा साहित्य में कोलकाता का प्रतिनिधित्व एवं उसकी भूमिका बहुत ही अहम है। निश्चित रूप से कोलकाता की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों को समझने के लिए भारतीय नेपाली साहित्य को एक प्रामाणिक दस्तावेज़ के रूप में देखा जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ

अधिकारी, हेमाङ्गराज, (संपा.). (2014). साठी वर्षका भाषिक चर्चा, घनश्याम नेपाल र विष्ट, 'भारतमा नेपाली भाषाको मानकीकरणमा व्याकरण परंपरा', काठमाडौः नेपाल प्रज्ञा प्रतिष्ठान.

छेत्री, समीरण. (1964). फुटेको मुरली, पं. परमानन्द शर्मा.दार्जिलिंगः चौक बजार.

--------. (1993). नीलो झिंगा, सिक्किमः गान्तोक, बीरबल सुब्बा, सिक्किम सरकार.

--------. (2007). गैरीगाउँकी चमेली, गान्तोकः देउराली, झिल्का प्रकाशन.

प्रधान, कुमार. (2010). पहिलो पहर (द्वितीय संस्करण) ललितपुरः साझा प्रकाशन.

नामदुङ् जीवन, (संकलन तथा संपादन). गाब्रियल रानाका कथाहरू, दार्जिलिंग : साझा प्रकाशन.

नेपाल, घनश्याम (संपा.). (1989). कथा सागर, इन्द्र सुन्दास, 'अनुताप', गान्तोक, जनपक्ष प्रकाशन.

'रसिक, अच्छा राई, (2005). पाँचौं संस्क. लगन, गान्तोक: जनपक्ष प्रकाशन.

राई, नुरन, ठेलमठेलभित्रकोबोध, दार्जिलिंग: श्याम प्रकाशन.

लोहागण, ध्रुव. (2001). रजनीगंधा, सोरक, दक्षिण सिक्किम: लक्ष्मी प्रकाशन.

सिंह, रूपनारायण. (1936). भ्रमर, गांतोक: जनपक्ष प्रकाशन.

सुब्बा, मणी कुमार. (2011). दिभ्रम, दार्जिलिंग: पाइका प्रकाशन.

……., (2005). चंद्रबाला, दार्जीलिङः पाइका प्रकाशन.

सुब्बा, विंद्या. (1999). अथाह, दार्जीलिङः हांगखिम परिवारको पक्षबाट.

-------- (2003). हस्पिस, दार्जीलिङः बसुधा.

-------- (संपा.). (2011). विविध आयाममा कृष्णसिंह मोक्तान, दार्जीलिङः मन्दरा स्मृति प्रतिष्ठान.

हाङ्खिम, प्रकाश. (2012). सुनपसिना. लाङ्कु: थापा पब्लिकेशन.

(परिचय : लेखिका सिक्किम विश्वविद्यालय के नेपाली विभाग में एसोशिएट प्रोफ़ेसर पद पर कार्यरत हैं। डॉ. कविता लामा की नेपाली साहित्य एवं बाल-विमर्श पर केंद्रित कई पुस्तकें प्रकाशित हैं। यह लेख मूलतः नेपाली भाषा में लिखा गया है। इस लेख के हिंदी रूपांतरण में डॉ. प्रदीप त्रिपाठी का सहयोग रहा है।)

थर्ड जेंडर के संघर्ष का प्रतिबिंब : पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा

बी आकाश राव

संपर्क : 8942846259

लैंगिक विकलांगता और उससे जुड़े सामाजिक सरोकार की समस्या को उकेरने वाला चित्रा मुद्गल का चर्चित उपन्यास 'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' थर्ड जेंडर पर आधारित एक विशिष्ट रचना है। इस उपन्यास का प्रकाशन वर्ष 2016 में हुआ। यह उपन्यास भारतीय समाज में किन्नरों की यथा स्थिति प्रस्तुत करने वाला एक जीवंत दस्तावेज है। चित्रा मुद्गल की साहित्यिक दृष्टि किन्नर जीवन की विडंबना और उनके सपनों को परखते हुए विनोद उर्फ बिन्नी उर्फ बिमली की कहानी को इस उपन्यास में गतिशीलता प्रदान करती हुई दिखती है। इस उपन्यास में मुद्गल ने विनोद के माध्यम से किन्नरों के सपने, परिवार से बिछुड़ने का दर्द, आत्मनिर्भर होने की चाह, समाज के प्रति सोच, लिंग पूजन व्यवस्था, समाज की बर्बरता आदि को बहुत ही बारीकी के साथ रेखांकित किया है। कथ्य और शिल्प की विशिष्टता के कारण इस उपन्यास को वर्ष 2018 का हिंदी का साहित्य अकादमी पुरस्कार दिया गया। प्रस्तुत उपन्यास का नायक विनोद नामक एक किन्नर है। यहाँ उसे नायक कहना इसलिए भी संगत लगता है क्योंकि भले ही वह शरीर से एक किन्नर हो लेकिन उसकी आत्मा एक पुरुष की है। यही कारण है कि यह उपन्यास अब तक थर्ड जेंडर पर लिखे बाकी उपन्यासों की तुलना में अलग हो जाता है। "इस बात के लिए चित्रा मुद्गल की प्रशंसा की जा सकती है या जैनेन्द्रीय शैली में उन्हें गले लगाकर शाबाशी भी दी जा सकती है कि अपने उपन्यासों के लिए उन्होंने हर बार एक नई कथा-भूमि और उसके अपने विशिष्ट भूगोल की तलाश की है।"[1]

उपन्यास की कथा विनोद नामक एक किन्नर और उसकी माँ वंदना बेन शाह के बीच पत्र व्यवहार के इर्द-गिर्द चलती है। विनोद, जिसका जन्म मुंबई के एक संपन्न परिवार में हुआ। उसके घर में उसके बड़े भैया सिद्धार्थ और छोटा भाई मंजुल है, जिन्हें एक किन्नर के भाई होने के कारण ग्लानि का अनुभव होता है। अतः सामाजिक लोक-लाज के कारण विनोद के घर वालों द्वारा उसे एक किन्नर टोली को सौंप दिया जाता है। वे लोग उसे दिल्ली भेज देते हैं जहाँ उसे किन्नर समुदाय के साथ उनके डेरे पर रहना पड़ता है। यद्यपि विनोद बचपन से ही पढ़ाई-लिखाई में काफी तेज रहता है। वह अपने क्लास में प्रथम आता है बड़ा होकर वह गणित में पीएच.डी. करना चाहता है और प्रोफ़ेसर बनना चाहता है, परंतु उसके सारे सपने अधूरे रह जाते हैं। हमारे समाज में हर एक किन्नर का अपना एक अतीत होता है, जिसमें विनोद की तरह ही हर किसी के कई सपने होते हैं जो पूरे नहीं हो पाते हैं। विनोद का अपनी माँ का पता ढूंढ़ना किन्नर के अपने परिवार को

ना भूल पाने की व्यथा को दर्शाता है। माँ की चिट्ठी की प्रतीक्षा करना और माँ से पत्र व्यवहार के दौरान अपने बचपन की बातों को लिखना विनोद के पारिवारिक प्रेम को दर्शाता है। विनोद की माँ अर्थात् उसकी बा समाज से छिपकर परिवार वालों से छिपकर विनोद से पत्र व्यवहार जारी रखती है। विनोद भी यही चाहता है कि उसके घर वालों को यह बात पता न चले मगर हर पत्र में वह अपने घर वालों का कुशलक्षेम जरूर पूछता है। विनोद हिजड़ों की टोली में जरूर रहता है, मगर वह हिजड़ों द्वारा अपनाए गए नाचने-गाने के काम से घृणा करता है। वह मेहनत-मजदूरी करना चाहता है, आत्मनिर्भर होना चाहता है, इसके लिए वह अपनी पढ़ाई को भी जारी रखता है। विनोद का अस्तित्व, संबोधन के तीन स्तरों पर देखा जा सकता है। अपनी माँ के लिए वह उनका बिन्नी है, तो स्वयं के लिए विनोद और किन्नर डेरे के लिए बिमली। सामान्यत: किन्नरों में प्रायः आत्मा एक स्त्री की होती है मगर विनोद में पुरुष की आत्मा है। वह अपने आप को अंदर से एक पुरुष के रूप में स्वीकार करता है।

विनोद घरों और ट्रेनों में किन्नरों के साथ जाकर तालियां नहीं पीटता, वह तड़के सुबह उठकर गाड़ियों को धोने का काम करता है। यहाँ एक प्रकार से उसका शोषण भी होता है, क्योंकि दिन के उजाले में कोई भी किसी हिजड़े से अपनी कार साफ नहीं करवाना चाहता और बिचौलिया इसलिए उसे काम पर रखता है क्योंकि अन्य मजदूरों की तुलना में विनोद को उसे कम पैसे देने पड़ेंगे। विनोद जहाँ एक तरफ अपने अधिकारों के लिए सशक्त दिखाई पड़ता है तो वहीं अपने परिवार के लिए अति संवेदनशील भी है। विनोद का यह कथन "जरूरत है सोच बदलने की। संवेदनशील बनाने की। सोच बदलेगी तभी जब अभिभावक अपने लिंग दोषी बच्चों को कलंक मान किन्नरों के हवाले नहीं करेंगे। उन्हें घूरे में नहीं फेंकेंगे। ट्रांसजेंडर के खाते में नहीं धकेलेंगे। यह पहचान जब उन्हें किन्नरों के रूप में जीने नहीं दे रही समाज में तो सरकारी मान्यता मिल जाने के बाद जीने देगी? किन्नरों के रूप में समाज ने उन्हें उस खांचे में सदियों पूर्व ढकेलकर रखा हुआ है। उसी रूप में उन्हें आरक्षित करके सरकार अभिभावकों को अपराध मुक्त कर खुली छूट दे रही है। पैदा होते ही वह लिंग दोषी बच्चों को ट्रांसजेंडर जमात के हवाले कर दें। छुट्टी पा ले अपनी जिम्मेदारी से।"[2] विनोद का उक्त कथन एक तरफ उसके अंदर छिपे आक्रोश को दर्शाता है तो वहीं दूसरी ओर अपनी भाभी सेजल के होने वाले शिशु के प्रति चिंतित रहना उसके सघन पारिवारिक प्रेम का द्योतक है। विनोद को इस बात का सदैव भय सताता है कि कहीं गर्भावस्था में किसी गड़बड़ी के कारण शिशु उसकी तरह किन्नर ना पैदा हो जाए।

विनोद राजनीति के क्षेत्र में भी उतरता है। यहाँ लेखिका चित्रा मुद्गल ने राजनीति के उन पहलुओं को भी उजागर किया है जहाँ एक किन्नर हमारे देश की पॉलीटिकल पार्टी और राजनेताओं के लिए महज एक वोट के अतिरिक्त कुछ नहीं है। विनोद की शिक्षा के प्रति लगन और उसकी कार्यकुशलता देख दिल्ली के एक स्थानीय विधायक उसे अपने यहाँ काम पर रखते हैं और उससे कहते हैं कि वह पंजाब जाकर किन्नरों

के बीच चुनाव प्रचार करें जिससे वे चुनाव जीतकर उन्हें शिक्षा, रोजगार व अन्य क्षेत्रों में आरक्षण दिला सके। विनोद आरक्षण का कतई पक्षधर नहीं है, वह चाहता है कि किन्नरों को भी समाज में स्त्री और पुरुष का दर्जा मिले उन्हें जीरो, अदर्स या थर्ड जेंडर के कॉलम में रखकर मुख्यधारा से अलग ना किया जाए। जब विनोद चुनावी सभा में किन्नरों को संबोधित करता है तो कहता है "आप सब से भी अपील है मेरी। सभा में उपस्थित आप सबसे। स्वयं के अंतर्मन में झांकिए। भीतर दुबके हुए अपने बालपन को याद कीजिए, सुनिए, उसके भीतरके रुदन को।

बरजिए बिरादरी को। शपथ लीजिए यहां से लौटकर आप किसी लिंग दोषी नवजात बच्चे-बच्ची को, किशोर-किशोरी को, युवक-युवती को जबरन उसके माता-पिता से अलग करने का पाप नहीं करेंगे। उससे उसका घर नहीं छीनेंगे। उपहासों के लात-घूसों से उसे जलील होने की व्यवस्था नहीं सौंपेंगे। जलालत का नरक भोग कुछ नहीं सीखे आप ?

नहीं जानते। कौन लोग करते हैं आपका इस्तेमाल ?

वो जो आप को इंसान नहीं समझते। आपके जीने-मरने से उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता। अंधेरे के बावजूद आपकी मैयत को कन्धा देने नहीं पहुंचते। आंसू नहीं बहाते। रूढ़ि नियति की है। जीवित रहते धिक्कार की चप्पलों से वे आपको पीटेंगे। मरणोपरांत वे आपको अपनी ही बिरादरी से पिटवाएंगे। जिनके नवजात शिशुओं को ढूंढ-ढांढ़ नाच-गाने आशीषने पहुंचते हैं आप, उन्हीं के घर दूसरे रोज पहुंचकर देखिए? घर का दरवाजा आपके मुंह पर भेड़ दिया जाएगा।

इस अवमानना को झेलने से इनकार कीजिए। कुली बनिए। मिस्त्री बनिए। ईटा-गारा ढोइये, जो चाहे सो कीजिए, पाएंगे मेहनत के कौर की तृप्ति।"[3]

उपन्यास का एक हिस्सा किन्नरों की बेबसी को भी दिखलाता है, जहाँ विधायक जी के भतीजे बिल्लू व उसके दोस्तों द्वारा विनोद की सहेली पूनम जोशी का निर्ममतापूर्वक बलात्कार किया जाता है और अस्पताल में उसकी मृत्यु हो जाती है। यहाँ पूरे घटनाक्रम को जानते हुए भी किसी में पुलिस या प्रशासन से लोहा लेने की हिम्मत नहीं दिखती, क्योंकि उनके पास धन-बल की कमी है। "उपन्यास की संवेदना के चरम को आत्मसात् करने के लिए आवश्यक है कि उसे अंत से पढ़ा जाए। अंत यानी समाचार दो-जहां मीठी नदी में एक किन्नर की फूली हुई लाश बरामद होती है। जिसे आपसी रंजिश का मामला माना जा रहा है। इस हत्या में 'अंडरवर्ल्ड' की भूमिका की बात कही जा रही है। लाश की पहचान और हत्या के कारण अस्पष्ट दिखाए गए हैंपर पाठक के मन में पूरी तरह स्पष्ट हो उठते हैं कि यह लाश विनोद उर्फ बिन्नी की है। इसे मात्र एक साधारण घटना समझ कर छोड़ा नहीं जा सकता। यही वह मुख्य बिंदु है जहाँ से राजनीति का घृणित स्वरूप उजागर होता है।"[4]

उपन्यास का अंत सुखांत करके दुखांत किया गया है, ताकि कथानक का यथार्थ रूप सबके सम्मुख आ सके। उपन्यास के माध्यम से एक माँ का अपने किन्नर बेटे से घर वापसी की अपील करना माफीनामा और उसे अपनी जायदाद में हिस्सा देना किन्नरों के प्रति एक बड़े सामाजिक बदलाव को इंगित करता है। "एक बड़ा दिलचस्प प्रश्न लेखिका इस उपन्यास के नाम के साथ एवं विनोद की मां के द्वारा लिए गए पोस्ट बॉक्स नं. के माध्यम से भी उठाती हैं। इसके शीर्षक से ऐसा प्रतीत होता है कि किन्नरों के लिए जैसे कोई एक निश्चित ठिकाना ही नहीं है। उनका एक निश्चित पता, घर या परिवार नहीं है, बल्कि उनका कोई है ही नहीं। उनकी जिंदगी एक पोस्ट बॉक्स नं. की तरह है, जिसे देखते तो सब हैं लेकिन अपनाता कोई नहीं है। वह अपने आप में एक पूर्णपता है, लेकिन उसका कोई अता-पता नहीं है।"[5]

उपन्यास का शिल्प भी अपने कथ्य की तरह मजबूत दिखाई पड़ता है। पत्रात्मक शैली में लिखे गए इस उपन्यास में आत्मकथात्मक और पूर्वदीप्ति शैली का भी प्रयोग किया गया है, जिससे उपन्यास की कथा और भी सुसंगठित व सजीव जान पड़ती है। चूंकि, हिंदी में पत्रात्मक शैली में बहुत ही कम उपन्यास लिखे गए हैं इसलिए भी यह उपन्यास शिल्प के धरातल पर नवीन प्रतीत होता है। उपन्यास का शीर्षक 'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नालासोपारा' ही इसके शैली की विवेचना करने के लिए पर्याप्त है। पत्रात्मक शैली में लिखे गए इस उपन्यासमें कुल मिलाकर सत्रह पत्र हैं, जिसमें बिन्नी उर्फ विनोद उर्फ बिमली द्वारा ही सभी पत्र लिखे गए हैं। सभी पत्रों की शुरुआत में 'मेरी बा' लिखा होना केवल विनोद द्वारा किए गए एकतरफा पत्र व्यवहार का प्रमाण है। जिसमें विनोद अपनी माँ द्वारा लिखे गए पत्र का उत्तर लिख उन्हें भेजता है। उपन्यास की भाषा में परिनिष्ठित और सभ्य वर्ग की भाषा दिखती है, जिससे विनोद के संस्कार तथा उसकी शिक्षा का परिचय मिलता है। आम किन्नरों की तरह विनोद के पत्र में भाषा के रूप में कहीं भी अशिक्षा का पुट नहीं दिखाई देता। उपन्यास के आरंभ में डिस्क्लेमर के रूप में पात्र एवं घटनाओं को काल्पनिक कहना चित्रा मुद्गल की महज एक औपचारिकता हो सकती है। जबकि अपने कुछेक साक्षात्कार में उन्होंने यह स्वीकार किया है कि इस उपन्यास के कथा सूत्र मुझे मुंबई में अपने नाला सोपारा के प्रवास के दौरान मिले। उपन्यास की कथा गुजराती परिवार से संबद्ध होने के नाते प्रयोग के स्तर पर कथा में कुछ गुजराती शब्द मसलन- दीकरा, बा, मोटा भाई, बारसा, बेन, पगे लागूं आदि प्रमुखता से देखने को मिलते हैं। उपसंहार में समाचार- एक और दो में छपे'टाइम्स ऑफ इंडिया' में विनोद की माँ वंदना बेन का माफ़ीनामा और घर वापसी की अपील के रूप में उपन्यास का अंत लेखिका का अनूठा प्रयोग है। जहाँ पाठक के मन में समाचार-दो में दिए गए किन्नर की लाश के विषय में थोड़ी प्रश्नाकुलता पैदा हो सकती है। वस्तुतःहम कह सकते हैं कि इस उपन्यास में उठाये गए लिंगपूजक समाज, किन्नरों के आरक्षण, घर वापसी जैसे तमाम मुद्दों के बीच एक प्रश्न के रूप में अथवा एक अनसुलझे निष्कर्ष के रूप में उपन्यास का अंत करना भी पाठकों के सामने एक प्रश्न खड़ा करने जैसा है। जो पाठक वर्ग को किन्नरों की सामाजिक स्थिति के विषय में सोचने पर विवश करता है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. थर्ड जेंडर : कथा आलोचना, संपा. डॉ. एम. फ़िरोज़. खान, पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा अर्थात तीसरी सत्ता की व्यथा-कथा, मधुरेश, पृ.सं. – 93
2. पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा, चित्रा मुद्गल, पृ.सं. – 112, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017
3. वही, पृ.सं.- 186-187
4. थर्ड जेंडर के संघर्ष का यथार्थ, संपा. डॉ. शगुफ़्ता नियाज़, थर्ड जेंडर के जीवन की सामाजिक-राजनैतिक कथा पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा, डॉ.पुष्पा गुप्ता, पृ.सं. - 60
5. सामयिक सरस्वती, संपा-महेश भारद्वाज, विकलांग है असामाजिक या अपशकुन नहीं, प्रदीप कुमार, अंक-अप्रैल-सितंबर 2018, पृ.सं. – 81

(**परिचय :** लेखक ने थर्ड जेंडर पर केंद्रित उपन्यासों पर हालिया अपना शोध-कार्य संपन्न किया है, वर्तमान में सिलीगुड़ी, पश्चिम बंगाल में रहते हैं।)

'राजा हरिश्चंद्र': भारतीय सिनेमा का मंगलारंभ

डॉ. सुरभि विप्लव

संपर्क : 9404823570

भारतीय सिनेमा अपने जन्म से ही सामान्य जनमानस में निहित विचार, ईमानदारी और न्याय दर्शन से अंतर्भूत रहा है। हजारों वर्षों से लोक के अन्तर्मन में चलने वाली हरिश्चंद्र की कथा शास्त्रीय रूप में पौराणिक कथा का रूप लेकर भारतीय वांगमय में दर्ज है। महात्मा गांधी जैसा महान व्यक्तित्व भी अपने ऊपर राजा हरिश्चंद्र नाटक के प्रभाव को स्वीकार करते थे। यह कथा अनेकों कला रूपों में असंख्य तरीकों से अभिव्यक्त होती रही है। सिनेमा से पूर्व पेंटिग, नृत्य, गीत, बिरहा, नौटंकी, पारसी रंगमंच, जात्रा जैसे विविध रूपों में इस जनप्रिय कथा का प्रयोग होता रहा है। इन सभी कला परम्पराओं के बाद प्रारंभ होती है फ़िल्म कला की। कोई भी नई कला अपनी पूर्ववर्ती कलाओं से ही कथ्य और कल्पनाशीलता के गुर सीखती है। भारतीय सिनेमा के जनक 'धुंडीराज गोविंद फाल्के (1870-1944)' द्वारा निर्मित और निर्देशित पहली हिंदी फीचर फ़िल्म 'राजा हरिश्चंद्र (1913)' को भी इसी दृष्टि से देखा जाना चाहिए।

'राजा हरिश्चंद्र' पहली और पूर्ण भारतीय फ़िल्म है जिसे सार्वजनिक रूप से गिरगाँव, मुंबई स्थित तत्कालीन कोरोनेशन सिनेमा में प्रदर्शित किया गया था। यह सिर्फ फ़िल्म नहीं थी अपितु पूरे भारत वर्ष में संप्रेषण का एक नया विज्ञान, नई भाषा तथा नया व्याकरण था जिसे फाल्के गढ़ रहे थे , जिसके सूत्र आज तक गतिमान है। यह भारत कि पहली फ़िल्म इसलिए भी है कि कथा, अभिनेता, सह-कलाकार, लोकेसन तथा निर्देशक भी भारतीय थे। अब प्रश्न उठता है कि दादा साहब फ़ाल्के जो पहली फीचर फ़िल्म का प्रारम्भ पौराणिक कथा 'राजा हरिश्चंद्र' से ही क्यों किए ? किसी अन्य विषय का भी चुनाव कर सकते थे। मसलन उस समय शेक्सपीरियन थियेटर का विश्व सिनेमा में बोलबाला था। उनके नाटकों पर फ़िल्म बना सकते थे। फ्रांस, जर्मनी और ब्रिटेन की फिल्मी धारा की सफलता को बहुत ही संजीदगी से समझ-बूझ रहे थे। समस्त फिल्मी तकनीक को विदेश से लेकर आए लेकिन विचार और रूप ? सबकुछ भारतीय ! आखिर क्यों? यही है तत्कालीन भारतीय राष्ट्रवाद का नजरिया। इसके लिए भारतीय परंपरा के साथ उनके जुड़ाव और आधुनिकता के मनोविज्ञान को समझना जरूरी है, जिसके द्वंद्व ने उन्हे भारतीय सिनेमा का पितामह बना दिया। उस समय अंग्रेजी साम्राज्य की आबोहवा का विरोध भारतीय जनमानस में था लेकिन उसका प्रत्यक्ष प्रतिवाद सिनेमा में संभव नहीं था। अतः किसी पौराणिक कथा या मिथक का सहारा ही लिया जाना संभव था। हजारों वर्षों से लोक के अन्तर्मन में चलने वाली हरिश्चंद्र की कथा शास्त्रीय रूप में पौराणिक कथा का

रूप लेकर भारतीय वाङमय में दर्ज थी। नानी, दादी की कहानियों और स्कूली नाटकों में राजा-रानी के रूप में राजा हरिश्चंद्र और रानी तारामती की कथा सर्वोच्च रही है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी के बच्चे इसे ही सुनते हुए बड़े हुए थे। इसीलिए तत्कालीन दर्शकों में ईमानदारी और न्याय का भारतीय मनोविज्ञान भी एक सीमा तक हरिश्चंद्र की कथा से निर्मित हुआ था।

तत्कालीन पारसी थियेटर, नौटंकी सहित अन्य लोकरंग में भी हरिश्चंद्र की कथा की लोकप्रियता से फ़ाल्के बखूबी परिचित थे। वे भारतीय समाज को फ़िल्म के द्वारा सत्य, अहिंसा, न्याय और ईमानदारी की राह भी दिखाना चाह रहे थे। चूंकि मूक फ़िल्म की संप्रेषणीयता की सीमा को समझ रहे थे इसीलिए जनमानस की स्मृति में प्रचलित कथा के प्लाट का चुनाव भी एक बड़ी समझदारी थी, ताकि मूक भाषा के बावजूद भी दर्शक पर इस फ़िल्म की गहरी छाप पड़ सके। हरिश्चंद्र कथा के बरअक्स सत्य के मार्ग पर चलते हुए दर्शक के अवचेतन में सुषुप्त राष्ट्रवादी आग को हवा भी दी जा सके। इस तरह से इस फ़िल्म के माध्यम से प्रकारांतर से जहां अन्याय पूर्ण सत्ता का विरोध था वहीं व्यावसायिकता को भी एक साथ साधने में सफलता मिल रही थी। यही कारण था कि फ़ाल्के ने इसी फीचर फ़िल्म का चुनाव करके भारतीय सिनेमा का मंगलाचरण किया। फाल्के भारतीय भाषाओं और संस्कृतियों के विद्वान होने के साथ-साथ स्टील कैमरे की फोटोग्राफी के ज्ञाता थे। भारतीय पुरातत्व विभाग की नौकरी स्वदेशी आंदोलन के कारण छोड़ दिये थे। उनमें विशिष्ट रूप से राजनीतिक दार्शनिक और राष्ट्रवाद की समझ भी थी। वे भारतीय मूल के सौंदर्यशास्त्र से ओत-प्रोत फ़िल्म निर्माण करना चाहते थे जो पारसी, तमाशा और नौटंकी जैसे प्रदर्शनकारी कलाओं जैसा लोकप्रिय मनोरंजन तो हो ही साथ ही एक राष्ट्रीय बाज़ार का भी निर्माण भी कर सके। इसीलिए इसकी तकनीक को समझने और फ़िल्म निर्माण की कला सीखने के लिए लंदन गए। तत्कालीन 'बाइस्कोप' पत्रिका के संपादक से सलाह लिए और सिनेमा कंपनियों, स्टूडियो और फैक्ट्रियों का सघन दौरा किया। जब

वे भारत वापस आए तो पच्चीस हजार रुपए का कैमरा और फ़िल्म निर्माण संबंधी अन्य सामग्री भी साथ लाए। जिसकी परिणति थी फ़िल्म 'राजा हरिश्चंद्र'। इस फ़िल्म के प्रचार-प्रसार के लिए एक नया तरीका अपनाया जिसके विज्ञापन में लिखा गया 'सिर्फ़ तीन आने में देखिये दो मील लंबी फ़िल्म में 57 हजार चित्र।' इसे कोरेनेशन थियेटर में इसे रिलीज किया गया जिसमें पौराणिक गाथा को देख कर दर्शक वाह-वाह कर उठे। अहम बात यह है कि आगे चलकर 'राजा हरिश्चंद्र' के बाद भी दादा साहब फाल्के ने जिन फिल्मों का निर्माण किया उनमें से कई फिल्में भारतीय पौराणिक कथाओं पर ही आधारित थी, मसलन मोहिनी भस्मासुर (1913), सत्यवान सावित्री (1914), लंका दहन (1917), श्री कृष्ण जन्म (1918), और कालिया मर्दन (1919)। 03 मई, 1913 को जब फाल्के 'राजा हरिश्चंद्र' को सार्वजनिक रूप से रिलीज कर रहे थे तो उस समय विश्व सिनेमा के महान अभिनेता और फ़िल्मकार 'चार्ली चैप्लिन' अभिनय की लोक प्रिय दुनिया में अभी पाँव पसार रहे थे और 1921 तक आते-आते पहली फ़िल्म का निर्माण कर पाये।

इस फ़िल्म में भारतीय पौराणिक परंपरा को कलात्मकता के साथ प्रस्तुत किया गया। मशहूर चित्रकार 'राजा रवि वर्मा' द्वारा बनाई गयी हरिश्चंद्र उनकी पत्नी और पुत्र की पेंटिग की झांकी से ही यह फ़िल्म शुरू होती है। चूंकि यह फ़िल्म मूक थी अतः दर्शकों को समझने के लिए प्रत्येक दृश्य से पूर्व अंग्रेजी और हिन्दी में दिशा निर्देश दिया गया था।

इस प्रकार से 'राजा हरिश्चंद्र' सिर्फ़ पहली फ़िल्म ही नहीं थी बल्कि पूरे भारत में संप्रेषण के एक नए कला माध्यम का आविष्कार भी थी, जिसमें दादा साहब फाल्के विज्ञान, तकनीक, भाषा, व्याकरण और नए जीवन का सृजन कर रहे थे। इस फ़िल्म में विदेशी तकनीक को छोड़कर सब कुछ भारतीय मिट्टी में रचा-बसा था। इसी फ़िल्म से मनोरंजन के भारतीय बाजार में नए रूप (फ़िल्म) का उत्पादन प्रारम्भ हुआ था। यहीं पर फाल्के अभिनय को नई जमीन दे रहे थे। इसी जमीन पर आगे चलकर पूंजी-बाजार के खाद-पानी से अभिनेता-नायक-महानायक (Actor-Star-Mega Star) तक की यात्रा में आज भारतीय स्टार सिस्टम की अधिरचना हमारे सामने खड़ी है। फ़िल्म 'राजा हरिश्चंद्र' भारतीय सिनेमा की नींव थी जिस पर आज अनेक बहुआयामी प्रायोगिक फिल्मों का महल बनता जा रहा है। आज जब हम इस तिथि को याद करते हैं तो पाते हैं कि हमारे जीवन में सिनेमा के बिना सब कुछ अधूरा सा है शायद इसलिए कि सिनेमा में हमें हमारे जीवन का अंश दिखाई देता है। कहानियाँ हमारे जीवन के इर्द-गिर्द की होती हैं । इसीलिए आज का दिन 03 मई हमें एक उत्सव के रूप में मनाने का दिन तो है ही साथ ही हमारी सिनेमाई यात्रा के गंभीर सिंहावलोकन का भी दिन है।

(**परिचय :** लेखिका वर्तमान में महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के प्रदर्शनकारी कला विभाग में अतिथि प्राध्यापक पद पर कार्यरत हैं।)

श्रीप्रकाश मिश्र की दो कविताएं

(1)

कंचनजंघा

एक

सोने का चाँद
चाँदी का सूरज
कंचनजंघा पर

चीजों ने अपना स्थान बदल दिया है
कंचनजंघा पर
वहाँ कपड़े पहनना विवस्त्र होना है

इसे इस तरह भी कह सकते हैं कि
वहाँ विवस्त्र होना कपड़े पहनना हो गया है
जिसके पार
आँखों से नहीं
आँखों से पार्थिव को नहीं
नग्नता को नग्नता से देखा जाता है

उसमें सब कुछ पिघलता जाता है
चाँद, सूरज, बर्फ, चट्टान
भरता जाता है एक शून्य को
जो बनता जाता है महाशून्य

दो

कंचनजंघा
न तो कंचन है
न जंघा

मेरु है
जगत् का नहीं
तो पर्वत का

जैसे शरीर में मेरु है
पद्म सहस्रार में उठने की जगह मेरु है
औरत में धसने की जगह मेरु है
वज्र में बिजली का मेरु है

मेरु है तो
हम देखते हैं
जगत् से खालीपन गायब है

कंचनजंघा है तो
आसमान में उगता है पानी का पेड़
खिलता है आसमान का फूल

जो न पानी है
न पेड़ है
न आसमान है
न फूल

फिर भी दोनों है
एक सोची हुई अवास्तविकता
इसीलिए कंचनजंघा

कंचन भी है
और जंघा भी

(2)

गाङटाक

यह दोपहर का नम है

ठोस कोहरे की नीलिमा को
चीर कर बह रही है
दूध की नदी

नदी स्थिर है
हीरे की कनी में जब्त
रोशनी की लकीर की तरह

गति से बहुत दूर
एक हहास उभर रही है
नीली घाटी की गहराइयों से
ध्वनि गति का सूचक है

अचानक तड़कता है आकाश
बिजलियों में कौंधती है
नदी की गति

ध्वनि की गति
सूचित नहीं होती उजाले में
दब जाती है तड़क् के आगे

कौन कहता है

हहास न भी सूचित हो
दब भी जाय
बिजली की कड़क स्वयं एक ध्वनि है
सुनकर उसे उड़े जा रहे हंस
मानसरोवर के सिंधु की ओर

कोई छोर नहीं
उनके गंतव्य का
नदी की नदी का भी
हहास की गति का भी

गति विश्वव्यापी है
दोपहर के नम में

(**परिचय :** श्रीप्रकाश मिश्र चर्चित कथाकार, कवि एवं आलोचक हैं। पूर्वोत्तर भारत पर केंद्रित श्रीप्रकाश की कई महत्त्वपूर्ण कृतियाँ चर्चा के केंद्र में रही हैं। वर्तमान में श्रीप्रकाश मिश्र इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश में रहते हैं। संपर्क सूत्र : 9451142647)

बाबुषा कोहली की पाँच कविताएं

(1)

जान-ना

नीम का पेड़ नहीं जानता कि नीम है उसका नाम

न पीपल के पेड़ को पता कि वह पीपल है

यह तो आदमी है जो जानता है कि उसका नाम

बाँके बिहारीदुबे है और उसके पड़ोसी का

शेख़ रहीम।

आदमी अपने नाम के गौरव के बारे में जानता है।

और भी बहुत कुछ जानता है वह-

नामों की उत्पत्ति और नीति-वचनों के बारे में

इतिहास और न्याय के बारे में

तत्त्व-मीमांसा और वेदांत के बारे में

रामायण, हदीस और क़ुरआन के बारे में

रहीम की दूसरी जोरू और तीसरी संतान के बारे में

पर आदमी यह नहीं जानता कि रहीम के बारे में जानना;

और रहीम को जानना-

दो अलग बातें हैं।

आदमी यह भी नहीं जानता-

कि अतिरिक्त जानना एक तरह की अश्लीलता है।

आदमी केवल पेड़ों के नाम जानता है,
पेड़ों को नहीं।

(2)

जीवन के शिल्प में

कविता,

अपने सौंदर्य के लिए

थोड़ा छद्म संभव कर लेती है-

बिना हिचकिचाहट।

एक सच्चे जीवन की उपमा,

एक सच्चा जीवन ही हो सकता है।

कविता आग का फूल है ; जीवन फूल की आग।

कविता नदियों का कोरस है ; जीवन पानी का

एकल आलाप।

सरल है कविता की कठिन बनावट को अर्जित करना

जीवन की सरल बनावट कठिन है

कोई आता है अब मेरे यहाँ कविता से मिलने

कहती हूँ-

बैठो ! फूल की आँच चखो।

पानी पियो।

कविता के शिल्प की नहीं,

मुझसे जीवन के शिल्प की बात करो।

(3)

शब्दों के स्तूप में अर्थ का नख

छाती से शिशु का शव चिपकाए
बिलख-बिलख गिरती थी
धरती पर बेसुध हो
किसा गौतमी

धरती के धीरज पर धूजती
हाय हाय करती
शोक से लिथड़ाई
बावरी-सी फिरती थी
किसा गौतमी

तब किसी ग्रामीण ने कहा-
तथागत के द्वार जा !

आस का दीपक बाले
गोद में उठाये निष्प्राण देह
आकाश का पता ढूँढ़ने
पृथ्वी पर दौड़ी थी
किसा गौतमी

आँखों पर अश्रुओं का पट था
कुछ भी न दिखता

लाग के सावन की अंधी
हरे-हरे घाव वह उघाड़ती

टूटी टहनी-सी बार-बार गिरती थी

किसा गौतमी

देर तक मौन रहे मारजित

फिर बोले-

पुत्र पुनर्जीवित होगा अवश्य

एक विधि से।

क्षण भर में नाचने लगी

बिना विधि जाने ही

किसा गौतमी

(तब कौतूहल-से भरी किसी बाबुषा ने

शोक को संबोधित किया -

हे शोक !

तू कितना अस्थायी

व उथला है-

विश्व के सबसे व्यथित प्राणी के निकट भी

क्षण भर ही ठहरा है ?

हाय ! मरने को आतुर थी अविलम्ब

किस भ्रम के अधीन हो नाच रही-

किसा गौतमी ?

तब शास्ता ने सातवें शरीर में प्रवेश कर

अबोध बाबुषा की दुविधा का

अंत किया।

लौटे वहीं-

जहाँ सुख की आस में हँसती थी-

किसा गौतमी।)

पुत्र पुनर्जीवित होगा अवश्य

एक विधि से-

जा ! मुट्ठी भर सरसों लेती आ

ऐसे घर से

जहाँ कभी कोई न मरा हो

पुत्र तेरा जागेगा पुनः

किसा गौतमी !

कहते हैं,

पुत्र तो न जागा किंतु उस दिन

प्रथम बार जागी थी

किसा गौतमी

भगवान व्यथाओं के उपवन से बोध के पुष्प चुन गाथाएँ कहते हैं। अबोध बाबुषा की कविता स्तूप भर है, जहाँ उनका नख रखा है। शाक्यमुनि की अनुमति ले बाबुषा ने उनके नख से लिखा-

मृत्यु-

नींद का नीला फूल है

दुनिया भर में पाया जाने वाला-

हर आँगन उगता

ऋतुओं से निरपेक्ष वह

ऐसा प्रतीत होता कि मानो खिला अकस्मात्

देखा ही नहीं कभी बीज को

गड़ा रहा माटी की देह में

श्वास में पड़ा रहा

नींद का वह फूल कहीं भी खिले-
सुदूर या निकट
किसी भी रुत

तीखी सुगन्ध से-

आज भी जाग उठती है

किसा गौतमी

(4)

सब बरोबर है

(ऐ म्हात्रे !

मई तेरे को हिन्दीइच्च में समझाएगी-
सुन न रे !)

**

काफ़्का ने कई कमबख़्त काफ़्का पैदा किये इस धरती पर

सार्त्र ने कई स्वयंभूसार्त्र

(मैदान में कहीं पर भी खड़े होकर

अपने बायीं ओर देख, भाऊ !)

पाश से आती है पाशों की प्रलयंकारी बाढ़

महाप्राण, महादेवी और महाश्वेता की तुलना में

गुलज़ार ने बना डाले सबसे ज़्यादह गुलज़ार

(अच्छा ! तूने कभी महानाम का नाम सुना क्या ?

ओय ! अभी गूगल नई करने का !)

इसी पृथिवीलोक में;

जहाँ एक पत्ता भी दूसरे पत्ते-सा रूप नहीं धरता

अर्वाचीन हो जाती नदी पलक के झपकते ही

किताब के दो पन्नों में बदल जाती सदी

धूप का सार्वभौमिक महाकवि सूर्य

अपनी कलम से कोई दिन दोबारा नहीं लिखता

बरसातें आती हैं, आते हैं वसन्त

कोई ऋतु अपना दोहराव नहीं करती

जाने वाला हर श्वास अंतिम होता है सभी जीवों का

आने वाली वायु नवीन

उसके भी सिर पर तना रहा वह नीला कनात

जिसने सिर उठा कर ऊपर कभी देखा तक नहीं

हर एक को बराबरी से बँटने वाली वस्तुएँ भी

बराबरी से हरेक नहीं मिलती

मिट्टी पर रेंगता सबसे छोटा कीड़ा भी

आकाश की दया से वंचित नहीं-

सबसे बड़ा टुकड़ा घेरते हैं आइन्स्टाइन और हॉकिंग

नील डेग्रासटायसन से तो अभी जनता

ठीक-ठीक वाकिफ़ भी नहीं

एक-से लिबास में जकड़ दिए जाते हज़ारों बच्चे

स्कूलों में हर साल

एक-सी ज़मीन के लिए संघर्ष से इतिहास है लाल

अनुप्रासयुक्त टर्राहट की गूँज से बचते-बचाते

कुआँ फाँद भाग निकला स्वप्नदर्शी

सोता नहीं-

गुले-अशर्फ़ी, अमलतास, अबोली, बबूल

और छुई-मुई के बीज बोता रहता है

इधर के कुछ दशकों में मनस्विदों ने

रिकॉर्ड नम्बर से दर्ज कीं

नयी-नयी व्याधियाँ

जबकि कई तो स्वयं ही ट्राइका या सर्टालाइन की

अँगुली पकड़ रात के तहख़ाने में उतरते थे

**

दुनिया बोरीवली का प्लेटफ़ॉर्म है रे, म्हात्रे

पुल पर चढ़ के देख न -

यहाँ सब बरोबर है।

(5)

मानिनी का प्रणय-गीत

तब काष्ठाघातिनी ने उस कठकरेज साधक से कहा-

देह की दहकती सिगड़ी पर

देह का कच्चा कोयला डालो

मन के रिक्त पात्र में

मन का अजूठा अन्न परोसो

आत्मा की तृषा के लिए

आत्मा के कुएँ से जल खींचो

अधर रख दो कविता की नाभि पर

श्वास की नमी से शुष्क श्वास सींचो

तर्जनी डुबो लो हृदय के सरोवर में

भाल पर जल का तिलक करो

तब मान धरो ज्ञान धरो प्राण धरो

देहरी पर सारा सामान धरो

और भीतर आओ

पृथ्वी की धड़कन पर ध्यान धरो

अपने अस्तित्त्व के चहुँ ओर

कुंडलिनी-सा लपेटो गहनतमा को

जोग की जोत से जोत जला कर

अपने निकट बैठो

कामना का विष चखा है मेघ ने

देखो ! वह नीला पड़ा है

(भादो के टीले से टिका, खड़ा दूर)

और ज्वर से जूझती धरती का मुख

चन्द्रमा के चैत सा

पीला पड़ा है

वेदों से सज्जित सिर रखो वेदी पर

वंदना करो प्रकृति की

देवी का आह्वान करो

वाणी से

वचन से

व्यवहार से

विष के विपन्न को विष के वैभव से काट दो

जो इससे कम कुछ लाए हो

कुमार !

तब जाओ तुम

सब वंचितों में बाँट दो।

(**परिचय :** कवयित्री युवा पीढ़ी की सशक्त हस्ताक्षर हैं। वर्तमान में जबलपुर, म. प्र. में अध्यापन कार्य से संलग्न हैं। ईमेल- baabusha@gmail.com)

सुशीला टाकभौरे की चार कविताएं

(1)

स्त्री

एक स्त्री
जब भी कुछ कोशिश करती है

लिखने की बोलने की समझने की

सदा भयभीत सी रहती है

मानो पहरेदारी करता हुआ

कोई सिर पर सवार हो

पहरेदार

जैसे एक मजदूर औरत के लिए

ठेकेदार

या खरीदी संपत्ति के लिए

चौकीदार

वह सोचती है लिखते समय कलम को झुकाकर

बोलते समय बात को संभाल ले

और समझने के लिए

सबके दृष्टिकोण से देखे

क्योंकि वह एक स्त्री है!

(2)

सबके हित के लिए ...

वह जगह खोजो
ऐसी जगह बनाओ

जहां जाकर

कुछ देर के लिए भूल जाएँ हम

दलित उत्पीड़न को

छल-कपट के व्यवहार को

अन्याय, अत्याचार, बलात्कार

हिंसा- आगजनी की घटनाओं को।

कौन देगा भरोसा

जिंदा रहने के लिए

जिसमें विश्वास हो

कि हम भी इंसान हैं

हमें भी जीने का अधिकार है

समता, स्वतंत्रता और सम्मान का अधिकार।

कहाँ है वह जगह

जहां निर्दोष अछूतों को

शोषण से बचाया जाए

कहाँ है वह जगह

जहां सबके हित के लिए

बचा है

मानव धर्म।

(3)

तेरे अन्याय से तंग आकर

चुप रहकर, अन्याय सहकर

जलती रही नारी,

सती के नाम पर, अब तक तेरे साथ।

अब वह इस तरह

नहीं जाएगी तेरे साथ स्वर्ग

रहेगी इसी धरती पर

तेरे बिना पाएगी अधिक सुख और संतोष।

अपना जीवन अपनी पसंद से जियेगी

नहीं मिलेगी वह तुझसे

सात जन्मों की झूठी कथाओं के विरुद्ध

वह नारी मुक्ति का मार्ग अपनाएगी।

अबला पर शासन किया तुमने

उसके जीवन-मृत्यु पर अधिकार

तेरे अन्याय से तंग आकर

खोज रही है अब यह सबला

अपना अस्तित्व

अपना अधिकार।

(4)

सूरज तुम आना

सूरज,

तुम आना इस देश

अंधकार फैला है सदियों से

विषमता, धर्मांधता, अंधविश्वास है सब ओर

धधक रही है आग शोषण की

आतंक फैला रही

भेदभाव की आँच।

ये हिंसक जातिवादी

पनपने नहीं देते भाईचारा

सड़ी-गली मानसिकता के दलाल

बंजर जमीन से भी बदतर हैं इनके विचार

सूरज तुम आना

हर गाँव, हर शहर में

अपनी ऊर्जा से, ताप से

बदल देना बीमार मानसिकता

परिवर्तन के प्रकाश से।

(**परिचय :** लेखिका चर्चित कथाकार एवं कवयित्री हैं। वर्तमान में सुशीला टाकभौरे नागपुर, महाराष्ट्र में रहती हैं।

संपर्क: 9588442591)

निशांत की तीन कविताएं

(1)

कोलकाता में कलकत्ता

आँख खुली
कलकत्ता के एक उपनगर हावड़ा के
सलकिया में था मैं

फिर आँख खुली
कोई फ़िल्म चल रही थी
आँखों के पास
रास्ते के उस तरफ बहुत भीड़ थी

समय पत्थर हो गया था
चौथी क्लास में था नायक
समय से पत्थर तोड़ रहे थे पिता
शामिल थे उसमें घर भर

पत्थर से पत्थर तोड़ते हुए
कोई बंबई गया
कोई गुजरात
एक दिल्ली गया
एक कोलकाता
एक हरनाथपुर अपने गांव
(तब तक कलकत्ता, कोलकाता हो गया था)

कोलकाता में कलकत्ता ढूँढ़ता रहा नायक
इक्कीस हजार छह सौ सत्तावन दिन से
सीपीएम की सरकार ने काफी मदद की

सरकारी मदद सरकारी निकली

नंदन मेट्रो हुगली चिड़ियाखाना
चंदननगर उत्तरपाड़ा काँचरापाड़ा
कांकिनाड़ा गौरीपुर भाटपाड़ा
कालीघाट विक्टोरिया धर्मतल्ला
केसीदास रसगुल्ला मीठी दही
संदेश, आनंदबजार द टेलीग्राफ
ग्रैंड होटल सियालदह हावड़ा और
हावड़ा का पुल के बाद
थक कर रुका
पत्थर पर पीठ टिकाये
शहर नहीं बदला था
शहर वही था
इक्कीस हजार छह सौ सत्तावन दिन पहले वाला शहर

सो रहा हूँ
जब भी आँख खुलती है
पत्थर पर हाथ चला जाता है

पत्थर को सोना बनाने की कला सीखने आये थे मेरे पूर्वज
मैं पत्थर को अमृत से बदलने के लिए
उस अमृत वाले को ढूंढ़ लिया था
कल बारह बजे मिलने जाना था
सरकार बदल गई
मेरे पास समय है
पत्थर में छिपा समय
उसके पास समय को सोना बना देने की कला

हम इंतजार कर रहे हैं
अभी भी।

(2)

मैं मारा भी जाऊँ तो मुस्कुराऊँ

तुम्हें इतना प्यार करना चाहता हूँ
कि तुम हत्या भी मेरी करो
तो तुम्हें माफ़ कर दूँ

तुम मुझे गाली दो
तो फूल दूँ तुम्हें

तुम्हारे लिए
फूलों का गुलदस्ता जरूर लाऊँ
यह जानते हुए कि
तुम मुझे जलील करने आ रहे हो

राजनीति में तुम से पीछे रहूँ तो कोई गम नहीं
जीवन में तुम से आगे हो जाऊं तो दुःख हो

तुम एक बेहतर इंसान बन जाओ
मैं मारा भी जाऊँ
तो मुस्कुराऊँ।

(3)

पिता की गरिमा

घर में साइकिल थी
भैया ने अपनी कमाई से खरीदी थी

पिता जी को नहीं आती थी साइकिल
सीखे भी नहीं

अमीर तो नहीं
बस दो जून चैन से बीत जाए
इतना ही चाहते-चाहते
बीत गए पिता

साइकिल को क्यों याद कर रहा हूँ

एक बूढ़ा आदमी साइकिल चलाता है
कितना गरिमाहीन लगता है

पिता अपनी गरिमा जानते थे
वस्तुओं की भी

पिता कभी गरिमाहीन नहीं लगे।

(**परिचय :** निशांत भारतभूषण अग्रवाल पुरस्कार से सम्मानित चर्चित युवा कवि हैं। वर्तमान में काज़ी नजरुल विश्वविद्यालय, आसनसोल के हिंदी विभाग में सहायक प्रोफेसर पद पर कार्यरत हैं। संपर्क सूत्र: 825041291)

विहाग वैभव की पाँच कविताएं

(1)

बहुत मामूली सी चीजें चाही थी उन्होंने

मेरे पुरखों ने एक छत चाही थी
धूप, सर्द और बारिश से जो छुपा सके सिर
बच्चे जब थरथराते थे ठंड से
तो पिता की आत्मा कटे पतंग सी काँपती हुई गिरने लगती थी पीड़ा के महासागर में

खेत का इतना भर टुकड़ा चाहते थे वे
कि मुट्ठीभर भूख की मक़तलनुमा हवेली पर बँधुआ हुए बगैर
परिवार को ज़िंदा रखा जा सके
और न्यूनमत आत्माभिमान का सौदाकर लाये गए अन्न से
बच्चों की क्रूरतम मृत्यु को स्थगित किया जा सके

जबकि वे जानते थे मनुष्य के नंगेपन के आगे देह का नंगापन कुछ भी नहीं, फिर भी
बच्चों का, बीवी का तन ढँक जाए
कि सभ्यताएँ बची रह जाएँ नंगी होने से
इतना भर वस्त्र चाहा था मेरे पुरखों ने

कुछेक थे जिसने इन सबसे उबरकर एक देस चाहा था
कोड़ों से क़त्ल हुए बगैर जिसे वे अपना कह सकें

पर धर्म की आग पर पके अजन्मी पीढ़ियों के गर्भ-शिशु खाये शराबी की उल्टियों की तरह
तुम्हारी सभ्यता सदियों दूर से गंधाती है मुझे

मैं देखता हूँ कि वहाँ, अय्यास इतिहास के कोटरों में
अकूत अनाज सड़कर बजबजा रहा है

सड़ी सभ्यता के संग्रहालय में रखी वह जड़ीदार शेरवानी
मेरे पुरखों की हड्डियों से बनायी गयी हैं

एक भूख सदियों से मेरा पीछा करती है
एक आदिम कराह सीने में सारंगी की तरह बजती रहती है
तुम ध्यान से देखोगे तो
तुम्हें मेरी पीठ पर कोड़ों के हजार निशान मिलेंगे
माँ कहती है जन्मजात हैं ये निशान

भूख भर अन्न
धूप भर छत
प्यास भर पानी
बहुत मामूली सी चीजें चाही थी मेरे पुरखों ने
पर घृणा के मवाद का खाद पाकर लहलहाती हुई तुम्हारी सभ्यता ने उन्हें
भूख में डुबोकर मारा
पानी से बाँधकर मारा
इतिहास की छत बनवाई और छत में चुनवाकर मारा।

(2)

सभ्यता की अदालत में तटस्थता एक अपराध है

यदि आप हत्यारे के विरोध में होना नहीं चुनते
तो हत्यारे आपको अपना समर्थक मान लेते हैं

यदि आप भूखे का साथ नहीं देते
तो आप अय्यास सम्पन्नता के साथ हो जाते हैं

यदि आप मनुष्य होने के लिए नहीं होते लालायित
तो अमानुषों की सेना आपको गिन लेती है अपने में

यदि आप प्रेम को नहीं चुनते
तो घृणा आपको चुन लेती है

सभ्यता की अदालत में तटस्थता एक अपराध है

यदि आप नहीं खड़े होते स्वतंत्रता, समानता, न्याय और प्रेम के पक्ष में
तो तमाम मृत तर्कों के बावजूद
आप इनके विरोधियों में हो चुके होते हैं शामिल।

(3)

मानवद्रोहियों की जैविक संरचना के संदर्भ में

वे वीर्य से नहीं , घृणा से उपजे थे

वे मनुष्य योनि में हुए
और मनुष्यता के मवाद की तरह जीते रहे

मनुष्य को मनुष्य से अलगाते रहे
मनुष्य को मनुष्य का माँस परोसते रहे
और मनुष्यता की आत्मा चबाते रहे
ऐसा करते हुए वे पुराने करैत की तरह मुस्काते रहे

वे धार्मिक-ग्रंथों से निकले और ख़तरनाक जीवाणुओं की तरह
सभ्यता के भूगोल पर इस छोर से उस छोर तक फैल गए
इतिहास में पसर गए द्वेष के अजगर की तरह
हवा में ज़हर की तरह समा गए
पानी पर बैठ गए कुण्डली मारकर
उन्होनें कलम बनाई और उससे विधर्मियों का क़त्ल करने का काम लिया

गर आग हाथ लगी तो सबसे पहले उन्होंने दूसरों के घर घर जलाए
कपास हाथ लगा तो दुनिया का गला घोंट सकने लायक फंदा बनाया

वे मनुष्य की सबसे सुंदर चीजों का सबसे अश्लील इस्तेमाल करते रहे

वे पहाड़ पर गए तो पहाड़ों के गर्भ में बम छोड़ आये
वे नदी को छुए तो नदियाँ सूखती चली गईं
वे जंगलों में गए तो जंगल में आग लग गयी
उनका लालच इतना विशाल था कि
उसमें पूरा का पूरा ग्रह शक्कर के एक दाने सा समा सकता था

वे अभियंता हुए तो काली चमड़ियों वालों के मनुष्य की हड्डियों से पुल बनाते रहे
वे डॉक्टर हुए तो मनुष्य की सबसे तेज मृत्यु कर सकने वाली दवा तलाशते रहे
वे प्रोफ़ेसर हुए तो भाषणों से निर्लज्ज इतिहास का बदन ढँकते रहे
वे कवि हुए तो भाषा से सत्ता की नाक पोंछते रहे
वे ऋषि या साधु हुए तो देखते ही देखते बलात्कारी में बदल गए
वे मंत्री हुए तो पूरी बेहयाई से हत्यारे हो गए
वे सदी के दुर्दांत हत्यारे हुए तो प्रधानमंत्री हो गए

वे वह सब कुछ हो गए जो मानव देह के लिए विभत्स
और सभ्यता के लिए विनाश का कारण हो सकता था

वे आततायी स्वप्नयात्री थे
मेरे सपने में वे तैतीस करोड़ मुँह वाले अजगर की शक्ल में आते रहते हैं

वे आखिरी जन्म जितने नए हैं
वे पहली मृत्यु जितने पुराने हैं

वे मनुष्य योनि में हुए और मनुष्यता के मवाद की तरह जीते रहे
इसके अलावा मनुष्यों और उनमें एक ही जैविक अंतर था

मनुष्य, स्त्री और पुरुष के प्रेम-संसर्ग से उपजा था
और वे
सात समंदर जितने बिच्छुओं के डंक को निचोकर इकठ्ठा हुए
घृणा और विष-द्वेष से पैदा हुए थे।

(4)

हमारे चेहरों पर चीखों के धब्बे हैं

पिछली चौबीस रातों से मेरे स्वप्न में आने वाला
नालंदा के राजगीर पहाड़ी पर बलत्कृत स्त्री के यौनांग से रिसता खून
और छह पुरुषों के लिंग से बहता सभ्यता का वीर्य
मेरे मष्तिष्क में मवाद की तरह जम रहा है

इतिहास हत्यारों के दलाल की तरह सच छुपाने का आदी है
वह कभी नहीं कहेगा कि आशीर्वाद से और खीर खाकर गर्भवती हुईं स्त्रियाँ
वस्तुतः उन गलीज़ आत्माओं वाले महात्माओं और ऋषिओं द्वारा बलत्कृत औरतें हैं

त्रिशूलधारी त्रिपुंडमण्डित रक्तखोर इतिहास से मुझे उम्मीद भी नहीं
वह तो सदियों से नालंदा के राजगीर पर्वत पर बह रहे छः पुरुषों का वीर्य पोछने में लगा हुआ है

तो क्या राजगीर के पत्थरों पर एक बलत्कृत स्त्री और उसके असहाय प्रेमी को छोड़कर हम चाँद पर चढ़ जाएं ?
फिर इतिहास हमें हत्यारों का दलाल कहेगा !
अरे भाड़ में जाए इतिहास
भाड़ में जायें हत्यारे
और भाड़ में जाएँ उसके दलाल

सवाल एक बलत्कृत स्त्री और क्षत-विक्षत हुई सभ्यता का है
सवाल ये है कि

इसे लेकर हम किस अस्तपताल में जा सकते हैं
किस रसायन से धुल सकता है हमारे सूख चुके रक्त की शक्ल का पत्थरों पर पड़ा यह सदियों पुराना दाग
किस भाषा में, दुनिया की किस अदालत में दायर किया जा सकता है ये मुकदमा ?

अब समय आ गया है कि
सृष्टि के सभी प्राणियों , जंगलों , पर्वतों और नदियों की सामूहिक पंचायत से यह तय कर लिया जाए कि
इस दुनिया में पुरुष रहेगा कि मनुष्य

मैं चौबीस दिनों से सुन रहा हूँ कि वह लड़की
मुझे कातर आवाज लगाए जा रही है
इतिहास के चंगुलों में फँसा उसका प्रेमी
मुझे मेरे मनुष्य होने का वास्ता दे रहा है

स्वप्न और स्वप्न से बाहर
ये आवाजें दिन-रात मेरा पीछा करती हैं

इन दिनों मेरा बदन
क्रोध , हताशा , चिंता और शर्म से अक्सर थरथराने लगता है
और बारहा मैं महसूस करता हूँ कि ये आवाजें
सिर्फ चौबीस दिन से नहीं
बल्कि सदियों से मेरा पीछा कर रही हैं।

(5)

वे सारे मेरे अपने हैं

जो सभ्यता के इतिहास में अवर्णित रहे
जिनका होना, न होने से बिल्कुल भी अलग नहीं रहा

जो हवा और पानी की तरह चुपचाप अपने काम पर गए

और वापस लौटकर गुम हो गए ब्रह्माण्ड के किसी कोने में
जिनका उल्लेख भाषा में कहीं भी नहीं पाया जा सकता

इतिहास जिनके नामों के पीठ पर लदकर हम तक आता है
वे उनके सिपाही हुए
हरक्यूलिसों और अशोकों की निर्मम महानता के लिए
उनकी हवस के लिए
लड़े और बेनाम दफ़्न हो गए युद्धभूमि की कोख में
वे सारे मेरे अपने हैं
जिनकी मृत्यु का मुआवजा अदद दो आँसू की मेहरबानी के लिए तरसता रहा

इतिहास जिन्हें विराट शौर्यजीवी योद्धा कहता है
उनकी जमीन की तरफ देखिये
वे मेरे पुरखों की लाशों की ढेर पर खड़े हैं

साफ और सम्मानजनक प्यास को घाव भरे पीठ पर लादकर वे जीवन भर भटकते रहे
बैलों की तरह जुतते रहे बैलों के साथ
और बैलों से कम मजूरी मिली जिन्हें
बैलों के गोबरों से जिन्होंने रोटियाँ बनायीं

जो ताजमहल बनाए और क़त्ल हो गए
जो भूख भरी थाली को बगल खिसका
किसी पुरवासी का छप्पर उठाने के लिए दौड़ गए बेशर्त
वे सभ्यता की सड़ चुकी लाश को कंधे पर लाद गाथाओं की मुर्दहिया तक पहुँचाते रहे

वे सारे मेरे अपने हैं

वे ज्यादातर श्यामवर्णी मेहनतकश बलिष्ठ हुए
इतिहास ने उन्हें राक्षस कहा और वध किया
पहाड़ की मानिन्द जीवट और रुई की तरह मुलायम

पूँजी के अभाव में सीने में पल रहे मृत्यु को छिपा ले गए
और पीढ़ी की पहली स्कूल जाती बेटी की लाल चोटी पर फिदा होकर बिफर पड़े

वे किसी की महानताओं के लिए झंडा उठाते रहे
सभा में झाड़ू लगाते रहे
पुल के लिए लोहा काटते रहे
सड़क के लिए गिट्टी तोड़ते रहे
पानी के लिए जमीन खोदते रहे

वे किसी भी वर्णन के आदि-आदि हुए

सभ्यताएं जिनके पसीने को सोखकर हरी होती रहीं
महानताएँ जिनके रक्त से ऐश्वर्य पाती रहीं
गाथाएँ जिन्हें राक्षस कहती रहीं
वे सारे के सारे मेरे अपने हैं।

(**परिचय :** हिंदी के प्रतिष्ठित सम्मान 'भारत भूषण अग्रवाल पुरस्कार' से सम्मानित युवा कवि विहाग वैभव वर्तमान में बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी के हिंदी विभाग में शोधरत हैं। संपर्क : 8858356891)

अमर बानियाँ 'लोहोरो' की चार कविताएं

अनुवादक : सुवास दीपक
संपर्क : 9832036893

(1)

(??????)

रास्ते में मिलते
अक्सर नमस्कार करता
महाआस्था के हजूर को
आजकल वहाँ पहुँचते
चुपचाप हाथ हिलाता हूँ
केवल उसके कुत्ते को।

(2)

नियति

न गर्मी में शीतलता
न सर्दी में तपिश
न लज्जा में वस्त्र
न देती है 'भूख में भात'
सरकारी महकमें में बाधा बन जाती है
'हमारी जाति।'

(3)

निष्कर्ष

न पद है
न पैसा
न शिक्षा

न प्रतिष्ठा !
इसीलिए
अवहेलना ही अवहेलना।

(4)

अमानवता के घोर प्रतिवाद में मौन कविता

. . . . . .

. . . . . .

. . . . . .

. . . . . .

. . . . . .

. . . . . .

. . . . . .

. . . . . .

. . . . . .

(**परिचय :** अमर बानियाँ 'लोहोरो' सिक्किम के नेपाली-हिंदी कवि हैं। 'लोहारो' की कविताएं मूलतः नेपाली भाषा में रचित हैं। (संपर्क सूत्र : 8159949036) इसका अनुवाद सुवास दीपक द्वारा किया गया है। सुवास दीपक सिक्किम के प्रथम हिंदी कथाकार, अनुवादक एवं पत्रकार हैं।)

पंकज गोबिंद मेधी की तीन कविताएं

अनुवादक : दिनकर कुमार
संपर्क : 9435103755

(1)

मेरा देश

शुभ्र बर्फ फेनिल लहर
मरुभूमि की हवा का मिट्टी के केनवस पर उकेरी गई मृण्मय पुत्तलिका

विजय की हर्षध्वनि में हरे अरण्य सफ़ेद बादल
यशस्या की छुअन के साथ क्षितिज पर गुलाबी पीली रोशनी

मेरा देश

सभ्यता की नारी के सफ़ेद वस्त्र की तरह नदी की धारा
सांस्कृतिक युवती की तरह उन्नत पर्वत का दमकता शिखर

पंछियों का कलरव पतंगे की सीटी वर्णमय जाति जनजाति के नृत्य
बिजली की कौंध बारिश का वस्त्र अनेकता के वाद्य के बीच एकता का छंद

मेरा देश

अग्नि वायु ईशान नैऋत भारतीयत्व में सराबोर ज्ञान की दीप्ति
दीपक की शिखा धूप का धुआं अध्ययन पिपासार्त तपस्या की व्याप्ति

पत्थर से पत्थर चीरकर पार कर आया है शस्य युग
वन के जीवों को अपना बनाकर घर के पालतू को संग रखकर

कई अभ्यागत आए हैं लिखी है टिप्पणी
कई हमलावर आए हैं सीने में घुसेड़ा है धारदार अस्त्र
कोई विजित कोई विजेता
आक्षेप हुंकार प्रजा हाहाकार भुलाकर की है मित्रता

मेरा देश

राजा आए चले गए
गणतंत्र आया ठहर गया

रूखा सूखा पानी झोल दास दासी
धन धनवंतरी ज्ञानी अनपढ़ कमजोर बाहुबली देश को कहते हैं मां

सुनहरे सरसों के खेत के ऊपर से उड़कर गया है भौंरे की तरह विमान
पल-पल का संदेशा लेकर आई है स्वदेश स्वजाति की ख़बर
झोला भरने के लिए साथ लाया है स्वर्ण धागा बुनने वाला रौद्र चरखा

मेरा देश

रोशन उदय भूलकर उपांत अयनांत
बदन ढक बदन सिकोड़ आहार निराहार में गुजरते निद्रामग्न निद्राहीन
देश की जनता गुण गाती है देश की तरफ से देश के अधीन

पानी के नीचे कांटे की राह पर दीमक की मिट्टी दूषित वायु
देश की जनता ठीक ही पहचानती है
देश दूष्य नहीं शासक मंद

मेरा देश

पेड़ काटने वाले काट रहे रोपने वाले रोप रहे ज्यादा
खाने वाले खा रहे नहीं खाने वाले देख रहे करने वाले कर रहे ज्यादा
पाने वाले पा रहे नहीं पाने वाले गिन रहे बांटने वाले बांट रहे ज्यादा
भिन्न वैषम्य प्रभेद मिटाने के लिए देश की भक्ति करो खुद से ज्यादा

उग्र की बेताबी संत्रास की लीला रोकने के लिए वध करो शोषण का
हत्या करो मेधाहीनता की फरेबी प्रवृत्ति का

युवक की बांह में अंकित कर दो कर्म उद्यम की पेशी
सीने में साहस चेहरे पर सफलता की मुस्कान

तुम्हारा मतलब देश नहीं देश मतलब हम
अपनी तोंद ऊंची करने के लिए क्यों सताते हो देश को
कौन तुम उन्मादित नर्तक परिचित घातक

देश मतलब गणतंत्र सबसे ऊपर सच
शासक आए चले गए
गणतंत्र आया ठहर गया

मेरा देश

(2)

जलियाँवाला बाग

अपने लहू को देश को किया है तत्पर
देश के लिए हमारा जीवन सरल से भी सरल

तुम लोगों ने भूलकर
हमारे लहू से रंगा है अपने हाथों को
लिखा है जलियांवाला बाग नाम वहां

हमारे जमे हुए लहू से ऊंगली पोछते हो
आंखों में लहू की कालिमा से उकेरी है आंखें
होठों पर पोता है हमारे लहू का चालीसा

नदी बहती है रोकी नहीं जा सकती
हमारी देह की शिरा उपशिरा देश की नदी

कई हमलावर आए गए
तुम लोग भी आए गए

हमारे लहू में रोपकर देशभक्ति का शौर्य
साबित किया भारतवर्ष सभ्यता का सूर्य

विश्व जीतने के लिए हमारा लहू अमोघ अस्त्र
हमारे लहू से देश को किया है तत्पर

(3)

वंदे मातरम

तुम्हारी वंदना करता हूं
हमारे घाम रक्त प्रवाह की अर्चना से

पुष्प शस्य से तुम्हारी वंदना करता हूं
तुम सजल श्यामल रंग से आहार के आधार

सरंजाम वासस्थान से तुम्हें पूजता हूं
तुम आश्रय निर्माण के समस्त संबल

रति आरती से तुम्हें निवेदित करता हूं

जन गण मन

तुम्हारी वंदना करता हूं
वंदे मातरम

तुमने हमें दिया है अलंघ्य साहस मृतिक भित्ति
पिपासा में दी है तरंगित लहर की विशाल उदारता
शुभ्र हिम ऊष्म भूरे कालीन पर
सख़्त कदम बढ़ाना सिखाया है
तपस्या की गुफा में दी है ज्ञान की वारिधि
संस्कृति की दीप्त कौशल से सभ्यता को सजाकर
हमें भारतीय होने के गौरव से मंडित किया है

तुम्हें देने के लिए इस लाचार के पास और कुछ नहीं

दिल से तुम्हारी वंदना करता हूं
वंदे मातरम

(परिचय : पंकज गोबिंद मेधी की कविताएं मूलतः असमिया भाषा की हैं, इसका हिंदी अनुवाद दिनकर कुमार द्वारा किया गया है। दिनकर कुमार असम के चर्चित असमिया-हिंदी अनुवादक एवं कवि हैं। वर्तमान में यह गुवाहाटी, असम में रहते हैं।)

खासी लोक कथाओं में नारी शोषण

मूल : प्रो. स्ट्रीम्लेट ड्खार
अनुवाद : डॉ. जीन एस. ड्खार
संपर्क : jean.dkhar@rediffmail.com

अतीत को जानने के लिए इतिहास के पन्ने पलटना काफी नहीं हैं। सब कुछ दर्ज़ नहीं है इन पन्नों पर, स्त्रियाँ तो बिल्कुल भी नहीं। तब तो और भी नहीं जब स्त्रियाँ आदिवासी हों, जिनका जीवन प्रकृति के मधुर कोलाहल में संगीत की स्वर लहरियों जैसा हो। किसी भी हर्फ़ में इनका कोई बयान दर्ज़ नहीं है। ऐसे में कुछ जानने के लिए जरूरी हो जाता है कि मुख्य सड़क छोड़कर पगडंडी पर निकला जाय और उन पदचिह्नों के कुछ निशान तलाशे जाएं और उस अंजान दास्तां से रू-ब-रू हुआ जा सके जो अभी तक परत-दर-परत तह कर रख दिया गया था समय के किसी तहखाने में।

भारतीय समाज में पितृसत्ता इस कदर हावी है कि स्त्रियों का समूचा जीवन पितृसत्ता के बनाए गए मानकों के इर्द-गिर्द ही घूमता रहता है। लेकिन आदिवासी स्त्रियाँ इस संरचना को तोड़ती हैं। पूर्वोत्तर भारत की स्त्रियाँ ख़ासकर खासी जनजाति की स्त्रियाँ पितृसत्ता के मानकों को नहीं मानती। ये स्त्रियाँ अपने मजबूत इरादे और कठिन परिश्रम के बल पर समाज में विशेष हैं और एक गृहणी के रूप में काफी सशक्त हैं। लेकिन खासी समुदाय और मणिपुर में प्रचलित लोक कथाओं में स्त्रियाँ उतनी सशक्त नहीं हैं जितनी सशक्त वह अभी सामाजिक आर्थिक रूप से दिखती हैं। लोक कथाएं स्त्रियों के शोषण की कहानियाँ कहती हैं।

घर की मुखिया की ज़िम्मेदारी निभाती इन स्त्रियों को वंश की उपाधि से नवाजा जाता है फिर भी समाज में उनका शोषण भी बरक़रार है। वर्तमान में ऐसी बहुत–सी लोककथाएँ प्रचलित हैं जो शोषण को व्यक्त करती हैं। मिसाल के तौर पर 'का साया नोङउम', 'का लिकाई', 'का क्मे ऊ सेर', 'का लेङमाकाव', 'का याव्नाम बाड ऊ ख्ला', 'का ड्ङेम, ऊ न्याङखेड बाड ऊ सोहमिल्लेङ' एवं 'का डेङ रितेंग मिन्नार' जैसी लोक कथाओं में स्त्री शोषण की अभिव्यक्ति को बखूबी देखा जा सकता है।

इन लोक कथाओं में स्त्री को दैहिक और मानसिक रूप से कमज़ोर बताया गया है। ये लोक कथाएं हमें यह बताती हैं स्त्रियों को किस तरह महज एक वस्तु समझा जाता रहा है। किसी की भी गल्तियों की सजा उसे ही भुगतनी पड़ती है, चाहे वह गल्ती उसके बेटे, पति, भाई ने ही क्यों न की हो। 'ऊ मानिक राइतौङ',

'का लाङबिर्खू साङ खिन्डैउ' एवं 'ऊ सेर लापालाङ' जैसी लोक कथाएं हमें यह बताती हैं कि स्त्री शोषण की दास्तां कितनी गहरी है।

'साया नोङउम' लोक कथा में एक सास द्वारा अपनी बहू को राजा महाडेम को बेच देने की कथा है। यह लोक कथा स्त्री को स्त्री की शत्रु के रूप में व्यक्त करती है। इस लोक कथा के विश्लेषण में यह जानना बेहद अहम हो जाता है वह कौन से कारण हैं, कौन-सी विवशता है जिससे एक स्त्री (सास) अपनी बहू को एक राजा को बेच देती है। *मारिङशाङ* की माँ अपनी बहू 'साया' से इतनी घृणा करती है? क्या इसलिए कि वह एक गुलाम है? क्या खासी के वैवाहिक विषय में ऊँच-नीच जैसा विभाजन होता है? वह जिस दाम में बेचीं गई है, वह कौड़ी के दाम है। क्या एक मनुष्य की कीमत कौड़ी है, वह भी केवल इसलिए कि वह एक दासी है और उसका पति घर पर अनुपस्थित था? एक और बात सोचने पर विवश करती है, वह है राजा माहाडेम का चरित्र। ये कुछ ऐसे सवाल हैं जिन्हें लोक कथाओं का विश्लेषण करने के लिए समझना जरूरी है।

स्त्री शोषण पर आधारित एक अन्य कथा 'का लिकाई' है, जिसमें यह बताया गया है कि किस तरह लिकाई नाम की एक स्त्री ने एक बच्ची जना और उसके पति का देहांत हो जाता है। वह लोहा ढोने का काम करती थी और घोर परिश्रम करती थी, एक स्त्री होने के नाते वह सोचती थी कि उसका भार थोड़ा कम होगा और संकटों से मुक्ति मिलेगी। अतः उसने पुनः विवाह करने का निश्चय किया। पुनर्विवाह के पश्चात् ही उसने पाया कि उसका वह पति न केवल आलसी था बल्कि उसकी बेटी से भी काफी घृणा करता था। वीभत्सता की चरम सीमा पर पहुँचकर उस सौतेले पिता ने उसकी बेटी की हत्या करने के उपरांत उसके मांस के टुकड़े करके उसे पकाया और लिकाई ने अनजाने में उसे खा भी लिया। इस कथा से यह विचार उत्पन्न होता है कि छोटी बच्ची का शोषण इस रूप में अमानवीय और कल्पना से परे है। विचार करने की बात यह है कि क्या बच्चों और नाबालिग़ लड़कियों का शोषण एवं उनकी हत्या प्राचीन काल से विद्यमान थी? क्या हमारा समाज प्राचीन काल से से ही स्त्री द्वेषी समाज रहा है? 'का लाङ बिर्खू साङ खिन्डेउ' लोक कथा में भी सौतेले पिता की भूमिका कुछ इसी तरह है। इन कथाओं में सौतेले पिता के क्रूर एवं अमानवीय व्यवहार को दिखाया गया है। लोक में जो कुछ भी है अच्छा एवं सुंदर है, ऐसा नहीं है।

नारी शोषण मात्र शारीरिक अथवा मानसिक अर्थ में ही नहीं होता अपितु वैचारिक रूप में भी होता है। 'ऊ सिम तिंवेङ' नामक कथा में यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार नारी की सादगी का लाभ पितृसत्ता उठाता है। इस लोक कथा में पुत्र और माँ के बीच व्यवहार को व्यक्त किया गया है। एक पुत्र अपनी माँ के प्रेम का इस प्रकार लाभ उठाता है कि अंततः वह उसका सौदा कर बैठता है, वह भी मात्र एक दिन के पहनावे के कारण। माँ जो कि अपने पुत्र से अगाध प्रेम रखती थी अपनी भावनाओं अथवा इच्छाओं का परित्याग कर अपने पुत्र के मनमानेपन के आगे घुटने टेक देती है।

डी.टी.लालू के संकलन *'का डङेम, ऊ न्याङखेड बाड ऊ सौह्मिल्लैङ'* कथा में यह बताया गया है कि कैसे भालू और *न्याङखेड* अति घनिष्ठ मित्र थे। *न्याङखेड* केवल इसलिए उससे सामीप्य स्थापित करना चाहता था क्योंकि उसके मन में पहले से ही उसके बच्चों को खा डालने का विचार था। मादा भालू के सगे-संबंधियों ने उसे न्याङखेड से मित्रता के लिए मना किया था। लेकिन भालू उनकी बातों को नजरंदाज किया। न्याङखेड की धूर्तता भरे व्यवहार ने उसे उस पर पूर्णतया विश्वास करने पर विवश कर दिया था। *न्याङखेड* ने यह विश्वास एकक दिन में हासिल नहीं किया था। इसके लिए उसने भालू के गर्भवती होने के समय वह उसके लिए खाना खोजता था और हमेशा उसके साथ-साथ रहता था। भालू जैसे ही बच्चों को जन्म दे देता है, *न्याङखेड* भालू को खाना खोजने को कहता है। चूँकि वह उस पर विश्वास करती है इसलिए वह *न्याङखेड* बात मान खाना खोजने चला जाता है। मादा भालू के भोजन की तलाश हेतु निकलने के उपरांत *न्याङखेड* उसके बच्चों का गला घोंट देता है। यह लोक कथा प्रतीकों के माध्यम से हमें यह बतलाती है कि स्त्री का शोषण विश्वासघाती मित्रों के द्वारा भी होता है।

एक लोक कथा 'राय' नामक लड़की पर आधारित है जो अपने सगे भाई के अत्याचारों की शिकार होती है। *'का डेङ रितेङ मिन्नार'* नामक कथा में *राय* और *कौङवेङ* भाई-बहन होते हैं। *कौङवेङ* बहुत क्रोधी स्वभाव का है, जबकि राय सुशील स्वभाव की सीधी-सादी परिश्रमी एवं फुर्तीली लड़की है। वह अपने माता-पिता, अपने भाई एवं पति का आदर-सम्मान करती है। एक दिन जब वह अपनी सहेलियों के साथ लकड़ी इकट्ठा करने गई थी, तो साथ में अपने भाई के लिए खाना भी लेते गई। जब वह उस स्थान पर पहुँची जहाँ उसका भाई चूहा पकड़ने के लिए मिट्टी खोद रहा था। बहन ने उसकी सहायता करने का सोचा किन्तु उसी समय वह चूहा उसके हाथ से निकल गया। क्रोध में आकर उसका भाई उस पर चिल्लाने लगा। इतना ही नहीं, उसने उसके स्तनों को काटकर घर पर जाकर उसे पकाया और घर के सभी सदस्यों को खिलाया। बेचारी *राय* वेदना और लज्जा के मारे रितेङ मिन्नार नामक एक पेड़ के नीचे जाकर बैठ गई।

उपर्युक्त कथाओं के विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि नारी का शोषण न केवल उसके पति, उसके पिता, मित्र अथवा भाई के द्वारा होता है अपितु माँ समान सास से भी उन्हें प्रताड़ना भुगतनी पड़ती है जो स्वयं स्त्री है। इन लोक कथाओं का विश्लेषण करने के उपरांत यह स्पष्ट होता है कि स्त्री के लिए शत्रु न केवल पराया व्यक्ति होता है, बल्कि अपना सगा भी शत्रु से कम नहीं होता। यह प्रताड़ना मानसिक और दैहिक रूप से कहीं अधिक है। स्त्री के विरुद्ध ऐसे दुर्व्यवहार से उसका मान-सम्मान और जीवन दाव पर लग जाता है। इस प्रकार खासी लोक कथाओं में दर्शाए गए नारी केंद्रित अत्याचार वर्तमान परिस्थियों से परे नहीं है, यह आज भी प्रासंगिक हैं।

खासी शब्दों और नामों के अर्थ :

1. का साया नोङउम – नाम विशेष
2. का लिकाई – नाम विशेष
3. का क्मे ऊ सेर – हिरण की माँ
4. का लेङमाकाव – नाम विशेष
5. का याव्नाम बाड ऊ ख्ला – याव्नाम नामक लड़की और बाघ
6. का ड्डेम, ऊ न्याङखेड बाड ऊ सोहमिल्लेङ – मादा भालू, जंगली सूअर और आंवला
7. का डेङ रितेंग मिन्नार – वृक्ष विशेष
8. ऊ मानिक राइतौङ – नाम विशेष
9. का लाङबिर्खू साङ खिन्डैउ – पक्षी विशेष
10. ऊ सेर लापालाङ– हिरण / मृगश्रृंग
11. ऊ खोन क्बेइत शापुलोइत - छोटी चिड़िया
12. खोन जिंरेइन किबा मिह् ना का डौह् बाड बाम या का डौह् - मुहावरा जिसका अर्थ है पिस्सू जो मांस से निकलकर मांस को ही काटता / खाता है
13. ऊ सिम तिंवेङ – पक्षी विशेष

(**परिचय :** यह लेख मूलतः खासी भाषा में प्रो. स्ट्रीम्लेट ड्खार द्वारा लिखा गया है जिसका हिंदी अनुवाद डॉ. जीन ड्खार ने किया है। डॉ. जीन ड्खार वर्तमान में लेडी कीन कॉलेज, शिलांग के हिंदी विभाग में सहायक प्राध्यापिका पद पर कार्यरत हैं।)

मयाङ देश की भाभी

मूल : लेशाङथेम तोन्दोन

अनुवाद : एलाङ्बम विजय लक्ष्मी

ई-मेल : velangbam@yaahoo.com

पात्र परिचय

1. अंगोजाओ : एक शराबी (शराब बेचता भी है), आयु- लगभग 65 वर्ष।
2. सनाहन्बी : अंगोजाओ की पत्नी, आयु- लगभग 60 वर्ष।
3. डॉ. नोङाल : अंगोजाओ का डॉक्टर बेटा, आयु- लगभग 30 वर्ष।
4. राधे : अंगोजाओ की बेटी, आयु- लगभग 28 वर्ष।
5. नन्दलाल : राधे का पति, (नृत्य शिक्षक), आयु- लगभग 60 वर्ष।
6. बाबातोन : डॉक्टर नोङाल का दोस्त।
7. लड़का- : डॉ. नोङाल का बेटा, आयु- 5/6 वर्ष।
8. मयाङ स्त्री : डॉ. नोङाल की पत्नी, (नोङ्गाल की सम-वयसी)।

स्थान- अंगोजाओ का सरकण्डे के छप्पर वाला घर

समय- पूर्वाह्न, लगभग 11.00 बजे।

(बरामदे के एक कोने में नन्दलाल कुर्सी पर बैठ ऊँघ रहा है। पास पड़ी मेज पर एक किताब और काले रंग का एक ग्लास रखा हुआ है। एक मोढ़ा भी पास ही रखा है। बरामदे के दूसरी ओर कौना की चटाई बिछी है, जिस पर एक मैतै पुङ और एक ढोलक सीधे रखे हुए हैं। दाएँ हाथ में एक सूटकेस और बाएँ हाथ में 5/6 साल के एक लड़के का हाथ थामे डॉ.नोङाल ड्योढ़ी पर आकर खड़ा हो जाता है। ऊँघते हुए नन्दलाल को झुक-झुककर देखता है और आश्चर्यचकित रह जाता है।)

डॉ. नोङाल : (संशय के साथ स्वगत) यह कौन है, जो यहाँ बैठा ऊँघ रहा है ! हमारे बाजी तो नहीं लग रहे। कोई बाहरी लगता है और देखो, अपने ही घर की तरह कैसे आराम फरमा रहा है ! (गुस्से में, थोड़ी ऊँची आवाज़ में) इमा, हो इमा! मैं अन्दर आऊँ या यहीं से लौट जाऊँ ! कुछ अति नहीं मच रही इस घर में ! नहीं अच्छा लग रहा कुछ भी।

सनाहन्बी –(आश्चर्य के साथ बाहर आती हुई) अरे बेटा नोङाल ! कहाँ से, बताया भी नहीं कि आ रहे हो !

डॉ. नोङाल- इमा, अभी ही तो पहुँचा हूँ। सोचा, सब को चौंका दूँ, पर मैं ही चौंक गया।

सनाहन्बी- रुको, आग उलाँघ कर आओ, बड़ा अच्छा हुआ तुम आ गए।

डॉ. नोङाल- आग मत जलाइए, मैं भीतर नहीं आ रहा हूँ। सबकी इच्छा-पूर्ति के लिए मैं यहीं से वापस चला जाऊँगा, इमा !

सनाहन्बी- ये तुम बोल क्या रहे हो !

डॉ. नोङाल- मैं जान गया हूँ, अब यह घर पहले जैसा नहीं रहा। आप लोगों को जो अच्छा लगे कीजिए। मेरा भी दूर रहना ही अच्छा है।

सनाहन्बी- आते ही जी जलाने वाली बात मत करो। अच्छा नहीं लगता। इससे अच्छा है, कपड़े वगैरह बदलो और आराम करो। मैं तुम्हारे लिए खाना तैयार करती हूँ।

डॉ. नोङाल- खाने की बात छोड़िए इमा, मेरा दिल जला जा रहा है। ये सब देखकर तो मेरा जी मिचलाने लगा है। मैं वापस चला जाता हूँ।

सनाहन्बी- इतनी हड़बड़ी में क्यों हो बेटा! कहीं शराब तो नहीं पी आया! तेरे पिताजी ही जो सुबह से धुत्त पड़े रहते हैं, वही क्या कम था! इस घर मैं एक पल रहने का मन नहीं करता। लगता है, कहीं चली जाऊँ।

डॉ. नोङाल- जानता हूँ इमा, आप क्या कर रही हैं और बाजी क्या कर रहे हैं, मैं सब जानता हूँ। आप लोग जो मर्जी कीजिए और खुश रहिए। सब अपनी-अपनी ज़िंदगी जिए, मुझे क्या !

सनाहन्बी- (स्वगत) मेरा बेटा पहले जैसा नहीं रहा। अजीब-अजीब बातें करने लगा है। जरूर किसी ने सिखा-पढ़ा दिया है।

डॉ. नोङाल- (गुस्से पर काबू पाकर) मैं भी क्या करने लगा ! आते ही बरसने लगा। मुझसे गलती हो गई इमा, मैं कुछ ज्यादा ही ताव में आ गया। लंबा वक़्त हो गया घर आए, इसलिए सिर में तूफान मचने लगा था। गलती मेरी ही है इमा!

सनाहन्बी- छोड़ो बेटा, इस घर के आचरण के कारण ही तुमने गलत समझ लिया होगा! तुम्हारा कोई दोष नहीं, मैं जानती हूँ।

डॉ. नोङाल- पर इमा, यह खुरा कौन हैं ,जो कुर्सी पर बैठे ऊँघ रहे हैं !

सनाहन्बी- खुरा नहीं बेटा, ये तुम्हारे बहनोई साहब हैं। तुम्हारी बहन, राधे के पति, नन्दलाल, नृत्य के मशहूर अध्यापक हैं।

डॉ. नोङाल- क्या राधे की शादी हो गई !

सनाहन्बी- अरे, क्या यकीन नहीं आ रहा है ! तो अपनी बहन से ही पूछ ले।

डॉ. नोङाल- (व्यंग्य से हँसते हुए) केवल चार लोगों का परिवार है यहाँ। छल से सजाधजा ! मशहूर स्त्री-

पुरुषों का घर! ऐसे में कौन चकित नहीं होगा ! कोई भी ऐसा नहीं, जिस पर यकीन किया जा सके।

सनाहन्बी- (थोड़ी नाराज़गी के साथ) वैसे भी धूप बहुत चढ़ गई है। मैं ज्यादा कुछ बोलना नहीं चाहती नोङाल। मजाक मत करो, मेरा पारा वैसे ही चढ़ा हुआ है। कहीं घर पर ही कयामत न आ जाए! जो भी कहना-सुनना है, आराम से कहना। आते ही बवाल मचा रहे हो। मुहल्ले के सामने डूब मरने वाली बात है। तुम भी डॉक्टरी पास कर चुके हो। कम से कम कंचे खेलने वाले बच्चों की तरह मत करो, अच्छा नहीं लगता।

डॉ. नोङाल- आपके कहने का मतलब है कि आप और बाजी जो भी करें, मुझे मानते चले जाना चाहिए, क्यों ! क्या मैं इस घर का सदस्य नहीं हूँ, जो किसी पराए की तरह तमाशबी बन कर चुपचाप देखता रहूँ !

सनाहन्बी- मेरा बेटा बड़ा हो गया है, इसलिए बातें भी हिसाब से करना सीख गया है। हर बात सुई चुभोने वाली कर रहा है। न जाने कहाँ से गुन कर आया है! रुको नोङाल, क्या तुमने हमें पैदा किया है ! हैसियत से बढ़कर बातें न करो। बाद में तुम्हारा ही नुकसान होगा। मेरा कहना सुनो!

डॉ. नोङाल- मैं भी देख रहा हूँ माँ ! घर संभालने वाले जितने भी लोग हैं, उनमें से किसी की भी नीयत ठीक नहीं है। जो सही है, वही कह रहा हूँ। किसी के दिल में फाँस चुभती है तो मैं क्या करूँ !

सनाहन्बी- मेरा बेटा पढ़ने तो डॉक्टरी गया था, पर लगता है, राजनीति पढ़ आया है! चलो, अच्छा ही है ! क्या पता, चुनाव लड़े तो तरक्की का द्वार खुल जाए! लगता है, तुम पर तो यही काम ज्यादा जँचेगा भी।

डॉ. नोङाल- सच कह रहा हूँ इमा, इस बार मेरे दिल को बहुत ठेस लगी है। राधे को ही देख लो, माँ-बेटी बिलकुल एक जैसी हैं। यह बूढ़ा न मिलता, तो जैसे और लड़कों का अकाल ही पड़ गया था !

सनाहन्बी- (स्वगत) बेटा ज्यादा पीकर आ गया है। बेचारा, मैं भी कहाँ सिर खपाने लगी !

डॉ. नोङाल- जो सच और झूठ का अंतर नहीं समझता, वह उसे भी पागल समझ लेता है, जो पागल नहीं होता। विवेकहीनों के बीच मेरा इंसान बने रहना भी एक गलती है। बड़ा कष्ट होता है।

सनाहन्बी- गलती करने वाला मेरा अकलमंद बेटा! मैंने तुम्हें गलती करने के लिए पैदा नहीं किया। अपनी बुद्धि लोगों के इलाज में लगाओ, पंचायती करने में नहीं। मेरे साथ तो जैसा भी बर्ताव करो, कोई बात नहीं। लेकिन किसी रोगी के साथ भी पंचायती करने लगोगे, तो दवा की बोतल तुम्हारे सिर पर फोड़ देगा। संभलकर रहना, बताए देती हूँ।

डॉ. नोङाल- रोगी हो या निरोगी, अगर कोई भी स्वस्थ परंपरा और नियमों के विरुद्ध चले, तो क्या सही पाठ नहीं पढ़ाना पड़ता इमा !

सनाहन्बी- इस तरह करोगे, तो तुमसे इलाज करवाने कौन आएगा! भुनगे-मच्छर भी पास नहीं फटकेंगे। मक्खी मारते रहना पड़ेगा, समझ गए!

डॉ. नोङाल- वो तो इमा मेरे गुणों को जानने के बाद नतमस्तक ही होंगे। यह तो मैं गर्व के साथ कह सकता

हूँ।

सनाहन्बी- सही बात करूँगी तो सुनोगे नहीं। गुस्सैल इतने हो कि दुर्वाशा के ढाँचे में ढल कर निकले हो। तुम्हारे बारे में सोच-सोचकर परेशान हो रही हूँ नोङाल!

डॉ. नोङाल- सही जगह गुस्सा करता हूँ। किसी पराए पर कैसे चिल्ला सकता हूँ ! मैं भी इज्जत के साथ जीने वाला हूँ।

सनाहन्बी- तुम जैसों से बात करने से तो अच्छा है, शेरों को संभालूँ। वही ज्यादा सही रहे।

डॉ. नोङाल- मुझे आप बहुत बुरा, राक्षस की तरह समझ रही हैं इमा!

सनाहन्बी- ठीक है, आज मेरी और तुम्हारी बात साफ हो ही जाए। नहीं तो तुम मुझे आगे भी गलत ही समझते रहोगे। इतनी दुःखी होने के बाद अब उचित-अनुचित नहीं सोचूँगी। बता ही देती हूँ, सुनो, अंगोजाओ नाम का तेरा बाप नाकारा और आलसी है, यह तो तुम भी जानते हो !

डॉ. नोङाल- जानता हूँ इमा, जानता हूँ।

सनाहन्बी- वह शराब बेचता है, यह भी जानते हो !

डॉ. नोङाल- जानता हूँ। यह बात तो मुहल्ले का हर बच्चा जानता है।

सनाहन्बी- बेचता ही नहीं, शराब पीकर हंगामा भी करता है, यह भी जानते हो !

डॉ. नोङाल- कह तो दिया, सब जानता हूँ इमा! पीने से चढ़ती ही है। और चढ़ जाने पर हंगामा करेगा ही, साफ सी बात है।

सनाहन्बी- तो फिर तुम शराब बेचने वाले पियक्कड़ बाप के बेटे हो, इसे भी स्वीकार करते हो!

डॉ. नोङाल- हाँ स्वीकार करता हूँ। क्या इसे झुठलाया जा सकता है भला ! मुझे तो आप पर ज्यादा आश्चर्य हो रहा है।

सनाहन्बी- मुझ पर क्यों आश्चर्य हो रहा है !

डॉ. नोङाल- आप भी शराब बेचने वाले की बीवी, शराब बेचवा। पियक्कड़ की बीवी, पियक्कड़ी। मेरी बहन भी शराब बेचने वाले और वाली की बेटी- सेवारी। इसे झुठलाना मुमकिन नहीं, यह तो सीधी सी बात है।

सनाहन्बी- मुझे कह रहे हो, शराब बेचवा! पियक्कड़ी! ऐसा क्यों कह रहे हो! यह कुछ ज्यादा नहीं हो गया ! जो भी ऐसा बोलेगा, उसके साथ मरने-मारने को भी तैयार हूँ, जान लो।

डॉ. नोङाल- घर का मालिक शराब बेचेगा, तो मालकिन का नाम जुड़ना स्वाभाविक है। इसे आपको इतनी गम्भीरता से लेने की जरूरत नहीं है।

सनाहन्बी- ऐसा है, तो हम भी थोड़ा-थोड़ा पीना सीख लेते हैं क्यों ? सब एक साथ नशे में रहेंगे तो अच्छा ही होगा। तमाशा खड़ा हो जाएगा।

डॉ. नोङाल- पीने को नहीं कह रहा हूँ इमा, रोकने को कह रहा हूँ, क्योंकि भद्दा लगता है। आप ही देखिए,

आज मैं किसी के सामने मुँह नहीं दिखा पा रहा हूँ। इसका आपको जरा भी अफसोस नहीं है।भले ही मैं कितना ही अच्छा डॉक्टर क्यों न हो जाऊँ, मेरी इज्जत कौन करेगा! मैं बरबाद हो गया हूँ। शराबी पति-पत्नी ने मिलकर मेरे सारे रास्ते बंद कर दिए हैं। कोई उपाय नहीं रह गया। अपने बच्चों के बारे में भी नहीं सोचते। अब तो आनंद ही आनंद है, कंगाली में मरना पड़ेगा।

सनाहन्बी- समझाने–बुझाने का कोई असर ही नहीं दिखता, इसीलिए छोड़ दिया है कि जो जी में आए करे। अब केवल रस्सी से बाँधकर रखना ही रह गया है। उसे समझाना मेरे बस का नहीं है। कोई चारा नहीं है।

डॉ. नोङाल- इसीलिए इमा, मुझे ये सब दिखाई न दे, मेरा दिमाग खराब न हो, इतने सालों से मैं घर नहीं आया। घर आता तो पागल ही हो जाता। गुस्सा आता, तनातनी रहती। घर ही बिखर जाता। ऐसा न हो, इसलिए बर्दाश्त करता रहा, छुपा बैठा रहा। पाँच साल हो गए न!

सनाहन्बी- और खर्चा कहाँ से और कैसे चला रहे हो ! मेरा बेटा बड़ा सयाना हो गया है।

डॉ. नोङाल- यह आपको जानने की जरूरत नहीं है। जान भी जाओ तो कोई फर्क नहीं पड़ता। मैं भी हवा और घास तो खा नहीं सकता था, इसलिए मुझसे जैसा बन पड़ा, करता रहा। मैं जिया, जी रहा हूँ और जिऊँगा ।अस्स, उस समय कितनी भद्द सहनी पड़ी! बड़ा पछतावा होता है।

(कहते-कहते आवाज में भारीपन आ जाता है, रोने को होता है।)

सनाहन्बी- मेरा बेटा इतना नाराज़ है । यहाँ आकर इतना कुछ बर्दाश्त कर रहा है। कैसा दुर्भाग्य है मेरा!

(रुआँसी हो जाती है) तुम मुझसे नाराज़ मत हो नोङाल! डॉ. नोङाल- नाराज़ नहीं हूँ इमा। मैं किसी से भी नाराज़ नहीं हूँ। यही मेरे भाग्य में लिखा था। पर एक बात का बड़ा अफसोस है। किसी और की नहीं, छोटी बहन की जिंदगी का। पढ़ाई-लिखाई भी ठीक से नहीं की और मझधार में ही भटक गई, इसका बहुत अफसोस है।

सनाहन्बी- हाँ, वह तो बच्ची है। नादान-नासमझ है। उसे तो अभी सीधे पैर रखकर चलना भी नहीं आता। एक दिन तेरे पिताजी शराब में धुत्त थे, उस समय सही-गलत का विचार किए बिना ओजा नंदलाल को बातों में फंसाकर बेटी सौंप दी। तेरी बहन की कोई गलती नहीं है, न ही मेरी कोई गलती है।

(नंदलाल के गाल पर मच्छर ने काटा या मक्खी बैठ गई । हाथ उठाकर चट से मारा और सहलाया। गहरी नींद में करवट-सी लेकर फिर सो गया।)

डॉ. नोङाल- सफेद बाल, झुर्रियों वाला चेहरा, इस बुड्ढे के अलावा मेरी बहन के लिए कोई नहीं मिला था इस दुनिया में! अमीर दिखने वाले कितने ही जवान द्वार पर मडराते थे, उनमें से किसी को नहीं पटा पाए। आप भी चुपचाप देखती रहीं।

सनाहन्बी- सब तुम्हारे पिता की लीला है। शराब की लीला कितनी मनोरंजक हो सकती है! हमें कुछ बोलते डर लगता है। तुम्हारे पिताजी के कड़े हाथों को भली-भाँति समझती हूँ, स्वाद भी चखा है। जान गँवाने से अच्छा है चुप रहना, यही सोचकर

सहती रही हूँ इबुङो। भीतर से मैं भी तड़प रही हूँ, पर इसे कौन जान पाएगा!

डॉ. नोङाल- आप भी इमा कुछ ज्यादा ही डर रही हैं। सही काम करते हुए इतना डरने की जरूरत नहीं है। कोई मूर्ख हो तो समझाने के लिए कहना ही पड़ता है।अज्ञानी को ज्ञानवान बनाना, उसे सिखाना तो पुण्य का काम है, पुण्य का।

सनाहन्बी- बाज आई ऐसे पुण्य से, नहीं चाहिए कोई पुण्य। बेवकूफ की तरह कभी किसी कोने में पड़ी रहती हूँ, कभी खंभे की तरह कहीं खड़ी रहती हूँ। जिस दिन मरूँगी, सारे कष्टों-परेशानियों से मुक्ति मिल जाएगी।

डॉ. नोङाल-आप तो पिताजी को जानती हैं कि वे भोले हैं, नासमझ हैं, अंधेरे में चलने के आदी हैं, तो आपको रोशनी दिखानी चाहिए न! अंधेरे में चलते हुए किसी के पाखाने में या नाले में गिर जाएँ, तो आप को ही बाल्टी भर-भरकर धुलवाना पड़ेगा न! इतना तो न चाहते हुए भी करेंगी ही। अगर पिताजी किसी के बगीचे में मधुमक्खी की तरह हवा खाने निकल जाएँ और खुग्री वाली किसी रानी मधुमक्खी से सामना हो जाए और वह पिताजी के कान पर काट ले, तो आप क्या करेंगी ! सोचना तो पड़ेगा ही । इमा, समय बड़ा विकट है।

सनाहन्बी- ऐसा है, तो किसी को तनख्वा देकर उठते-बैठते तुम्हारे पिताजी की निगरानी करवानी पड़ेगी, पर इसमें भी पैसा लगेगा।

डॉ.नोङाल- आप तो पिताजी को एक बात तक नहीं कह पातीं। मुझे डाँटने के लिए जितना बोल रही हैं,उतना पिताजी को समझाने में लगातीं, तो यह घर भी तरक्की कर रहा होता, खुशहाली छाई होती। अपने घर का तो आपको कुछ भी अता-पता नहीं, सब चौपट है।

सनाहन्बी- यह स्कूल नहीं है बेटा, कि बेटा मास्टर बने और माँ छात्रा बन जाए, यह तो उल्टी बात हो गई, लोग हँसेंगे सुनकर। जैसे जबान चलाने में माहिर हो, इलाज करने में हो जाओ, तो तुम्हारा नाम फैले । मैं भी गर्व करूँ!

डॉ.नोङाल- सड़े-गले इस घर में कुछ भी करने का जी नहीं करता इमा। जैसे-तैसे जी लेने से ज्यादा कोई आशा मत रखना ।

सनाहन्बी- सोचा था, तुम आओगे तो मन को राहत मिलेगी, पर तुम तो और ज्यादा दुःखी कर रहे हो इबुङो! बात मत बढ़ाओ, बस बहुत हो गया। अब जाओ आराम करो।

डॉ.नोङाल- हुम्म! मुझे बहुत गुस्सा आ रहा है। ऊँघने वाले इस बुजुर्ग को धमका कर भगाता हूँ। पिता पर हाथ उठाना अधर्म होगा। सबका गुस्सा इस बुजुर्ग पर ही निकालता हूँ।

(कमीज ऊपर सरकाता है। आँखें निकालते हुए नथुने फुलाकर फुँकार-सी भरता है।)

सनाहन्बी- ऐसा करना गलत होगा बेटा, कोई सो रहा हो, तो ऐसा नहीं करते। अधर्म होगा। तेरी बहन को दुःख हो, ऐसा कुछ न करना। सभ्य बनकर शांति से बैठे रहो।

(मोढ़े पर बैठाती है, जैसे उसे रोक रही हो।)

डॉ.नोङाल- मुझे इसकी शक्ल बर्दाश्त नहीं हो रही है। इतनी धूप में ऊँघ रहा है। रात को चोरी करने जाता है क्या !

सनाहन्बी- कहा न चुप हो जाओ! सुन लेंगे तो अच्छा नहीं लगेगा। बेअदबी मत कर छोटे बच्चे की तरह।

डॉ.नोङाल- आपकी शह पा कर ही इतना बिगड़ गए हैं।

सनाहन्बी- शह नहीं दे रही हूँ, पर जो तुम कर रहे हो, वह भी सही नहीं है। क्या तुम्हें ऐसा करना सही लगता है! नृत्य सिखाने के कारण थक गए होंगे, इसलिए आराम कर रहे हैं। आराम करने दो, क्या हो गया!

डॉ.नोङाल- ठीक है, आज बख्श देता हूँ, नहीं तो अभी ही बता देता! बूढ़ा-खूसट जवान लड़की चाहिए। इसकी उमर के तो ईश्वर का ध्यान करने लगते हैं। (नोङाल के आवाज ऊँची करने से नन्दलाल की नींद खुल जाती है। आँखें खोलने को होता है, लेकिन फिर ऊँघने लगता है।)

सनाहन्बी- एहे ! आँखें खोलकर फिर सो गया। कितनी गहरी नींद में है, नन्दलाल ! सुन रहे हो ओजा! उठो, बहुत देर हो गई। (नन्दलाल जमुहाई की आवाज के साथ अंगड़ाई लेता है। आँखें मिचमिचाता है। नोङाल को देखकर मानो सोच रहा हो कि यह कौन होगा !)

नन्दलाल- (टेबल पर रखा काला चश्मा उठाकर जल्दी से लगाता है।) बाहर डॉक्टरी पढ़ने वाले साले साहब हैं क्या आप ! फोटो तो देख चुका हूँ।

डॉ.नोङाल- जी खुरा।

सनाहन्बी- खुरा नहीं बेटा, अपने जीजाजी को खुरा नहीं कहते। रिश्ते का सही नाम लो। (नन्दलाल से) जरा काला चश्मा उतार दो, शर्माने की जरूरत नहीं है।

नन्दलाल- (चश्मा उतारता है, कुर्सी से उठकर) तो मैं जरा.... (दण्डवत प्रणाम करने को होता है)

डॉ.नोङाल- ए! ए! बस-बस, इसकी कोई जरूरत नहीं है। अब इसका चलन नहीं रहा। ये सब पुरानी बातें हैं।

सनाहन्बी- अच्छा हुआ तुम लोग मिल लिये। बातें करो। न जाने राधे कहाँ रह गई। मैं जरा रसोई का हाल देख लूँ। (चली जाती है)

नन्दलाल- साले जी, आप बड़े गुस्से में दिख रहे हैं, क्या बात है ! इस मोढ़े में खटमल हैं , कुर्सी पर बैठना अच्छा रहेगा।

डॉ.नोङाल- किसी को ठीक करने का सोच रहा था, नहीं कर सका छोड़ना पड़ा।

नन्दलाल- किसे, मुझे बताइए, मैं ठीक कर देता हूँ। सपने में मैं भी किसी से हार गया, इसलिए दुःखी था।

डॉ.नोङाल- सब बीती बातें हो गईं। बेकार की बातें। मैं ही नाराज़गी दिखाकर शर्मिंदा हो रहा हूँ।

नन्दलाल- नाराज़ होना, मार-पीट, झगड़ा, हालत और वक़्त के हिसाब से होता है। इसमें शर्माने की क्या

बात है! मैं तो ऐसा ही सोचता हूँ। एक दिन कॉलेज के गेट पर ओजा तोम्बी ने एक छात्र को जो पीटा, तो झुण्ड में सब देख रहे थे, कोई कुछ नहीं बोला, पर एक छात्रा ने ओजा तोम्बी को खूब कोसा। सुना है उसने घर पर खाना भी छोड़ दिया।

डॉ.नोङाल-अभी पढ़ाई कर रहे हैं ! तो क्या आप जवानी में मटरगश्ती करते रहे !

नन्दलाल- पढ़ाई नहीं कर रहा हूँ। ओजा हूँ। नृत्य सिखाता हूँ, डान्स कॉलेज में।

डॉ.नोङाल- ओह ! नृत्य के ओजा हैं। घर कहाँ है! और तनख़्वा का क्या हाल है !

नन्दलाल- घर तो यहीं है, जहाँ अभी रह रहा हूँ। तनख्वा राधे को सौंप देता हूँ। इसमें कोई दखलंदाजी नहीं करता। मेरी आदत भी नहीं है।

डॉ.नोङाल- इसका मतलब घर जमाई बनकर ! पर अपना एक घर तो होना चाहिए। घर जमाई हो, सो तो हो ही। इसमें लज्जा करने जैसा कुछ नहीं। हमारे पिताजी भी माँ के यहाँ घर-जमाई बन कर रहे। उसी तरह हो गया, राम मिलाई जोड़ी। सुंदर! अतिसुंदर !

नन्दलाल- इस बारे में, मैं कुछ नहीं जानता। घर चलाने के काबिल बनूँ, बस इतना ही।

डॉ.नोङाल- जो भी हो, अपना एक असली घर तो होना चाहिए कि नहीं !

नन्दलाल- होना तो चाहिए, पर नहीं होने के बराबर है, नहीं है।

डॉ.नोङाल-अपने जन्मस्थान की बात है। घर तो कहीं भी हो सकता है।चाहे होटल में रहो, भाड़े का लो, सब घर ही घर है। बस पैसै की बात है। पैसा हो, तो रहने के लिए जगह ही जगह पड़ी है। परेशानी की कोई बात नहीं।

नन्दलाल- समझ गया। ऐसा है, बताते हुए झिझक हो रही है। नाले से उठकर आया हूँ, ऐसा भी कह सकते हो।

डॉ.नोङाल- फिर भी जान तो सकता हूँ! नाले में मछलियाँ भी रहती हैं। कमल-कुमुदिनी भी खिलते हैं। सुंदर फूल हैं ये भी।

नन्दलाल- ठीक कहा, ऐसा भी क्या हो जाएगा! मुझे पैदा करने वाले पिता असम के कछार जिले के रहने वाले थे। सगोलबंद तेरा बाजार में इमा के घर व्यापार करते हुए लम्बे अर्से तक घर जमाई बनकर रहे। व्यापार के ही सिलसिले में एक दिन अचानक होजाई के लिए निकले, फिर कभी वापस नहीं आए। कोई कहता है लापता हो गए हैं,कोई कहता है कहीं छिप गए। उस दिन से उनका कुछ अता-पता न चला। फिर समय के साथ यादें धुंधली हो गईं।

डॉ.नोङाल- रोंगटे खड़े करने वाली बात है! अचरज भरी!

नन्दलाल- कुछ सालों बाद मैं भी माँ का पिछलग्गू, गाय के बछड़े की तरह खुराइ में अच्छे स्वभाव वाले

एक बुजुर्ग का बेटा बन गया। पढ़ाई के साथ नृत्य भी सीखा। जब मैं तीस का हुआ, तो दुर्भाग्य से माँ चल बसीं। कोई कहता है, टी.बी. से, कोई कहता है, केंसर से । असली बीमारी का पता ही नहीं चला।

डॉ.नोङाल-अब तो टी.बी. जैसी बीमीरी का इलाज बहुत आसान हो गया है। अफसोस!

नन्दलाल- खुराइ वाले पिता ने उनके पास रहकर घर बसाने के लिए क्वाकैथेल की एक लड़की से शादी की बात चलाई, पर वह लड़की तो एकदम बराबर की लगती थी, इसलिए मैंने ही शादी से इंकार कर दिया।

डॉ.नोङाल- ठीक ही है। माँ जैसी लगने वाली स्त्री की ओर तो देखना भी नहीं चाहिए।

नन्दलाल- मुहूरत ही खराब हो गया। खुराइ वाले पिताजी भी नहीं रहे। अनिश्चितता की स्थिति में याइस्कुल पहुँच गया। मनुष्य प्रवृत्ति है, ऐसा कोई नहीं, जो सुन्दर को पसंद न करे। और, मेरी स्थिति ऐसी थी कि घर जमाई बनने के अलावा दूसरा कोई रास्ता नहीं था। घर जमाई बना। अमुसना नाम था उसका। गज़ब की सुन्दर थी। उसके यहाँ एक साल रहा। पर वह तो दस आँखों वाली निकली। मैं खाली हाथ लौट आया, फिर पलटकर नहीं देखा।

डॉ.नोङाल-फिर क्या हुआ ! कहानी तो बढ़िया है।

नन्दलाल- मेरा काम तो नृत्य सिखाना है। नजदीक रहना ही अच्छा है, सोचकर मोइराङखोम में एक स्त्री के यहाँ भाड़े पर रहा। वह स्त्री भी बहुत भली थी। बहुत ज्यादा चिंता करने के कारण अधिक उम्र की दिखने लगी थी। सज-सँवर कर निकलती, तो ऐसी कि उसके सामने नई बहुएँ भी पानी भरें। चंचल आँखें, जो किसी को भी रिझाने की शक्ति रखती थीं।

डॉ.नोङाल- ओजा, आपको भी रिझाया था क्या ! या केवल दूसरों को ही !

नन्दलाल- थी तो स्त्री ही। मेरी चतुराई के आगे वह कामयाब नहीं हो पाई। वह मुझसे हार गई।

डॉ.नोङाल- गुड, वेरी गुड!

नन्दलाल- मुझे एक बात बहुत बुरी लगी। वह ऐसी खराब निकली कि अपनी सुन्दर-सुन्दर तीन बेटियों में से किसी एक की भी शादी मुझसे नहीं की। ड्रामा करने वाला, नृत्य सिखाने वाला हूँ, शायद इसलिए मुझे पसंद नहीं किया। बी.ए., एम.ए. ढूँढ़ कर ब्याह दीं, मैं यूँ ही रह गया।

डॉ.नोङाल-मौके-मौके की बात है। बुरा क्या मानना!

नन्दलाल- इसी तरह कई साल निकल गए। सोच रहा था बूढ़ा हो जाऊँगा, इसी बीच न जाने कहाँ से एक हवा का झोंका आया। इस्स! यह क्या हो गया, सोच हल्ला मचाया पर इस स्थिति में पहुँच गया। बच नहीं पाया।

डॉ.नोङाल- (हँसते हुए) घर जमाई बनने का भी एक सिलसिला चलता है। एक जगह से दूसरी, दूसरी से तीसरी। एक्पीरियन्स तो काफी हो गया! इससे भी बढ़कर यह कि सब एक जैसे लोग ही टकराए!

नन्दलाल- अब तो मैंने यहाँ एक लम्बी लकीर खिंच दी है। जीना-मरना अब यहीं पर होगा। भविष्य में क्या होगा, इसे कौन बता सकता है!

डॉ.नोङाल-कोई बात न छिपाते हुए आपने खुले दिल का परिचय दिया। मुझसे जो बन पड़ेगा, सहायता करूँगा। खुशी से रहिए। अपना ही घर समझिए। घर की बढ़ती की कोशिश करते हैं।

नन्दलाल- कहानी का एक प्रसंग छूट गया है। जरा इसे भी सुन लीजिए, फिर मैं भी एकदम ही हल्का हो जाऊँगा।

डॉ.नोङाल- हाँ-हाँ, जरूर सुनाइए। अलग तरह की कहानी, मैं भी रुचि से सुन रहा हूँ।

नन्दलाल- बताया था न, मोइराङखोम वाली स्त्री, चुम्बक जैसी! उसकी सबसे छोटी बेटी, जो परी जैसी दिखती थी, एक दिन किसी पराए मर्द के साथ सिनेमा देखने चली गई। इस बात पर उसके पति परमेश्वर ने बड़ी चालाकी से घर पर छोड़ दिया। दुःख भी होता है।

डॉ.नोङाल- स्त्री अच्छे दिल की नहीं थी, भगवान सबक सिखाएगा ही। है कि नहीं!

नन्दलाल- मेरे रूस, अमेरिका, फ्राँस, जर्मन, जापान आदि हो आने के बाद तो जबर्दस्ती मेरे गले पड़ने के लिए काँटों वाला जाल बिछाने लगी, पर मुझे फँसा नहीं पाई। आगे उसका क्या हुआ, नहीं जानता।

डॉ.नोङाल- इतने देशों में आप क्या करने गए थे !

नन्दलाल- बताया था न, नृत्य के लिए, मणिपुरी नृत्य के लिए।

डॉ.नोङाल- कलाकार हो, इसलिए शरीर को संभालकर रखना ही पड़ता है। शक्ल-सूरत, रंग सब सुन्दर रखना पड़ता है। पर आपका शरीर पस्त सा लग रहा है। कोई बीमारी हो गई क्या ! इंजेक्शन या फिर गोली लेना चाहोगे ?

नन्दलाल- उम्र हो गई है, पर शरीर को कुछ नहीं हुआ है। तीन-चार घण्टे तक उछल-कूद वाला नृत्य कर दर्शकों को टकटकी बांधे बिठाए रख सकता हूँ।

डॉ.नोङाल- फिर ऐसा क्या हुआ !

नन्दलाल- घर की छत टपकती है, इसलिए नींद पूरी नहीं हो पाई।

डॉ.नोङाल- हमारे घर की छत टपकती है !

नन्दलाल- सरकण्डों की छत तो क्या, ईटों का पक्का घर भी दरक जाए, तो पानी चूता ही है। जब शुक्ल पक्ष शुरु होगा तब पता चल जाएगा। जहाँ-जहाँ सरकण्डों पर गांठें, हैं, वहाँ-वहाँ रात को असंख्य तारे टिमटिमाते हैं। इस बार बड़ों से सलाह करके टीन की छत डलवा लेंगे। (इतने में राधे हाथ नचाती हुई नृत्य की मुद्राओं के साथ मुँह से ताल के बोल बोलते हुए घर से आँगन की ओर आती है।)

राधे- ताद्रिमी-ताद्रिमी, ता-ता थैया, थैया, ताद्रि.....(नोङाल को देखकर शर्मा जाती है। नृत्य और बोल दोनों ही एक साथ थम जाते हैं। असमंजस में समझ नहीं पाती क्या करे)

नन्दलाल- शर्माओ नहीं, शर्माओ नहीं, आगे करो। शर्माओगी तो नहीं आएगा। लो फिर शुरू करो।

द्रुत ताल वाला- एड़ी उचकाओ, कंधे थोड़ा झुकाओ, पीठ सीधी रखो, काँख उठाओ- आगे करो। (मुँह से बोल बोलते हुए टेबल बजाता है।)

ग्र ग्र धेन ताधेन धिनतेन ताता

खित्त घिन धेन धिनतेन ताता

(बीच में रुककर) इसे कुछ कहो, तो सुनती नहीं है। ठीक है, छोड़ो। एक-एक चाय तो मिल सकती है राधे!

राधे- (अनसुना करते हुए) मुझे तो पता ही नहीं चला, तातोन आप कब आए! आज तो बड़ी खुशी हो रही है।

डॉ.नोङाल- इबेम्मा तुम तो नृत्य में बहुत कुशल हो गई हो। बहुत निखर भी गई हो।

राधे- (फिर अनसुना करते हुए) ये बच्चा किसका है तातोन!

नन्दलाल- लगता है बाजू वाली यमुना का बेटा है। बहुत देर से हमारी बातें सुन रहा है।

सनाहन्बी- (चाय लेकर आती है) किसके बच्चे की बात कर रहे हो !

राधे- इसकी, जो तातोन के पास खड़ा है। मयाङ का बच्चा जैसा दिख रहा है।

सनाहन्बी- यह तो बहुत देर से खड़ा है। मैंने तो इस पर ध्यान ही नहीं दिया। मैं तो सोच रही थी, नृत्य देखने आया है।

नन्दलाल- इसे कुछ खाने को दे दो राधे। मैं जरा बाजार तक हो आता हूँ। साले साहब आएँ हैं, मछली खरीद लाऊँ। (अपनी जेब टटोलता है)

सनाहन्बी- चाय पीकर जाना। बात तो खूब बढ़िया कही ।

नन्दलाल- हुम्म, पहले मछली ले आना सही रहेगा। नहीं तो खाने में देर हो जाएगी। (चलते-चलते) मृदंग-ढोलक सब संभाल लेना राधे। बच्चे न खेलें। (प्रसन्न मुद्रा में निकल जाता है।)

राधे- इमा, यह यमुना का बेटा नहीं लग रहा। इसकी आँखें तो बड़ी-बड़ी हैं। यमुना के बेटे की आँखें तो छोटी हैं।

सनाहन्बी- आँखें बड़ी हों या छोटी, तुम्हें क्या पड़ी है !

राधे- यह है किसका बच्चा है, तातोन ! पूछ रही हूँ, तो जवाब नहीं दे रहे। बात भी नहीं कर रहे। पता नहीं क्या बात है!

डॉ.नोङाल- तुझे क्या पड़ी है, रहने दे इसे यहीं।

सनाहन्बी- बच्ची पूछ रही है, तो बता क्यों नहीं देता। यह नरकट बेचने वाली माधवी का बेटा नहीं है क्या !

राधे- हाँ-हाँ इमा, उनका भी ऐसा ही एक बच्चा है।

सनाहन्बी- तो ठीक है बेटी, जरा इसे पहुँचा आ। माँ का बड़ा लाडला है।

(बच्चे की ओर मुड़कर) लल्ला, तुम माधवी के बेटे हो न ! अरे, जवाब नहीं दे रहा।

राधे –(बच्चे के नजदीक जाकर) आओ बेटा, तुम्हें छोड़ आऊँ।

डॉ.नोङाल- अपने काम से काम रखो। कोई जरूरत नहीं छोड़ कर आने की। मैं खुद पहुँचा आऊँगा।

सनाहन्बी- छोड़ आने दो, क्या है! तुम आराम करो, थके हो।

डॉ.नोङाल- बच्चे को लेने से इंकार कर देंगे।

सनाहन्बी- क्यों नहीं रखेंगे! बच्चा पैदा करके अपने पास नहीं रखेंगे, तो फेंकेंगे कहाँ !

डॉ.नोङाल- (बहुत शांत स्वर में) इमा, मुझे एक बात कहनी है। इस बच्चे को छोड़ने नहीं जाएँगे।

सनाहन्बी- वो क्यों ! इसके पिता नहीं रहे, इसलिए माँ का बड़ा दुलारा है यह। थोड़ी देर के लिए भी नहीं छोड़ती इसे।

डॉ.नोङाल- देख माँ, मैं कब से इस घर से पैसा नहीं मंगवा रहा हूँ, यह तो जानती हो न!

सनाहन्बी- हाँ जानती हूँ, तो इसमें क्या !

डॉ.नोङाल- मेरा सारा खर्चा इसकी माँ ही उठा रही है। आज उसी की वजह से मैं डॉक्टर बन पाया हूँ।

सनाहन्बी- माधवी ने! उसने क्यों ! उसकी ऐसी क्या नजदीकी है ! गज़ब के इंसान हो तुम भी!

डॉ.नोङाल- यह बच्चा बीमारी के काऱण गूँगा हो गया है। इसका इलाज करवाने के लिए ही अपने साथ लाया हूँ।

सनाहन्बी- (नाराज़गी से) घर पर रखकर इलाज नहीं हो सकता। अरे भई, तुम्हारे और माधवी के बीच चल क्या रहा है ! तुम माधवी को अपनाने वाले हो क्या ! माँ का रास्ता बनाने के लिए पहले बच्चे को ले आए ! यह नहीं हो सकता। तुम तो कुँवारे हो। सुन्दर-सुन्दर लड़कियाँ तुम से शादी करने के लिए तैयार बैठी हैं। किसी को जाने-बूझे बगैर यूँ ही ..... ऐसा नहीं हो सकता, बताए देती हूँ। राधे- इमा, कैशामपात की प्रेमिला भी पूछ रही थी, तातोन कब आ रहे हैं! हाल ही में एक फोटो भी चुरा कर ले गई है।

डॉ.नोङाल- ऐसे भी लोग हैं, जो शराब बेचने वाले के घर में रहना पसंद करते हैं।

राधे- तातोन, आप तो डॉक्टर हो। न शराब बेचते हो, न पीते हो। पिताजी, पिताजी हैं। तातोन, एक बात कहनी है, अगर आप इस बच्चे को यहाँ रख रहे हैं, तो मैं इसे नृत्य सिखाऊँगी। कितना प्यारा बच्चा है!

डॉ.नोङाल-तुम प्यार से रखोगी, तो विचार किया जा सकता है।

सनाहन्बी- छोड़ो राधे, तुम भी! कहे देती हूँ, ऐसा नहीं हो सकता। आगे तुम्हारे भी बच्चे होंगे तब क्या होगा! जो संभव न हो, उस काम में मन न लगाओ। बेकार की बातें हैं।

डॉ.नोङाल- आप दोनों शांत हो जाओ। घबराओ नहीं, यह बच्चा माधवी का नहीं है। इसकी माँ मैतै नहीं है। यहाँ रहती भी नहीं है।

सनाहन्बी- फिर इस बच्चे की माँ से तेरा क्या रिश्ता है! क्या लगती है तुम्हारी !

डॉ.नोङाल- इमा, आप भी बिलकुल नासमझ हो। दिमाग काम ही नहीं कर रहा।

राधे- इमा, तातोन का तो पता नहीं, मेरी तो भाभी लगीं। मयाङ देश की भाभी ! मैं तो पहले ही समझ गई थी।

सनाहन्बी- क्या यह सही है बेटा !

डॉ.नोङाल- सही है इमा। सौ फीसदी सही है। राधे ने परीक्षा पास कर ली है।

सनाहन्बी- (दुःखी होकर) मैं बरबाद हो गई। सब खत्म हो गया। कोन्सम की एम.ए. अब बहू नहीं बन पाएगी।

डॉ.नोङाल- ठीक है इमा, इसमें क्या हुआ! वह तो डबल एम.ए है। डॉक्टरेट होने में देर नहीं।

राधे- शक्ल-सूरत कैसी है तातोन ! गोरी है, काली है, सुन्दर है !

डॉ.नोङाल- मेरे लिए तो बहुत सुन्दर है। लम्बी-चौड़ी, गोरी, आकर्षक। जितनी सुन्दर हो सकती है, उतनी सुन्दर। तुम देखोगी, तो जानोगी।

राधे- आपकी बातें सुनकर तो तुरन्त ही मिलने का मन कर रहा है।

सनाहन्बी- क्या बात कर रही हो, शक्ल देखी इसकी। ऐसी सूरत पर कौन सुन्दर लड़की रीझेगी। हमें जलाने के लिए यूँ ही बोल रहा है।

डॉ.नोङाल- वो तो जब देखोगी, तब जान जाओगी।

सनाहन्बी- तो बात सच निकली! लोग पाँच-छः सालों में डॉक्टर बन जाते हैं और इन जनाब को पूरे आठ साल लग गए। जान गई, समझ आ गया। बेटा एक बड़े काम को अंजाम दे रहा था। उसी में थोड़ी अति हो गई।

राधे- भाभी आ कब रही हैं, तातोन !

डॉ.नोङाल- (दुःखी होकर) इसी पर तो मेरी छाती में तूफान उठने लगता है। कभी-कभी मर जाने को मन करता है। नहीं आएगी वह। कभी नहीं आएगी।(अपने बच्चे को गौर से देखता है और उसके सिर पर हाथ फेरता है।)

सनाहन्बी- क्या हुआ ! झगड़ा हो गया, अलग हो गए !

डॉ.नोङाल- आगे कुछ न कहिए इमा! मेरा दिल फटने को है। हार्ट फेल होने वाला है।

सनाहन्बी- ओ ! नहीं रही ! मेरा बेटा बेचारा! बच्चे का क्या होगा ! मेरा पोता ऐसा अभागा !

राधे- (रोने लगती है) ओह भाभी! मयाङ देश की भाभी! अनजानी भाभी! बुरा न मानना भाभी।(बच्चे के नजदीक जाकर सहलाती है।

सनाहन्बी- (पास जाकर बच्चे को बाहों में भरकर रोने लगती है) हो बहू ! मयाङ देश की बहू ! एक गूँगा पोता छोड़ गई। यह क्या किया! (बच्चा डर कर अपने पिता से सटने लगता है। घबराया सा अपने पिता का हाथ खींचते हुए उँगली से दूर इशारा करता है, जैसे चलने को कह रहा हो)

डॉ.नोङाल- (धीरे से) माँ और बहन का इस तरह रोना, यह क्या प्रेम के कारण है या मेरे सामने दिखावा कर रहे हो !

सनाहन्बी- क्या बात कर रहे हो बेटा ! बेटे-बहू को देखा न हो, मिले न हों, तो भी बिना प्यार किए कैसे रह सकते हैं ! बच्चे का सोचकर किसे अच्छा लगेगा ! (इतने में अंगोजाओ शराब के नशे में धुत्त लड़खड़ाते हुए प्रवेश करता है) देखो ! अपने पिता को देखो, कैसे शराब के नशे में डूबा है। इनको किसी के भी दुःख से कोई वास्ता नहीं है। यही होता है हर रोज। सुबह-शाम एक कर रखा है।

अंगोजाओ- (नशे की आवाज में) हाँ, क्या हुआ ! घर में रोना-चिल्लाना, किसको क्या हुआ है ! कौन मर गया है सनाहन्बी! (नोङाल को देखकर चौंकता है) ए ! सबके बीच बैठा हुआ डॉक्टर बेटा जैसा दिख रहा है।(आँखें मिचमिचाकर फिर देखता है. साफ देखने के लिए हाथों को आँखों और गालों पर फेरता है। आँखों पर हथेली से साया कर अविश्वास से देखता है।)

डॉ.नोङाल- मैं हूँ पिताजी,मैं नोङाल। आज ही आया हूँ। थोड़ी देर पहले ही।

अंगोजाओ- (लड़खड़ाती जबान में) ओह ! तुम आ गए !आ गए ! तुम घबराओ नहीं , रोओ नहीं। प्रसन्न रहो। (राधे की ओर मुड़कर) राधे, तुम माँ-बेटी एक साथ क्यों रो रही हो ! रोओ नहीं, खुश रहा करो। इस घर में खुश रहने वाले नहीं रहते। छोड़ो बेकार की बातें। लो देखो, (लड़खड़ाती ज़बान से बोल बोलते हुए खम्ब-थोइबी नृत्य करने लगता है।)

धिन ताङ-ताङ धिन ताङ-ताङ
धिनग्र धिनग्र धिन ताङ ताङ।

देखा, अच्छा लग रहा है न !

राधे- मजाक है, बेमौके का मज़ाक। बाज आए, कैसे पागलों की तरह कर रहे हैं!

सनाहन्बी- आप जरा नाचना बंद करेंगे ! क्या मुसीबत है, बेवक्त शुरू हो जाते हैं।

अंगोजाओ- क्या ! नाचना बंद करूँ, मतलब ! इससे अच्छा पैसा बरसाओ, दस के नोट,सौ के नोट।

(फिर से नाचने के लिए हाथ उठाता है।)

राधे- नाचना बंद कीजिए पिताजी! भाभी नहीं रहीं। आपने सुना नहीं !

अंगोजाओ- भाभी कहाँ से आ गई! बहू आने के लिए शादी तो हुई नहीं। तुम लोग पागल तो नहीं हो गए हो!

राधे- तातोन की पत्नी। हमारी भाभी। समझ में आया आपको पिताजी!

अंगोजाओ- ये क्या, तुम मुझे चिढ़ा रहे हो! बड़ों के साथ ऐसा मजाक मत करो तुम लोग।

सनाहन्बी- हो....! दूर वाली भाभी। मयाङ लड़की, तुम्हारे डॉक्टर बेटे की पत्नी। अब ठीक है ! ज़रा यहाँ बैठ जाइए। सिर पर पानी उड़ेल दूँ। चढ़ा हुआ दिमाग ठिकाने आ जाएगा।

डॉ.नोङाल- (माँ को धीरे से) इमा, पिताजी को साइकोसिस हो गई है। यह बहुत ज्यादा शराब पीने से होता है। इलाज करना पड़ेगा, अब क्या होगा !

अंगोजाओ- क्या खुसुर-फुसुर कर रहे हो ! नहीं चाहते हो कि मैं सुनूँ, तो लो कान बंद किए लेता हूँ। (उँगली से कान बंद करता है)

राधे- भाभी के न रहने की बात है। आपको कष्ट पहुँचाने के लिए षड्यंत्र नहीं कर रहे हैं।

अंगोजाओ- तो यह बात है ! मर गई तो मर गई। मरने वाले को कौन रोक सकता है ! इसके बदले जो जिंदा बचे हुए हैं, मिलकर सोचते हैं कि क्या किया जा सकता है, ताकि सब खुश रह सकें ।(सीधा खड़ा नहीं हुआ जा रहा। पैर लड़खड़ाते हैं, गिरने को होता है। आँखें नशे से बोझिल हैं) भाई गिरने वाला था। गिरा तो सिर फूटेगा। बेहोश हो जाऊँगा। बेहोश हो गया, तो मरना होगा। हुम्म मैं नहीं मर सकता। नहीं मरना चाहता। खुशी से जीयूँगा, स्वादिष्ट खाऊँगा। मरने वालों की चिंता करके मुझे क्या फायदा!

सनाहन्बी- बेटा अभी दुःखी है, ऐसी बात न करें आप, कष्ट होता है। देखो तो अपने पोते को, कैसी बड़ी-बड़ी आँखें हैं इसकी। इसे बिना प्यार करे कैसे रह सकता है कोई!

अंगोजाओ- (आँखें सिकोड़ कर झुक-झुक कर देखता है।) बिना शादी के पोता मिल गया! इसमें कौन अचंभा नहीं करेगा ! कहाँ है पोता हमारा, आओ बेटा, जरा मेरी पीठ खुजा दे तो! टॉफी खरीद कर दूँगा। (बच्चे के नजदीक आने की कोशिश में गिरने को होता है।) राधे- ईस्स ! शराब की कैसी बू आ रही है ! जैसे कुछ सड़ गया हो। मेरा तो जी मिचलाने लगा।

अंगोजाओ- अपना काम कर लड़की, एक्टिंग मत कर। मैं नहीं देखना चाहता।

राधे- मैं तो चली जाऊँगी। तातोन के आगे शर्म नहीं आती आपको पिताजी! लाइए तातोन बच्चा थक गया होगा। बिस्तर पर सुला देती हूँ। (बच्चे को गोद में उठाकर भीतर चली जाती है)

अंगोजाओ- मुझसे कह रही है शर्म नहीं आती... शर्माना क्यों... अपने बच्चे से शर्म! मैंने कुछ गलत तो किया नहीं, फिर क्यों शर्माना ! नहीं आती शर्म, नहीं आती। तुम्हें शर्माना है, शर्माते रहो।

सनाहन्बी- हाय रे मेरा भाग्य, मैंने मनुष्य योनि में जन्म क्यों लिया ! मुझे जल्दी से मौत आ जाए तो सब देखने से बच जाऊँगी। मरना चाहती हूँ, जीना नहीं चाहती।

डॉ.नोङाल-पिताजी ने अभी तक शराब नहीं छोड़ी क्या इमा!

सनाहन्बी- कहाँ छोड़ी है, देख तो रहे हो सब।

अंगोजाओ- बच्ची है, झूठ-मूठ यूँ ही बड़बड़ा रही है। यकीन करो, मैं बहुत सुधर गया हूँ। फिफ्टी पर्सेंट अच्छा हो गया हूँ। लगभग छोड़ देने के बराबर है।

सनाहन्बी- शर्म तो है ही नहीं। इस उम्र में भी ऐसी बेशर्मी ? केवल पीते नहीं है, बेचते भी हैं।

अंगोजाओ- (डाँटते हुए चीख पड़ता है।) चुप रहो सनाहन्बी, तुम मुझे कुछ नहीं कह सकतीं। तुम कुछ मत बोलो। मैं औरतों की बातों में नहीं आता। मैं उनमें से नहीं हूँ, जो औरतों के इशारों पर नाचते हैं। पीना चाहूँ पीयूँगा, बेचना चाहूँ बेचूँगा। इससे किसी को कुछ लेना-देना नहीं। समझ गई सनाहन्बी !

डॉ.नोङाल- पिताजी, आपको इसी तरह आवारागर्दी करनी है, तो मैं भी अपनी ही मर्जी चलाऊँगा। अब मैं कभी इस घर में नहीं लौटूँगा। कौन बरदाश्त करेगा इतना! पूरा घर खुर्दबुर्द हो गया है। अब लोग हमारे घर आते हुए हिचकते हैं। कोई आदर भी नहीं करता। इन सब के कारण मैं बहुत उलझन में हूँ। इमा, आप क्या सोचती हैं!

अंगोजाओ- सोचो-सोचो, माँ-बेटे मिलकर सोचो। मैं अकेला भी रह गया, तो भी बेकार नहीं होऊँगा। तुम्हारे विचार-विमर्श का परिणाम अच्छा आए। सही-सही हिसाब लगाओ, देखें।

डॉ.नोङाल- पिताजी, आप थोड़ी देर शांत हो जाइए। मेरा सिर चकराने लगा है। मैं माँ के साथ किसी निर्णय पर पहुँचना चाहता हूँ।

अंगोजाओ- मेरा सुनना मना है क्या, जो यहाँ से दूर हटने को कह रहे हो !

डॉ.नोङाल- ऐसी बात नहीं है पिताजी। ऐसी कोई बात नहीं है, जो मुझे छिपानी पड़े। मैं कह रहा हूँ, आप थोड़ी देर आराम कर लें। ज्यादा शोर न करें।

अंगोजाओ- तो तुम यह कह रहे हो! देखो मेरे रौंगटे खड़े हो गए। कोई आ रहा है, देखो । कोई साड़ी पहनने वाली भी साथ है। तुम से मिलने आ रहे हैं या मुझसे ! मेरा मेहमान हुआ, तो छ–सात गिलास तो जरूर बिकने वाली है। थोड़ा पैसा बन जाएगा। बड़ी खुशी हो रही है। औरतें भी पीने लगी हैं। मेरा धंधा बढ़ने वाला है।

(बाबातोन और एक स्त्री आगे-पीछे प्रवेश करते हैं)

सनाहन्बी- आओ-आओ बाबातोन, नोङाल भी अभी-अभी पहुँचा है। यह ईबोम्मा कौन है!

बाबतोन- राधे किधर है इमा !

अंगोजाओ- बेटा, तुम राधे के मित्र हो या नोङाल के दोस्त ! मुझे तो लगा था, मेरे वेंडर के ग्राहक हो। बड़ी आशा लगाए बैठा था। मेरी तो किस्मत ही खराब है, देखो।

बाबातोन- आप मुझे भूल गए पाबुङ! मैं बाबातोन हूँ। जैसे ही सुना कि नोङाल आया है मिलने के लिए खुशी से भागा चला आया। राधे को भी एक काम सौंपना था।

अंगोजाओ- (घर की ओर मुड़कर राधे को आवाज लगाता है) इबेम्मा सुन रही हो, राधे, बाबातोन आया है। ज़रा बाहर आओ। बाबतोन, तुमने शादी कब कर ली! कहाँ की रहने वाली है यह इबेम्मा। बड़ी सुन्दर है। अच्छी जोड़ी है तुम्हारी।

बाबतोन- ऐ ! मैं तो यूँ ही पाबुङ ! (नोङाल और बाबातोन ने एक-दूसरे को आँख का इशारा किया, किसी ने देखा नहीं, दोनों मुस्कराए। फिर उस स्त्री से हिंदी में बोले) ये हैं डॉक्टर के पिताजी और ये हैं डॉक्टर की माँ। नमस्ते कीजिए।

(स्त्री ने हाय़ जोड़कर नमस्ते किया और मुस्कराते हुए चारों ओर देखने लगी।)

सनाहन्बी- बाबातोन तुम भी बाहर की बहू लाए हो ! मैंने ध्यान ही नहीं दिया। नोङाल और तुम दोनों में बड़ा कम्पटीशन चल रहा है। दोनों एक से हो। दोस्ती बड़ी जम रही है।

राधे- (आते ही) तामो, आप भी आए हैं ! बड़ी खुशी हो रही है। हमारे तातोन भी अभी आए हैं।

बाबातोन- लो अपनी भाभी से थोड़ी बात-वात करो। अभी मणिपुरी ज्यादा नहीं जानती। आँखें फैलाकर हाथ नचाकर बात करो । तुम तो माहिर हो।

राधे- ठीक है तामो, मेरे कमरे में आराम कर लेंगी।(स्त्री से) आइए भाभीजी, मेरे साथ चलिए।

(दोनों मुस्कराती हुई साथ-साथ भीतर चली जाती हैं।)

बाबातोन- (नोङाल से) अच्छा तो यार, मैं भी चलता हूँ। जिस तरह संभव हो संभाल लेना। मेरा काम खत्म हो गया, मेरी छुट्टी।

डॉ.नोङाल-जल्दी आना, अभी तुमसे बात करनी है।

सनाहन्बी- अभी तो आए हो और जाने की बात कर रहे हो बाबातोन ! बहुत दिनों बाद आए हो, थोड़ी देर बैठ भी जाओ।

बाबातोन- मैं जल्दी लौटूँगा इमा। एक जरूरी काम है, इसलिए जल्दी जा रहा हूँ।

अंगोजाओ- इतनी हड़बड़ी में क्यों जा रहे हो बाबातोन! वह लड़की तो रहेगी न अभी!

बाबातोन- पाबुङ , मुझे आंत की कोई पुरानी बामारी है। उसकी दवाई लेना भूल गया हूँ।

अंगोजाओ- डॉक्टर बैठा है न यहाँ। इसके पास भी दवाइयाँ होंगी।

डॉ.नोङाल- मैं दवाई लेकर नहीं आया हूँ पिताजी। कौन सी दवाई ले रहा है, मुझे तो यह भी नहीं पता। बेहोश हो जाता है, इतना तो जानता हूँ।

बाबातोन- हो जाएगा यार। मैं खुद ही किसी दुकान से खरीद लूँगा। एक गोली निगलनी ही पड़ेगी।

सनाहन्बी- रास्ते में कहीं बेहोश न हो जाना। पत्नी साथ रहती, तो अच्छा होता।

बाबातोन- वह मेरे बारे में कुछ नहीं जानती इमा। हम एक–दूसरे की खबर नहीं रखते। अपने-अपने से ही मतलब है।

अंगोजाओ- ई! यह क्या कह रहे हो ! क्या हो गया तुम लोगों को ! दोनों का झगड़ा हो गया! नाराज है!

बाबातोन- कोई झगड़ा-वगड़ा नहीं है पाबुङ, नोङाल बेहतर जानता है।

अंगोजाओ-फिर भी उसे यूँ छोड़ जाओगे तो अच्छा नहीं लगेगा। तुम्हारे लिए कह रहे हैं, साथ ले जाओ।

सनाहन्बी- यही सही रहेगा बाबातोन, सावधान रहना ही अच्छा है।

डॉ.नोङाल- इमा जाने दीजिए उसे, रोकिए नहीं। यहाँ बेहोश हो गया, तो हम सब फँसेंगे।

सनाहन्बी- ठीक है, मान नहीं रहे हो, तो बाद में हम सब पहुँचा आएँगे।

राधे- (चाय लेकर आती है) तामो, रुकिए चाय पीकर जाइए। मैं तो समझ गई। बातें खूब अच्छी करती हैं। ओजा के आते ही नृत्य सिखाना शुरू कर देंगे। नई छात्रा मिलने पर ओजा भी खुश हो जाएँगे।

बाबातोन- मैंने तो चाय छोड़ दी है। अपनी भाभी को डबल पिला देना। (बाबातोन जल्दी से निकल जाता है। राधे भी नृत्य की एक भंगिमा बनाती हुई भीतर चली जाती है।)

अंगोजाओ- अरे! चला गया। बड़ों की बात भी नहीं सुनता बाबातोन। ठीक है जा सको तो जाकर दिखाओ। (पीठे-पीछे जाकर उसकी बाँह पकड़कर खींचता घसीटता लेकर आता है)

बाबातोन- छोड़िए पाबुङ ! मुझे छोड़ दीजिए, मत पकड़िए। मेरा सिर गर्म हो रहा है। सीना फटा जा रहा है। बेहोशी छा रही है। मुझे कुछ हो रहा है पाबुङ ! (आँखें चढ़ जाती हैं ।)

अंगोजाओ- बता रहा हूँ, जब तक अपनी पत्नी को लेकर नहीं जाओगे, जाने नहीं दूँगा।

सनाहन्बी- बात बिगड़ जाएगी। बाबातोन को जल्दी जाने दीजिए या फिर अस्पताल ले जाना सही रहेगा !

डॉ.नोङाल- पिताजी, मैं आपके पाँव पड़ता हूँ। बाबातोन को छोड़ दीजिए। स्वादिष्ट-सा एक फॉरेन लिकर आपकी खिदमत में पेश करूँगा। समुच बेहोश हो गया, तो बुरे फँसेंगे।

अँगोजाओ- नहीं बिलकुल नहीं। तेरी सिफारिश से मैं झट मान जाऊँगा, ऐसा तो बिलकुल मत सोचना। इसे दूसरों के मान का जरा भी फिकर नहीं है, इसलिए सबक सिखाकर रहूँगा।(निकट जाकर बाबातोन का गला दबाने लगता है।)

बाबातोन- यार नोङाल, मैं मर जाऊँगा। मेरी साँस रुक रही है। बचाओ मुझे। (नोङाल और सनाहन्बी दौड़कर अंगोजाओ का हाथ पकड़कर अलग करते हैं।)

सनाहन्बी- शराबियों की तो आदत होती है, उचित-अनुचित, सभ्य-असभ्य कुछ नहीं सोचते। सब लोगों के सामने बड़ी शर्म आ रही है। दूसरों के बच्चों पर भी!

अंगोजाओ- उस स्त्री को यही लेकर आया था। इसे ही लेकर जाना होगा।

डॉ.नोङाल- पिताजी, यह स्त्री बाबातोन की पत्नी नहीं, इस बच्चे की माँ है, राधे की भाभी है। माँ-पिताजी दोनों के मान का ख्याल नहीं रखा हो, ऐसा नहीं है। आप लोग मुझे प्यार करते हैं कि नहीं, यही देखना चाहता था। मुझे माफ कर दीजिए।

बाबातोन- सच पाबुङ, स्त्री का स्वामी नोङाल है।

अंगोजाओ- परीक्षा फेल ! परीक्षा फ्लॉप ! बड़ा भोला है। नादान बन कर, अनजान बने रह कर जैसे सारा काम निकाल ही लोगे। आश्चर्य है! बहू जो मर गई, उसे जिलाकर फिर ले आए ! ऐसा कौन कर सकता है ! बाबातोन भगवान हो गया फिर तो।

सनाहन्बी- अब तो पता चल गया न कि बहू है। एक पोता भी है। दूसरों को दोष देने से क्या फायदा! एक

बार तो सोचकर देखो।

अंगोजाओ- हमारे बेटे की पत्नी है, पर लाया तो यही है, इसीलिए लेकर भी इसी को जाना होगा। जहाँ भी रखना हो, जहाँ भी छोड़ आना हो, चाहे कहीं बेच आना हो, इसकी मर्जी।

बाबातोन- (हाथ जोड़कर) पाबुङ, ऐसा न कहिए। मैंने तो दोस्त होने के नाते ही मदद की थी। मैं कुछ नहीं जानता। मुझे माफ कर दीजिए।

अंगोजाओ- (व्यंग्य में हँसते हुए) तुम कुछ नहीं जानते हो! तुम सब मिलकर षड्यंत्र करके मुझे बेवकूफ बना रहे हो। इतना बड़ा धोखा ! ऐसा अनुचित व्यवहार। मैं शराब पीता हूँ। शराबी हूँ, इसलिए मेरी कोई इज्जत नहीं। इसीलिए ऐसा किया। मेरी इज्जत उतारने वाला काम।

सनाहन्बी- अब तो हमारा पोता भी है। अपना खून नहीं है, ऐसा तो नहीं कह सकते। अब तो बड़े होने का फर्ज़ पूरा करने का समय है। बहू के लिए भी मान लो कि मौत के मुँह से लौट आई है। हमारे लिए सौभाग्य ही है समझ लो। बच्चे डर से, नादानी में, भोलेपन में ऐसा कर बैठते हैं। इसे इतनी गंभीरता से लेने की क्या जरूरत है। (जब तक ये बातें हो रही हैं, मौका देखकर बाबातोन कूल्हे हिलाता भाग जाता है।

अंगोजाओ- अरे, यह तो फिर भाग गया। भागो, मैं भी देखता हूँ तुम्हें। जहाँ भी मिलोगे देखना, मैं क्या करता हूँ। (बाबातोन के पीछे भागता है)

डॉ.नोङाल-पिताजी, ओ पिताजी! एक बार रुक जाइए। आपकी बहू को मैं ले जाता हूँ। मैं खुद ही कोई व्यवस्था कर लूँगा। मेरी बात सुनिए पिताजी ! (न जाने अंगोजाओ ने सुना कि नहीं, यूँ ही पीछे भागता चला गया।)

सनाहन्बी- मत रोको, आवाज भी मत दो। रास्ते में सब मिलकर जरूर पीट देंगे। लगता है, पागल हो गए हैं। मजाक बनाएँगे सब। चलो अच्छा ही है। लौटने का इंतजार करते हैं। शराब का नशा भी उतर जाएगा।

डॉ.नोङाल- सब मेरी गलती है इमा। जानता होता, पिताजी इस कदर नापसंद करेंगे तो घर आता ही नहीं। वहीं अच्छा रहता। अब तो जो भी परेशानी है, मुझे ही झेलनी होगी।

सनाहन्बी- आगे से किसी भी काम में, चाहे जितना छोटा हो,चाहे जितना बड़ा, सावधानी बरतो। बिना सोचे -समझे बिना अच्छा-बुरा विचार किए कोई कदम मत उठाओ, ऐसा करना ठीक नहीं,समझ गए बच्चे !

डॉ.नोङाल- इमा, आज मैं बहुत भावुक हो रहा हूँ। मन कर रहा है फूट-फूटकर रो पड़ूँ। यह जानकर भी कि बहू है, पिताजी तो ज़िद पर अड़े हुए हैं। क्या मैं आप लोगों का गोद लिया हुआ बेटा हूँ। क्या मैं इनका बेटा नहीं!

सनाहन्बी- तुम से किसने कह दिया कि तुम इनके बेटे नहीं हो! बूढ़ा सठिया गया है। तुम भी तो देख ही रहे हो। लम्बे अर्से से शराब के नशे में डूबे रहने के कारण दिमाग ठिकाने पर नहीं रहता। इंसानों की तरह तो बात ही नहीं करता। मुझे भी समझ नहीं आ रहा कि क्या कहूँ ! बेटा, तुम्हारे पिताजी बहू को स्वीकार नहीं कर रहे हैं, तो क्या उसे वापस वापस भेज देना सही न होगा! इस घर में तो वह रह भी नहीं पाएगी। उसे भी अच्छा नहीं लगेगा। क्या यही ठीक न रहेगा !

डॉ.नोङाल- ऐसा संभव नहीं है इमा। किसी की बेटी है। मजाक कैसे बनने दूँ ! इमा, आप भी सोचिए, क्या स्त्रियाँ खलौना होती हैं ! आप भी एक स्त्री हो। स्त्री ही स्त्री को नहीं समझ पा रही है, क्यों ? आपके साथ या मेरी बहन के साथ ऐसा होता, तो आपको कैसा लगता! ऐसा तो आप भी नहीं चाहेंगी।

सनाहन्बी- ऐसी नौबत न आए, इसके लिए तुम भी इस बुढ़ऊ से परमिशन ले लेते, तो क्या बिगड़ जाता ! बुद्धू तो तुम हो। बेवकूफी की है, तो अब भुगतो।

डॉ.नोङाल- (भावुकता से) समझ गया इमा, मैं सब समझ गया। मेरी बात हो तो मेरा साथ देने वाला कोई नहीं होगा। ठीक है, मैं चला जाऊँगा। आज ही चला जाऊँगा। मैं किसी को भी परेशान नहीं करूँगा। किसी से नाराज़ भी नहीं हूँ। कोई है भी नहीं, जिससे नाराज हुआ जाए।

सनाहन्बी- मजाक कर रही थी, तुम्हारा मन जानने के लिए। क्या कमी है मेरे बेटे के लिए, मैं जिंदा हूँ अभी, भूल गया! अपने डॉक्टर बेटे की उपेक्षा कर उस शराबी, शराब बेचने वाले बेगैरत इंसान का साथ दूँगी, ऐसा सोचना भी मत। मजाक नहीं, सच कह रही हूँ। आज से मैं, तुम, बहू और पोता, हम अलग रहेंगे। वे भी जो करना चाहें करें। अब साफ-साफ बात कर ही लेंगे। पर पता नहीं घर की जो हालत है, यहाँ बहू रह भी पाएगी कि नहीं! बड़ी विकट स्थिति है।

डॉ.नोङाल- इसके लिए इतना सोचने की जरूरत नहीं है इमा। मेरे साथ रहेगी। हमारी जिंदगी जिएगी, यही मानकर खुद आई है। घर की सब हालत पहले से ही जानती है। इसका मन बहुत बड़ा है। सबसे मिल-जुलकर रहेगी । इसके लिए आपको ज्यादा चिंता करने की जरूरत नहीं है।

सनाहन्बी- यह तो मैं भी जानती हूँ। दृढ़ निश्चयी है। सभ्य घराने की बेटी है।

डॉ.नोङाल- मैं भी सोच रहा हूँ, आपको खुश रखूँ। सबके सामने गर्व करूँ। आपने बहुत कष्ट सह लिया। एक दिन भी खुशी से हँसने-मुस्कराने को नहीं मिला। मैं सब जानता हूँ। इसीलिए तो मैं यहाँ आया हूँ। वहाँ तो इमा मैं राजकुमारों की तरह रहकर आया हूँ। तुम्हारी बहू के घर पर तो मुझे भगवान की तरह रखा था। खाने-पहनने की जो मर्जी होती, वही करता। तुम्हारी बहू इकलौती है। बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ, जीप, कार, दुकानें ही दुकानें, किसी चीज की कमी नहीं। पर माँ तो माँ होती है। अपनी जन्मभूमि की बात ही निराली होती है। प्रेम किए बिना नहीं रह सकते। ना ही भूल सकते हैं। घर की ऐसी हालत और ऊपर से पिताजी का ऐसा रवैया, वहाँ बहू के घर आप भी रहें, तो क्या हर्ज है !

सनाहन्बी- ऐसा भी नहीं कर सकते। तेरी छोटी बहन भी तो है। बावले से तेरे पिता को इस हालत में छोड़कर

चले जाएँगे, तो लोग क्या कहेंगे! लोगों की बात छोड़ भी दो, तो भी क्या तुम्हें अच्छा लगेगा, सोचकर देखो! (अंगोजाओ को हाँफते हुए लौटता देख) लो आ ही गए। कीचड़ से लथपथ तेरा बाप। बहू के सामने मुझे तो बड़ी शर्म आ रही है। मुझे जल्दी से मौत आ जाए, तो अच्छा हो। पिछले जन्म में मैंने न जाने ऐसा क्या पाप कर दिया, जो मुझे इस कदर कष्ट सहना पड़ रहा है। कैसा भाग्य है मेरा! कहीं चैन नहीं।

डॉ.नोङाल- अब सब कुछ भूल जाइए इमा। मैं भी तो तुम्हारे पास हूँ।

सनाहन्बी- बहुत खुश हूँ बेटा। तुझे जन्म देकर मैं धन्य हो गई। अब मैं इंसानों की तरह जीयूँगी।

अंगोजाओ- (लंगड़ाते और बड़बड़ाते हुए प्रवेश) कल का छोकरा, हाथ से झट फिसल गया। बड़ी शर्म की बात है, अंगोजाओ। जन्म से लेकर आज तक किसी ने मुझे परास्त नहीं किया। (दुःखी होकर) ओह ! कितना बेवकूफ था। खुरायजम का नाला लाँघे बगैर लैख्राम की गली से चला जाता, तो क्या वह मुझसे बच पाता ! कोई है ! सनाहन्बी एक चटाई बिछाना, मैं जरा आराम कर लूँ। मेरी साँस चढ़ रही है। (कहते-कहते धम्म से जमीन पर गिर जाता है और वहीं पसर जाता है। चटाई बिछाने का भी इंतजार नहीं करता।)

सनाहन्बी- जमीन पर लोटने से अच्छा है इधर बैठ जाइए। मैं पंखा झलती हूँ। (मोढ़ा खिसका कर उस पर बैठती है। अपने आँचल से हवा करती है। (फिर घबराकर) ईस्स, कहाँ से इतना खून !

डॉ.नोङाल- (घबराकर) किधर इमा ! मैं देखता हूँ। पाँव थोड़ा छिल गया है ! (चोट लगा पाँव उठाकर देखने लगता है। अंगोजाओ नहीं मानता।)

अंगोजाओ- आह ! तुम मुझे मत छुओ, अपना हाथ मत लगाओ।

डॉ.नोङाल- दवाई लगा देता हूँ पिताजी, पट्टी भी बाँध देता हूँ। जैसे मैं कोई अछूत हूँ, देखने ही नहीं दे रहे ! छूना भी मना है क्या !

अंगोजाओ-मैं नहीं कह रहा कि तुम अछूत हो। घाट-घाट का पानी पी चुका हूँ। मैं छूत-अछूत कुछ नहीं मानता।

डॉ.नोङाल- फिर देखने क्यों नहीं दे रहे हैं !

अंगोजाओ- मैं तुमसे किसी भी तरह का कोई फायदा नहीं लेना चाहता, समझे !

डॉ.नोङाल-(गुस्से से) नहीं मानते हो तो न सही। टिट्नस के किटाणु हमला कर देंगे, तो सीधे ही ऊपर पहुँच जाओगे। मैं भी देख रहा हूँ। सब जानकर भी बर्दाश्त कर रहा हूँ। अपने कुँवारे बेटे को उसकी पसंद से शादी करने का अधिकार तक नहीं देना चाहते।

अंगोजाओ- जानता हूँ बच्चे! तुम बड़ों को बताए बगैर हमेशा अपनी मर्जी करते हो। केवल अपने बारे में सोचते हो। यह मुझे मंजूर नहीं।

सनाहन्बी- बच्चा है। अनजाने में हो गया। बेवकूफी कर बैठा, यही समझ लो। बच्चे माँ-बाप को नखरे दिखा

कर खुश होते हैं। इनसे मुकाबला करने से क्या फायदा !

अंगोजाओ- यह घर बन्दरों का गढ़ नहीं है। अच्छा या बुरा, मैं घर का स्वामी हूँ। घर के अन्दर बन्दर नहीं आ सकते। यह मेरा आदेश है। मेरा हुकुम जो नहीं मानेगा, वह इस घर से विदा- फिर कभी न मिलने के लिए। मेरे होने का कोई अर्थ नहीं रह गया है। ऐसे में घर उन्नति करे तो कैसे !

सनाहन्बी- लो और सुनो! बात तो ऐसे कर रहे हैं, जैसे कोई बहुत समझदार इंसान हो। सूरत तो देखो, और जो काम करते हो उसका तो कहना ही क्या! बड़े-बुजुर्ग की इज्जत उसके रवैये के अनुसार होती है, इतना खुद भी नहीं जानते।

डॉ.नोङाल- छोड़िए इमा, पिताजी की हालत इससे बदतर हो, इससे पहले किसी सायक्याट्रिस्ट को दिखा देना अच्छा रहेगा। एक या दो महीने के लिए अस्पताल में भर्ती कर देते हैं। अच्छी तरह इलाज करवाना पड़ेगा। जिम्मेदारी मैं लेता हूँ। आपकी बहू भी साथ देगी। सचमुच पागल हो गए, तो बाद में बहुत पछतावा होगा।

अंगोजाओ- क्या कहा ! तुम मुझे कह रहे हो कि मैं पागल हो जाऊँगा, तेरी ये मजाल! अपने पिता को ही पागल करार दे रहे हो। पागल तो तुम हो- अपने आप कैसे जानोगे कि तुम पागल हो। मैं तो तुम लोगों के लिए चिंतित हूँ। मैं पागल तो हूँ नहीं, फिर डॉक्टर के पास क्यों जाऊँगा ! दवाई क्यों खाऊँगा ! आश्चर्य है, देखो इन पागलों को !

डॉ.नोङाल- हाँ इमा, पैसा चाहे जितना भी लग जाए, आपकी बहू जुगाड़ कर लेगी। बाहर ले जाना पड़े, तो भी ले जाएँगे। पिताजी को अच्छा करना ही होगा। मैं बहुत परेशान हूँ इमा, बहुत कष्ट हो रहा है।

सनाहन्बी- न जाने क्या होगा ! मुझे तो समझ ही नहीं आ रहा कि क्या करूँ, क्या नहीं ! जैसा तुम ठीक समझो, उस पर विचार करना होगा। अब क्या चारा है!

अगोजाओ- (अपने में बड़बड़ाता है) सब मिलकर मुझे पागल बनाने वाले हैं। माँ-बेटा एक हो गए। मुझे बचकर निकलना ही होगा। देखें, कौन किससे आगे है। यह सब इसकी माँ की ही करतूत है। इसी को कहीं और भेजना पड़ेगा। हुम्म.. पर भेजूँ कहाँ! इसके बिना मैं रहूँगा कैसे ! शराब का पैसा कौन देगा...क्या करूँ... !

सनाहन्बी- फिर तो आप भी थोड़ा मेरा कहा मान ही लीजिए। आप सुधर जाएँ, बड़े होने के नाते सभी को सही रास्ता दिखाएँ, तो इससे बढ़कर हमें कुछ नहीं चाहिए। बेटा डॉक्टर बन गया है। खूब पैसा बना सकता है। लाभ मिलने का समय आया और हमने इसका ही बहिष्कार कर दिया, तो नुकसान हमारा ही है। इसलिए आपको जो नापसंद हो, मुझे बताएँ। आपका बेटा सही कर देगा। यह भी बच्चा नहीं रहा। सही-गलत सब समझता है।

अंगोजाओ- पर मैं तो बार-बार कह चुका हूँ। फिर से कहने की कोई जरूरत नहीं।

डॉ.नोङाल- छोड़ो इमा, पिताजी बहुत ही जिद्दी हैं। ठान लेते हैं, तो अड़ जाते हैं, चाहे सही हो या गलत। ये

बदलने वाले नहीं हैं, मैं जानता हूँ। मैं किसी को भी कोई कष्ट नहीं देना चाहता। मेरा आज ही चले जाना ठीक होगा। कभी पिताजी मुझे याद करें, तो खुशी-खुशी आ जाऊँगा। इमा, आप भी दुःखी न हों। (रिक्शे की आवाज आती है) रिक्शा, ऐ रिक्शा, रुको, चलना है। थोड़ी देर रुको। (घर की ओर) राधे, सुन रही हो राधे ? अपनी भाभी को ले आओ। कह दो आ जाए, बच्चा भी। (राधे, उसकी भाभी और बच्चा एक-एक कर निकल आते हैं।)

राधे- कैसे, क्या फैसला हुआ तातोन ! मुझे तो भाभी बड़ी प्यारी लगी। एकदम शांत और हमेशा मुस्कराने वाली। (अपने पिता से) पिताजी, यह क्या कर रहे हैं आप ! मैं तो अचरज में पड़ गई हूँ, क्या करूँ समझ ही नहीं आ रहा। (अपनी माँ से) इमा, यूँ ही क्या चुपचाप देख रही हो ! तातोन को क्यों नहीं रोक रही हो ! (नोङाल अपनी पत्नी के साथ बच्चे का हाथ पकड़े नमस्ते करके निकल जाता है।

अंगोजाओ- यह तुम बच्चों का काम नहीं है। इबेम्मा, तुम चुप रहो ।

राधे- इमा-पिताजी कितने निर्दय हैं, कोई ऐसा करता है भला ! मेरे तो तन-बदन में आग लग रही है। किसी ने भी उन्हें नहीं रोका। बड़ी शर्म आ रही है। हमने कितनी असभ्यता दिखाई है। हममें इंसानियत तो है ही नहीं।

अंगजाओ- जिसको लज्जित होना है, होता रहे। मैं क्यों लज्जित होऊँ!

सनाहन्बी- छोड़िए भी, क्यों बच्चों की बराबरी कर रहे हैं, बुला लाते हैं। अच्छा या बुरा, अपना ही बच्चा है। छोड़ नहीं सकते। लोग हमें ही ताने देंगे। शराब तो बेचते ही हो, ऊपर से पियक्कड़ भी हो। इसे कोई पसंद नहीं कर रहा। कुछ समय बाद मुहल्ले वाले हमें निकाल बाहर कर देंगे, देख लेना। इतना तो मैं जानती हूँ।

अंगोजाओ- कोई शराब बेचता है, तो उन्हें क्या मतलब ! हमें मुहल्ले वाले पाल रहे हैं क्या! उनकी बर्बादी के लिए हमने क्या कर दिया ! हम तो जीने की कोशिश कर रहे हैं। किसी का कुछ चुरा तो नहीं रहे। इससे अच्छा सनाहन्बी, थोड़ा ज्यादा पैसा लगाकर दुकान बड़ी करते हैं। लाल- सफेद सभी तरह की रखेंगे, तो हम भी आदमी बन जाएँगे। इसलिए कोई तुम्हें शराब बेचने वाली कहे तो नाराज़ मत होना, शर्माना भी नहीं।

सनाहन्बी- खुद तो किसी लायक हैं नहीं, मुझे भी शराब बेचने वाली बना रहे हैं। हिम्मत तो देखो, कुछ भी कर गुजरने की। जीते जी मार डाला।

राधे- कुछ समय बाद इमा, मुझे भी शराब बेचने वाले की बेटी, ओजा को नृत्य के गुरु शराब बेचने वाले...। ये सुन्दर नामकरण एक के बाद एक को.....।

सनाहन्बी- शराब में जितना डूबना था, डूब चुके। जितना पी सकते थे, पी चुके। अब तो सुधर जाओ। दामाद नन्दलाल की भी उम्र हो रही है। मुझे नहीं लगता कि अब वे भी यहाँ ज्यादा समय टिकने वाले हैं। वह भी भाग गया, तो सोचो घर की क्या हालत होगी। चिंता की बात है।

राधे- भागेंगे तो नहीं इमा। हमारे ओजा तो इसी घर में मरने की बात करते हैं।

अंगोजाओ- राधे तुम कहीं मत जाना बेटी! मेरी बेटी समझदार है और नन्दलाल भी बड़े दिल वाला, नृत्य में मशहूर। तुम भी भोली बनकर न रह जाना। ओजा के रहते जितना सीख सकती है सीख ले। कठिन भंगिमाएँ, सुन्दर चाल सीखना न भूलना! कुछ समय बाद तो तुम दोनों मिलकर देश-विदेश घूमोगे, कोना-कोना छानोगे। फिर तो पैसा ही पैसा होगा। कष्ट का नामोनिशान नहीं।

सनाहन्बी- फिर आप भी शराब में डूबकर पैसों में तैरना-उतराना। अंजलि भर-भर कर पैसा पीना। हथैली भर-भर कर पैसा बिखेरना। बहुत सुन्दर, बहुत खुशहाली।

राधे-अगर पिताजी कह दें कि शराब नहीं बेचेंगे, तो देखना मैं क्या करती हूँ इमा। डांस सेंटर खोलूँगी, छात्रों को ट्रेनिंग दूँगी। सेंटर का नाम होगा। दुनिया घूमूँगी।

अंगोजाओ- जापान जाना हुआ तो मैं भी चलूँगा , झाँझ बजाने वाला बन जाऊँगा। मैं भी देश-विदेश घूमना चाहता हूँ बेटी।

राधे- क्या बात कर रहे हो पिताजी ! शराब में धुत्त होकर बेताल झाँझ बजाने उठ गए, तो नृत्य पूरा बिगड़ जाएगा। नृत्य करूँगी या आप को संभालूँगी। अच्छा-खासा नाटक हो जाएगा।

सनाहन्बी- मैं भी रोगियों के इलाज के लिए एक क्लीनिक खोलूँगी। अपने घर के पश्चिम में क्लीनिक, पूरब में डांस सेन्टर, मैं मरीजों को संभालूँगी और पैसा भी संभालूँगी।

अंगोजाओ- मेरी शराब बेचने की जगह कहाँ होगी! दोनों के बीच, यही ठीक रहेगा न सनाहन्बी !

सनाहन्बी- जो भी हो, इनका काम बनना चाहिए। सोच रही थी इसे ही भूल जाएँ। पता नहीं क्यों, कभी भूलते ही नहीं! शराब की दुकान उठा कर चाय की दुकान लगाएँ, तो चाय, पकौड़े, भाजी, खिचड़ी बहुत बिकेंगे। यह सुनेंगे तो मौन धर लेंगे, मैं जानती थी।

राधे- मन भाई, जल्दी क्योंकर भुलाई !

अंगोजाओ- मन भर गया तुम लोगों का, खुश हो, और कुछ बचा है !

राधे- हमारा तो हो गया। आपका गलत वर्तनी वाला लेक्चर भी थोड़ा सुन लें।

अंगोजाओ- तुम लोग तो पीते नहीं, इसलिए समझते भी नहीं। थोड़ा सा गटक लो तो दुःख-दर्द सब डेम-केयर, अलग दुनिया। सेवन करना सीख जाओ तो इससे बढ़िया दवा नहीं। बड़े-बड़े लोग इसी की मदद से कठिन से कठिन काम को आसानी से अंजाम देते हैं। मेरा यकीन करो, सच कह रहा हूँ, नहीं तो नरक में जा गिरूँ। बहुत कड़वी है। चाय-कॉफी या शर्बत जैसा स्वाद होता, तो दिन में न जाने कितने गिलास पी सकता हूँ, शर्त लगा लो।

राधे- सही है पिताजी, बहुत कड़वी है, गले में बहुत लगती है। पेट जलता है, सिर चकराता है। शून्य में मन बहता है।

सनाहन्बी- पगली, तूने ये सब कैसे जान लिया ! तुझे कैसे पता चल गया !

राधे- हमारे ओजा किसी जमाने में थोड़ा-बहुत पीते थे, तभी चखकर देखी थी। अब तो इन्होंने बिलकुल छोड़ दिया। साधु बन गए। वैष्णव हो गए।

सनाहन्बी- ओजा कितने दृढ़ निश्चयी हैं, इसीलिए इतने मशहूर हैं। और हमारे इनको देखो, बोलना ही बेकार है। लोग पीते हैं, तो सही जगह और सही समय देखकर, शालीनता से पीते हैं। और हमारे ये हैं कि सुबह क्या,दोपहर क्या और रात क्या! फिर सीधे भी खड़े नहीं हो पाते। सीधे बोल तक नहीं पाएँगे। आँखें एकदम लाल हो जाएँगी। फिर जो भी सामने पड़ जाए, उससे उलझना और चीखना-चिल्लाना शुरू कर देंगे। कायदे से तो थाने में पकड़वा दें, तभी ठण्डक मिले।

राधे- अपनी जबान को क्यों कष्ट दे रही हो इमा, सब व्यर्थ है। चाहे कितना भी बोलो, कान देने वाले नहीं हैं।

अंगोजाओ- बोलो-बोलो, मुहल्ले भर को सुनाने के लिए माइक लगाना चाहो, तो वो भी खुशी से लगा लो।

सनाहन्बी- शक्ल तो देखो, शराबियों का मुँह ! मुझे तो ज़हर जैसा लगता है। जरा भी नहीं सुहाता।

अंगोजाओ- तुम भी अपनी बेटी का अनुकरण कर लो। ये तो नृत्य भी जानती है। सेंटर भी खोलने वाली है। नंदलाल से ही सीखना चाहती हो, तो बोलो। लाज आएगी क्या! दामाद से सीखने में शर्म आ रही हो, तो मैं ही सिखा देता हूँ। देखो इस तरह करो।(मुद्राएँ बनाते हुए मुँह से बोल बोलने लगता है।)

खित्ता धेनता धिनतेन ता
खत्ता धेनता धिनतेन ता
ता ख्रख्र ताङ धिन थेन

(चक्कर आने से गिरने को होता है, और रुक जाता है)

राधे- (घबराकर रोकती है) कहीं गिर न पड़ना! छोड़िए पिताजी, आपसे ये सब जरा भी नहीं निभता, हमें भी अच्छा नहीं लगता। आता तो कुछ है नहीं, केवल दिखा रहे हैं। सब गलत। पूरा का पूरा गलत। आप तो नृत्य को ही बर्बाद कर देंगे।

अंगोजाओ- अरी, थोड़ी देर के लिए गुरु बन रहा था, गलत हो गया क्या !

सनाहन्बी- मेरे लिए तो केवल हँसना रह गया है। पागलपन में लोग क्या-क्या करने लगते हैं !

राधे- ठीक कह रही हो इमा। थोड़ा हँस भी लें। इतनी मुसीबत में और क्या करें!

सनाहन्बी- बेटी, मेरी तो हँसी गायब हो गई है। सोचती हूँ तो पसीने छूटने लगते हैं। तुम और ओजा नहीं होते, तो मैं अपना कुछ जुगाड़ कर लेती। सब मेरे ही कंधों पर धरा हुआ है। मुहल्ले के लिए पोत्येङ, देव-कर्मों में देने के लिए पैसा, हाउसी-लौटरी, ये तो कुछ जानते ही नहीं। न जिम्मेदारी ही लेते हैं। मेहनत जरा भी नहीं करना चाहते और भोगना सब चाहते हैं।

राधे- ठीक कहती हैं, पर अभी शांत हो जाइए। ओजा और मैं तो जितना संभव है, कर ही रहे हैं।

सनाहन्बी- कोसूँगी, जी भर कर कोसूँगी। मुझे बहुत तकलीफ होती है।

अंगोजाओ- (गुस्से में) औरत जाए भाड़ में। औरतों की उँगलियों पर नाचने वाला मैं नहीं हूँ। ठीक है, मैं काम नहीं करता, तो तुम्हें क्या मतलब ! तुम्हें क्यों जलन हो रही है!

सनाहन्बी- काम नहीं करते, पर शांत रहते, तो सारे कष्टों को अपना भाग्य समझ कर सह लेती। नशा मत करो, यही तो कह रही हूँ।

अंगोजाओ- कुछ करो तो शराब, कुछ कहो तो शराब। शराब जैसे तुम्हारी दुश्मन है। शराब तुम्हें काटती है क्या ! सारा दोष शराब पर मढ़ देते हो, क्या यह सही है।

राधे- पिताजी, आप भी चुप हो जाइए। इमा मन की भड़ास निकाल रही है।

सनाहन्बी- खुद को समझाना मुश्किल हो रहा है मेरे लिए। मन में आग सुलग रही है। मैं भी मर क्यों नहीं जाती! मेरे मरने के बाद पेट भर-भरकर पीते रहना। मौज करना अकेले-अकेले।

अंगोजाओ- ऐसा न कहो सनाहन्बी, स्वादिष्ट खाकर और सुन्दर-सुन्दर पहन-ओढ़कर जीना, क्या तुम्हें आनंद नहीं देता !

सनाहन्बी- तुम्हारे पागलपन को झेलते रहने से अच्छा, पोखर में छलांग लगाकर डूब न मरूँ!

अंगोजाओ- श्राद्ध के लिए पैसा कहाँ से आएगा ! थोड़ा पैसा जुटा लें, तब मरना, अगर तुम्हारा मरना बहुत ही जरूरी है तो ! तब तक इंतजार कर सकती हो न !

राधे- पिताजी, आप इमा से ऐसी बातें न करें। मुझे सहन नहीं हो रहा है। पिताजी, आप और इमा दोनों शांत हो जाएँ। (स्वगत) हमारे ओजा कहाँ गायब हो गए इस वक्त।

अंगोजाओ- तुम्हारी इमा की मनोकामना पूरी हो इबेम्मा, कोई मरना चाहे, तो रोको मत, मर जाने दो। मैं तो नहीं रोकूँगा।

सनाहन्बी- ठीक है, तुम भी खुश रहो। (सनाहन्बी तेजी से निकलने को होती है और राधे उसे पकड़ने की कोशिश करती है। मा-बेटी में थोड़ी गुत्थम-गुत्था होती है।)

सनाहन्बी- इबेम्मा, छोड़ो मुझे। मेरा कलेजा छलनी हो रहा है। छोड़ो-छोड़ो। (छूटकर भाग जाती है।)

राधे- पिताजी, इमा को रोक लीजिए। ऐसे देखते मत रहिए। इमा को रोक लीजिए।

अंगोजाओ- तुम्हारी इमा को घोंघे बहुत पसंद हैं, वही चुनने गई होगी। तुम भी पिछवाड़े से बाँस की जड़ उखाड़ लाओ, शाम को जवानों के साथ बैठ कर पीने के लिए।

राधे- यह मजाक का समय नहीं है पिताजी, इमा पोखर तक पहुँचने वाली होगी।

(सनाहन्बी थाङजिङ के काँटों के बीच बेचैनी से हाथ-पैर मारती है)

अंगोजाओ- घुटनों तक तो पानी है नहीं। थोड़ा पानी हलक में जाएगा, तो अपने आप लौट आएगी, यूँ ही दिखा रही है।

राधे- गाय के खुर भर पानी में भी लोग मर जाते हैं। माँ को तैरना भी नहीं आता। पिताजी, इमा नहीं रहेगी, तो मैं भी चली जाऊँगी। ओजा को भी साथ ले जाऊँगी, वापस नहीं आऊँगी। यकीन कीजिए पिताजी!

अंगोजाओ- (कुछ सोचकर) हुम्म, माँ मर जाए, बेटी भी चली जाए और नन्दलाल को भी साथ ले जाए, तो मैं किसके साथ रहूँगा! ठीक तो है, बेटी नहीं रहेगी, तो मैं भूखो मर जाऊँगा। शराब पीने को भी नहीं मिलेगी। (कपड़े संभालता है) तुम्हारी माँ को रोकने जाता हूँ। लेकर आऊँगा तुम्हारी माँ को।(तेज आवाज में) रुको सनाहन्बी! मैं आ रहा हूँ, रुको तो सही। मैं तो मजाक समझ रहा था और तुम सचमुच ही.....।

(कपड़े संभालकर भागता है। राधे हिचकी बाँधकर रोते हुए पिता को जाते देखती है, फिर टेबल पर औंधे मुँह कर जोर-जोर से रोने लगती है। इतने में नन्दलाल एक बड़ी सी मछली लटकाए आता है। मयाङ बहू भी मुस्कराती हुई पीछे-पीछे चली आती है। बाबातोन बच्चे की उँगली थामे पीछे-पीछे आता है।)

नन्दलाल- आप घर छोड़कर नहीं जा सकते। हम सबको मिलकर इस घर को बनाए रखना है। मैं अकेला कुछ नहीं कर सकता। और फिर मैं तो पराया हूँ। परदेसी हूँ। आश्रय में रह रहा हूँ, मैं क्या जानता हूँ, क्या कर सकता हूँ। यह घर टूटना नहीं चाहिए। साले साहब, आप बेहतर जानते हैं।

डॉ. नोङाल- मैं जानता हूँ। सब जानता हूँ। बड़े ही जब नादानी करने लगते हैं, तो मैं भी सकपका जाता हूँ। मैं तो सोच रहा था, संभव हो तो घर में प्रवेश करने से पहले ही लौट जाऊँ, वही अच्छा रहे। घर के बड़ों की आज्ञा के बिना मैं खुद भी नहीं आना चाहता। क्या कहते हो बाबातोन?

बाबातोन- मैं क्या कह सकता हूँ! मैं तो चाहता हूँ कि सबकी रजामंदी हो, किसी का कुछ न बिगड़े।

नन्दलाल- (मयाङ बहू की ओर मुड़कर) भाभीजी, आपको क्या लगता है ! आप क्या सोचती हैं!

मयाङ बहू- हमको, हमको क्या मालूम ! इट इज़ ऑल राइट, डॉ. नोङाल इज़ ग्रेट ! आइ हेव टु लिव विद हिम, दैट्स ऑल। (सब हँस पड़ते हैं, जैसै सबको समझ आ गया हो।)

नन्दलाल- राधे तुम अभी तक रो रही हो , साले साहब आ गए हैं, लो देख लो। तुम्हारी भाभी और बच्चे भी साथ हैं। लो मछली, भीतर ले जाओ और पकाने की तैयारी करो। माथा और आलू भून लेना। पिताजी को पसंद है, खुश हो जाएँगे।

राधे- मछली बनानी है, पर संभव है घर ही शोक में डूब जाए!

नन्दलाल- हाँ आ ! क्या हुआ! (घबराहट में हाथ से मछली छूट जाती है।)

राधे- इमा मरने के लिए पोखर की तरफ चली गई है।

बाबातोन- इस्स अब क्या होगा !

डॉ.नोङाल- पिताजी क्या कर रहे थे!

राधे- इमा को पकड़ने गए हैं, अभी लौटे नहीं।

नन्दलाल- लो फिर सब लोग अपने-अपने कपड़े संभालो। (कपड़े संभालते हुए भागने की तैयारी करते हैं।)

मयाङ बहू- (थोड़ा घबराकर) फिर क्या हुआ !

राधे- कुछ नहीं भाभीजी, आप आइए मेरे साथ।

(दोनों घर के भीतर चली जाती हैं। बच्चा भी साथ जाता है।)

डॉ.नोङाल- हमारे घर को कुछ हो गया है। सब के सब पागल हो गए हैं। (अपना कुर्ता संभालते हुए जैसे ही दौड़ने को होता है, अंगोजाओ को सनाहन्बी को हाथ पकड़े लाते देख कर झट लौट आता है। थोड़ा मुस्कराता है।)

अंगोजाओ- मैं तो शौकीन आदमी हूँ, इसलिए थोड़ा आनंद लेना चाहता था। तुमने बेकार अड़ंगा डालकर सबको लज्जित कर दिया। अपने बेटे और बहू, दोनों को बुलाकर लाऊँगा। अब मैं भी काम करूँगा। वेंडर उठवा दूँगा। अब शराब बेचना भी छोड़ दूँगा। पर सनाहन्बी थोड़ा-थोड़ा तो पीने देना, इसे मत रोकना।

सनाहन्बी- तुम्हारा पारा जो झट से चढ़ जाता है, उस कारण सारी बात बिगड़ जाती है। सब जानती थी कि यही होगा, फिर भी! अब कितनी शर्मिंदगी उठानी पड़ रही है बच्चों के सामने!

राधे- (बाहर आकर) इमा, तातोन और इनम्मा आ गए हैं, बच्चा भी साथ है।

सनाहन्बी- सच ! यकीन नहीं हो रहा ! अपने आप लौटा या कोई बुलाकर लाया !

राधे- सच इमा, हमारे ओजा को रास्ते में मिले, तो मनामनु कर ले आए। ओजा का काम ही सबसे बढ़िया रहता है। (खुलकर हँसती है।)

अंगोजाओ- करो-करो, अपने ही लोगों की तारीफ करो। मैं शराबी हूँ, इसलिए कोई मेरी तारीफ़ तो करता नहीं।

डॉ.नोङाल- आप के लिए तो मैं हूँ पिताजी, मैं तारीफ करूँगा आपकी। इमा और बाबातोन आपकी तारीफ करने में मेरी मदद करेंगे।

सनाहन्बी- इबेम्मा ! ओजा की कभी उपेक्षा न करना। बहुत गुणी हैं, बड़े दिल वाले भी। मन लगाकर इनकी सेवा करना। इनका मन कभी न दुःखाना।

राधे- (लाड़ दिखाते हुए) ये क्या बोल रही हो आप भी, शर्म नहीं आ रही ! आप भी तो पिताजी की थोड़ी तारीफ कर देना।

सनाहन्बी- ठहरो इबेम्मा, अभी वक्त नहीं आया तारीफ़ का। क्या पता, फिर दौरा पड़ने लगे, सब गुड़ गोबर हो जाएगा। एकदम से नम्बर दे देना ठीक न होगा।

बाबातोन- नम्बर देने में मैं भी रहूँगा इमा, 'सीन' बड़ा सुन्दर है।

डॉ.नोङाल- पहले एक कमिटी बना लेते हैं बाबातोन। प्रेसिडेंट, सेक्रेटरी, एडवाइज़र, मेम्बर, देखें कौन सबसे अधिक नम्बर देता है।

अंगोजाओ- अब कौन सा पद रह गया है, कैशियर और फायनांस मुझे ही देना।

सनाहन्बी- समझदार बने रहिए, जो पद चाहे ले लीजिए। ऐसा कोई नहीं, जो परेशान करे।

अंगोजाओ- (समझदार बनकर) बाबातोन, अच्छा हुआ तुम भी आ गए। मैंने जो कुछ किया, डाँटना-फटकारना किसी का भी बुरा न मानना बेटा!

बाबतोन- मैं नाराज़ नहीं हूँ। नाराज़ होना आता भी नहीं पाबुङ ।

अंगोजाओ- तुम्हारी शादी में देखना, मैं क्या करता हूँ।

डॉ.नोङाल- इसके तो दो बच्चे हैं पिताजी! बच्चों की माँ भी मयाङ है।

सनाहन्बी- तुम लोग एक जैसे विचारों के हो, इसीलिए तुम्हारी दोस्ती भी पक्की है। मगर तुम्हारे इस कम्पटीशन में घर वालों की हालत पतली हो गई।

अंगोजाओ- ओ हो, मुझे तो पता ही नहीं चला, निमंत्रण भी नहीं आया।

सनाहन्बी- ये फिर शुरू हो गए। अजी शादी में मैं ही गई थी। उपहार भी मैंने ही दिया था। आपका तो अपना अलग संसार है। कहाँ से कैसे कुछ याद रहेगा !

नन्दलाल- (अंगोजाओ को दंडवत प्रणाम करने की मुद्रा बनाता है।) इस बार आपको मेरी बात रखनी ही होगी। अब इस घर को मैं साले साहब को सौंपता हूँ। घर के मालिक तो वही हैं, मेरा क्या, मेरा तो साधारण सा रिश्ता है।

अंगोजाओ- ठीक है , ठीक है, इसकी कोई जरूरत नहीं। तुम दामाद हो और नोङाल बेटा, मेरे लिए दोनों ही बराबर हो। मुझे इतना ही कहना है कि राधे से मशविरा करके डांस सेंटर का काम शुरू कर दो। आधी जमीन तुम्हारे और राधे के नाम कर देंगे। वैसे जमीन मेरी नहीं है, सनाहन्बी के नाम से है। उसकी सम्पत्ति है। मैं भी तुम्हारे जैसा हूँ। तुम्हारी तरह ही मैं भी उसके घर रह रहा हूँ, हम लोग एक जैसे ही हैं।

सनाहन्बी- आधी जमीन पर नोङाल का क्लीनिक बन जाएगा। फिर तो सबके लिए अच्छा हो जाएगा।

बाबातोन- (हँसते हुए) इधर सिरिंज और कैंची, उधर मृदंग और नृत्य– मैं क्या करूँगा! दोनों राजी रहें, इसलिए सुई लगाना भी सीखूँगा और नृत्य में भी शामिल हो जाऊँगा। इस बार तो मेरे मजे हैं।

अंगोजाओ- बाबातोन, बहू को बुरा न लगा हो, तुम समझा-बुझा देना। अभी भाषा समझेगी नहीं, इसलिए जब वह मणिपुरी बोलना सीख लेगी, तब मैं सुलह कर लूँगा।

डॉ. नोङाल- यह काम मुझ पर छोड़ दीजिए पिताजी। मैं सब संभाल लूँगा।

सनाहन्बी- बाबातोन, तुम अभी चले मत जाना। थोड़ी देर बाद फिर शुरू हो गए, तो सुलह करवाने वाला कोई नहीं रह जाएगा। खाना भी यहीं खाकर जाना, ठीक है!

बाबातोन- एक डंडा दे दीजिए, चौकीदार बनकर खड़ा हो जाता हूँ।

राधे- तो फिर मैं खाना बनाने जा रही हूँ। (मुस्कराती हुई नृत्य की मुद्राएँ बनाती चली जाती है।)

नन्दलाल- तो फिर मैं भी मछली तैयार करता हूँ। (मछली काटने की मुद्रा बनाते हुए चला जाता है।)

सनाहन्बी- मैं भी इनको संभालने जाती हूँ। (चली जाती है)

डॉ. नोङाल- स्वाद वाला फॉरेन का लाया हूँ। छोटा सा एक-एक पैग हो जाए !

बाबातोन-अभी ये सब मत करो, अभी तो घमासान थमा है। एक और युद्ध झेलने की हिम्मत नहीं है।

डॉ. नोङाल- इसलिए तो कह रहा था। थोड़ा आराम मिल जाएगा, सचमुच थक गया हूँ।

बाबातोन- तुम कर लो आराम। फिर कुछ हो गया, तो मैं तो भाग जाऊँगा, अकेले रह जाना।

डॉ. नोङाल- ऐसा है तो लो, दूर नाले तक पहुँचा देता हूँ। (फेंकने जैसी मुद्रा में हाथ-पैर फैलाता है)

बाबातोन- देखो, टूटने न पाए, बाद में उठा ले जाऊँगा। (दोनों हाथ मिलाते हैं। बाबातोन नोङाल के कान में कुछ खुसुर-फुसुर करता है, दोनों हँस पड़ते हैं।)

(पर्दा धीरे-धीरे गिरता है।)

[1968 में निङोल चाकौबा के दिन कोस्मोपोलिटन ड्रामेटिक यूनियन, वाङखै थाङजम लैकाइ, थाङजम मण्डप में मंचित]

(**परिचय :** यह नाटक मूलतः लेशाङथेम तोन्दोन द्वारा मणिपुरी भाषा में लिखा गया है। इसका हिंदी अनुवाद एलाङ्बम विजयलक्ष्मी द्वारा किया गया है। अनुवादक मणिपुर विश्वविद्यालय, इंफाल के हिंदी विभाग में सहायक प्रोफेसर हैं।)

मेरा घर कहाँ है?

सोनी पाण्डेय

ईमेल- pandeysoni.azh@gmail.com

सुनों!ऽऽऽऽ

सुनों!ऽऽऽऽ

सुनों! ऽऽऽऽ

शांति देश के परम प्रतापी, दयावान...धर्मरक्षक...प्रजापालक...न्यायप्रिय महाराजाधिराज धर्मदेव की आज्ञा है कि प्रजा तब तक भजन करती रहे जब तक आकाश से अमृत की वर्षा न हो।

जब तक गायें दूध को सोना न बना दें।
जब तक मरता हुआ भूखा आदमी मुस्कुराने न लगे।
गाय-भैसों के गोबर से औषधी बनने न लगे..

अभी राजा के सिपाही मुनादी कर ही रहे थे कि लंबू लवंडा ब्लाउज में से दस की नोट पान चबाते...कमर मटकाते... नागिन की तरह चोटी लहराते मंच पर अवतरित हुआ...

मेहरबान!
कदरदान!
दिलजान!
और हमारे रमेश भईया के भाईजान!
अब्दुल्ला मियाँ के जीजाजान!

हमारे नाच पर आखिरी दस की नोट लुटाने वाले कल्लू रिक्शे वाले को हम हौले -हौले दिल से...प्यारे -प्यारे दिल से....शुक्रिया अदा कर ऽऽऽऽ ते हैं।

वह कहते हुए अपने बदन को हिलाता और एक चुम्मा पब्लिक की तरफ़ उछाल कर परदे के पीछे जाने लगा....

भीड़ से कुछ मनचले चिल्लाए...अरे ऽऽऽऽ! लंबुआ लहंगा उठाउ सारे ऽऽऽऽ

अब तक बुत बने सिपाही फिर जागे...सुनो ऽऽऽऽ!

लड़के चिल्लाने लगे....लंबुआ ऽऽऽऽ

सिपाही पिनक कर पीछे चले गये..लंबुआ प्रगट हुआ...बड़े मियाँ ने हारमुनियम पर तान दिया...छोटे मियाँ ने तबले पर थाप लगाई और लंबुआ ने राग छेड़ा...

नज़र लागी राजा तोरे बंगले पे.....

महफ़िल अपनी पूरी रवानी पर थी। गाँव इब्राहिमपुर में रामलीला मण्डली के समापन के बाद कुछ विशेष नौटंकी की प्रस्तुति थी जिसे लड़कों ने बहुत मेहनत से उस्मान मास्टर के निर्देशन में तैयार किया था। लड़कों की नौटंकी में लंबुआ का नाच खासा बिघ्न डालता पर त्रुटि होने पर मंच संभालता भी वही, इसलिए लड़के दाँत पीस कर रह जाते।

इब्राहिमपुर हिन्दू- मुस्लिम साझी आबादी वाला गाँव है और हर साल चढ़ते कुआर यहाँ दोनों कौम मिलकर रामलीला खेलते और खूब जोश और उल्लास से दशहरा मनाते हैं। इस गाँव में एक संगीत प्रेमी परिवार पता नहीं कब से रहता चला आ रहा है जो रामलीला, नौटंकी, भजन, कीर्तन में साज बजाता।...मूलतः यह लोग शहीद बाबा की मजार पर हर बृहस्पतिवार को कौव्वाली गाते।

भारत के तमाम संघर्षरत किसानों-मजदूरों की व्यथा कथा यहाँ भी व्याप्त है। यह गाँव मूलतः बुनकरों की सघन आबादी वाला गाँव है जहाँ बिना किसी जातिगत बँटवारे के एक तिहाई घरों में करघों का नाद सौन्दर्य व्याप्त है। चम्पा की उलझी तानी सलमा सुलझा जाती है तो सलमा को सुंदर बेल-बूटे बनाना चंपा सिखा जाती है। यहाँ लड़कियों का झुण्ड एक साथ कन्या पाठशाला से लेकर स्कूल कॉलेज जाता रहा है। यहाँ सब कुछ सामान्य है....लड़के- लड़कियाँ एक दूसरे से प्रेम करते हैं, मोबाइल पर संदेश भेजते हैं, छोटी बहनों से प्रेमिकाओं को उपहार भेजते हैं और इस एवज में छोटी बहनें भाईयों को इमोशनल ब्लैकमेल कर, पैसे ऐंठ अपनी जरूरतें पूरी करती हैं। यह प्रेम अँखुवाता है, जवान होता है पर परवान नहीं चढ़ता, कारण बड़े बुजुर्ग हर हाल में मामला संभाल लेते हैं और इस तरह प्रेम के नाम पर मार -काट की घटना का यहाँ कोई इतिहास नहीं है। हाँ, एक बात जरूर है कि जब मेहरून्निसा का हण्डा आग पर चढ़ रंग उबालता है और इमरती देवी का कारवाँ गली से गुजरता है तो गाहे बगाहे झड़प हो ही जाती है। तब जरूर यह अटकने लगती हैं कि किसका बच्चा किसका है...जोलाहे का जनमा, नाउ का जनमा, चूड़ीहारे की पैदाइश का राज इस युद्ध में अक्सर सामने आता है और फिर बड़े बुजुर्ग हस्तक्षेप कर मामला हाथापाई तक बढ़ने से बचा लेते हैं। इन दोनों की दुश्मनी का कारण बस इतना है कि जिस दिन मेहरून्निसा घर से जेवर कपड़े समेट अपने प्रेमी प्रेमशंकर ऑटो वाले के संग भागने वाली थी, इमरती देवी ने हल्ला मचा सब गुड़गोबर कर दिया। छत से रस्सी के सहारे उतरते झाँसी की रानी रंगेहाथ पकड़ी गयीं...प्रेमी की जमकर कुटाई हुई और झटपट चचेरे भाई संग निकाह पढ़वा दिया गया।

इमरती देवी के चार बेटे और पाँच बेटियाँ... उनके ना जाने कितने, सो जब घर से निकलतीं तो साथ में बेटी, बहुओं, नाती -पोतों ,परपोतों का जुलूस साथ निकलता। मेहरून्निसा और इनकी अलग ही कहानी थी, इसे यहीं छोड़ते हैं।

हाँ तो नौटंकी का खेला चल रहा था...शीर्षक था शान्ति देश के राजा और शान्ति प्रिय प्रजा। मास्टर उस्मान इस गाँव के एक मात्र घोषित लेखक, पत्रकार, निर्देशक और न जाने क्या -क्या? जवानी में सिनेमा में काम करने के लिए बम्बई भागे और लुट- पीट कर लौट आए पर भूत नहीं उतरा। यहाँ पर नाटक मण्डली बनाई और कैफ़ी साहब की शरण में गये। उन दिनों आजमगढ़ के रंगप्रेमी युवा कैफ़ी साहब के शहर आते उनसे मिलने सरपट भागते। कैफ़ी साहब इप्टा के संचालक थे। उस्मान ने इप्टा ज्वाइन किया और नाटक, नौटंकी खेलने लगे। गाँव के आलसी और खलिहर लड़के इनके शागिर्द बनते...इस क्रिया की घोर प्रतिक्रिया होती और कुछ के अब्बू तो कुछ के पप्पा से जम के वाक् और कभी- कभी मल युद्ध भी हो जाता पर उस्मान मास्टर अपनी धुन के पक्के आदमी। उम्मीद नहीं छोड़ी और पिछले बीस सालों से नाटक खेलना अनवरत जारी है।

मास्टर उस्मान सामयिक मुद्दों को नौटंकी में बड़ी कारीगरी से उठाते और हँसते, रोते-हँसते-गाते जनता सार तक पहुँच जाती। मन्दिर- मस्जिद के गरम मुद्दे को भी बड़ी तार्किकता से उठाते, कभी मंहगाई तो कभी बेरोजगारी। इधर वह दुखी रहने लगे थे कि लेखकों विद्वानों की धरती आतंकगढ़ कहलाने लगी है। वह अपनी पूरी जमा पूंजी अपने नाटकों में झोंक रहे थे और युवकों को साहित्य, संगीत से जोड़ने के अथक प्रयास में लीन। घर वालों ने पैसा फूँक इस नौटंकी के आशिक को बेघर किया तो गाँव के बाहरी हिस्से में अपने खेत में पहले झोपड़ी डाल छत बनाया और मदरसे में नौकरी मिलते पक्का घर बना लिया...घर के बाहरी हिस्से में कैफ़ी आज़मी रंग मण्डल का कार्यालय खुला...बगल की कोठरी में पुस्तकालय। शाम को लड़कों को नौटंकी का प्रशिक्षण देते और दिन में उन्हीं के हवाले घर छोड़ मदरसे चले जाते। उनका घर सराय था...जिसे बाप के ताने मिलते वह इधर शरण लेता।

मास्टर ने शादी नहीं की....कारण वही, जिससे प्रेम किया वह हिन्दू थी और परिणति संभव न था सो अपने हाथों शादी की मुबारकबादी ग़ज़ल लिखी और गाकर आए महफिल में.....आजीवन कुँवारे रहे और प्रेमियों के जख़्म पर अपनी गजलों का मलहम लगाते रहे।

दुनिया इधर तेजी से बदल रही है.... लखनऊ से चली सिक्स लेंथ सड़क आज़मगढ़ की सरहद तोड़ गाँवों के बीच तो कभी कस्बों के बाज़ार ढहाती...खेत खलिहानों को रौंदती इनके गाँव इब्राहिमपुर को पूरे साल (सन् 2019) धूल और गर्द से भरे है। सबके फेफड़े गर्द से फूल रहे हैं पर खुश हैं कि विकास आया है....खेतों के दाम तेजी से बढ़ रहे हैं। शहर के व्यापारी बीघे के बीघे खेत खरीद बांउड्री उठवा रहे हैं। जिधर सड़क निकल रही है उधर के खेतों के दाम आसमान छू रहे हैं। उस्मान मास्टर को छोड़ सब खुश हैं कि अब उनका गाँव टाउन एरिया हो जाएगा। बाज़ार नजदीक होगा और लड़कों को दुकान धन्धे में लगाना आसान हो जाएगा। मास्टर सुनते तमतमा जाते....

मियाँ! जो खेत गये तो खाओगे क्या? मत भूलो की ये सड़क तुम्हें रोटी देने नहीं तुमसे रोटी छीनने आ रही है। मास्टर इधर जो बयार बही है उससे खासे नाराज हैं....आधी रात को उठ कर टहलने लगते

हैं.....बरगद के नीचे शहीद बाबा के मज़ार से जाकर बतियाने लगते हैं। इधर गाँव भर में शौचालय बन गये हैं पर घूमनी औरतें भी कम जिद्दी नहीं हैं। शुकउवा के उगते खेतों की ओर निकल जाती हैं...आए दिन मास्टर को मजार से बतियाते देख डरने लगी हैं। पूरे गाँव में हल्ला है कि मास्टर के सिर जरूर कोई जिन्नात बैठ गया है या घायल आशिक पगला रहा है। ये हालत है इस गाँव इब्राहिमपुर में उस्मान मास्टर की। इनकी कथा भी यहीं छोड़ती हूँ।

हाँ तो बात अधूरी रह गयी थी मेहरून्निसा की...मेहरून्निसा लंबे कद, सुडौल शरीर की पहाड़ जैसी औरत .....आप उसे औरत देह में तीन मर्द की ताकत रखने वाली औरत कह सकते हैं। खूब मेहनती...पूरे गाँव का सूती तकुए का धागा लच्छा बना रंगना इसी का काम है। पहले दूसरे गाँव से रंग कर धागा आता और कई बार तो हफ्तों धागा समय से न मिलने पर पूरे गाँव में काम ठप्प रहता। मन्दी के समय इस कारोबर पर बहुत बुरा असर पड़ा...लगभग हर घर में फांके कसी की नौबत आ गयी। उस समय मेहरून्निसा ही तारणहार बनी। लोन ले पावरलूम लगाया और धागा थोक में शौहर संग मिलकर उठाया। धागे को रंगने की विधि सीखी और हण्डा चढ़ा पूरे गाँव को मातम से बाहर निकाला। इन दिनों मियाँ बीबी इस गाँव के सबसे बड़े कारोबारी थे। व्यापार में भी मेहरून्निसा बड़े दिल की औरत है...जब तक बुनकर अपना माल बेच नहीं लेते तब तक पैसे का तकाजा नहीं करती, उल्टे मुसीबत में सौ पचास दे ही आती। ज़बान की तेज दिल की नेक मेहरून्निसा इस गाँव की धड़कनों में बसी गाँव को बसाए हुए थी। इन्हीं के शौहर रामलीले के आयोजक होते, लड़के पैसा घटते इनके दरवाजे धरना देते और मेहरून्निसा चिल्लम चिल्ली मचाते हजार पाँच सौ अधिक ही देती इस चेतावनी के बाद कि अब दुबारा मत आना तुम सब और लड़के हँसते हुए मेहरून्निसा ख़ाला को आदाब बजाते निकल लेते।

इब्राहिमपुर इस देश की साझी विरासत का खूबसूरत नमूना, एक साथ शहीद बाबा के मजार से लोहबान तो बगल में बैठे बरम बाबा के चौरे से अगरबत्ती की गन्ध उठती, मस्जिद से उठी अजान की आवाज से बच्चों की भोर होती तो मन्दिर की आरती आगाह करती कि सतबजहिया पैसेंजर का समय हो गया है। बड़े मियाँ पंडी जी के दुवार पर भरूका में खुशी -खुशी चाय पी चले आते और जो कोई कहता कि यह भेदभाव है, डपटकर बताते कि वह मांसाहारी हैं और पंडित सुच्चा शाकाहारी। यहाँ बड़े-बड़े भड़काने वाले आए और मुँह बाए चले गये लेकिन गाँव की एकता बनी रही।

इक्कीसवीं सदी के आरम्भ से नयी पीढ़ी ने कुछ और बदलाव जोड़े...अब बच्चे खान-पान में परहेज को ढोंग कह एक दूसरे के घर खाने -पीने लगे थे। इस बदलाव पर भी नाहक कोई विवाद नहीं था, बड़े बुजुर्ग बच्चों के इस बदलते रूख को जितना मन माने स्वीकार रहे थे। कितना तो सुन्दर था यह गाँव कि एक दिन जैसे पूर्ण सूर्य ग्रहण लग गया हो...मुस्लिम आबादी एकदम से मुसलमान हो गयी..बाबरी मस्जिद का फैसला आया और उस फैसले के कुछ ही दिन बाद नागरिक संशोधन बिल।

उस्मान मास्टर रात भर लिखते पन्ने फाड़ते कागजों के ढेर को देख फफ़ककर रोते हैं कि अब कौन सी नौटंकी लिखें कि उनका गाँव बचे, गाँव के लोग बचें और बची रहे उनके बीच की साझी संस्कृति। उस्मान के रोने से अब किसी को फर्क नहीं पड़ता...यह गाँव जो करघे के नाद-सौन्दर्य पर आँख खोलता था अब घर-घर राम और अल्लाह की चीख में बदल रहा था।

इन दिनों उस्मान अलसुबह डफली ले घर से निकल कर पागलों की तरह गली-गली गाते फिरतें हैं....

चल उड़ जा रे पंछी की अब ये देश हुआ बेगानाऽऽऽऽ

(**परिचय :** लेखिका चर्चित कवयित्री, कहानीकार एवं गाथांतर पत्रिका की संपादक हैं। वर्तमान में आजमगढ़, उ. प्र. में अध्यापन कार्य में संलग्न हैं।) **नोट-** यह कथांश लेखिका के उपन्यास का अंश है, अगले अंक में भी जारी रहेगा।

इच्छा मृत्यु

जमुना बीनी
ईमेल- jamunabini@gmail.com

"मैं कब से तुझे आवाज लगा रही हूँ, सुनाई नहीं देता ? टीवी. देखने में इतनी मशरूफ़!" नाया (दादी) डगमगाती कदमों से जुनायती के पास आकर बोली। जुनायती ने अपनी बगल वाली कुर्सी नाया (दादी) की ओर खिसकाते हुए कहा- "जैसे कि आप बिल्कुल टी. वी. नहीं देखती। जब खुद देखती तो दुनिया-जहान भूल जाती। क्या देखना है आपको? एक-दूसरे को पटकनी देने वाला मार-धाड़ या बंदर, बाघ, भालू ?" जुनायती के छद्म क्रोध पर नाया (दादी) के सुकोमल होठ मुस्कुराहट में फैल गए। नाया (दादी) के उत्तर की प्रतीक्षा किये बगैर जुनायती बोली- "आपको जो भी देखना है, वह मैं लगा दूंगी। बस यह प्रोग्राम खत्म ही होने वाला है।" जुनायती की आतुर आँखें फिर टी. वी. से जा चिपकी।

नाया (दादी) उम्र का चौरासिवां वसंत देख चुकी थी। करीबन एक महीना पहले इलाज के लिए गाँव से ईटानगर आई थी। बढ़ती उम्र के साथ शरीर से ढेरों शिकायतें होने लगीं। गाँव से जो कोई भी आता कहता नाया (दादी) की सेहत अब पहले जैसी नहीं रही, कभी भी कुछ भी घट सकता है। मजबूरन गाँव जाकर जुनायती अपने साथ नाया (दादी) को शहर ले आई। तब से दोनों दादी और पोती डॉक्टरों द्वारा सुझाये अनगिनत मेडिकल टेस्ट करवाने अस्पतालों और डायग्नोस्टिक सेंटरों के खाक छानती फिर रही थीं। नाया (दादी) को शहर तनिक भी सुहा नहीं रहा था। रह-रहकर खेतों, मुर्गियों, सुअरों, बकरियों की याद आती और चुपचाप दो टूक आँसू बहाती। नाया (दादी) जब गाँव में थी तो हर शहर जाने वाले के हाथों जुनायती के लिए उपहार के रूप में मुर्गी भेजा करती थी। अगर कोई मुर्गी ले जाने से मना कर देता तब फिर नाया (दादी) गुस्से में भिन्नाती हुई उसे तमाम प्रकार के अभिशापों से नवाजती। इधर शहर के दो मंजिला दड़बेनुमा सरकारी क्वाटरों में मवेशी पालना बड़ा कठिन था। नाया (दादी) गाँव में भले ही वक्त पर खाना भूल जाये लेकिन रिश्तेदारों से कहकर मवेशियों के लिए चारा-पानी की व्यवस्था करना नहीं भूलती। जुनायती नाया (दादी) के दर्द को खूब समझती थी पर बीमारी में उनको वापस भेजना भी तो अक्लमंदी नहीं थी।

अस्पताल से लौटकर नाया (दादी) का अधिकांश समय टीवी. देखने में गुजर जाता, करने को कुछ होता ही नहीं । नाया (दादी) का पसंदीदा चैनल था नेशनल जियोग्राफ़िक। जंगल, पहाड़, नदी-झरनें, हाथी देखकर प्रकृति के करीब महसूसती और स्वंय को ढांढस बँधाती कि मैं भी जल्द ही स्वास्थ्य-लाभ के बाद अपने जंगल-पहाड़ों पर लौट जाऊंगी। कभी-कभार मन का स्वाद बदलने के लिए इंसानों का एक-दूसरे पर

जोर-आजमाइश करता कुश्ती का चैनल डब्ल्यू. डब्ल्यू. ई. देख लेती। वह हिंदी धारावाहिक कभी न देखती क्योंकि उन्हें भाषा जरा भी समझ में नहीं आती। टीवी. एक मगर देखने वाली दो और दोनों की पसंद अलग-अलग ! इसलिए दादी-पोती के बीच हल्की-फुल्की नोंक-झोंक चलती रहती।

बगल में बैठी नाया (दादी) उंघने लगी। अपनी बारी के इंतजार में थी। रहा नहीं गया तो बोली- "लगता है आज तुम मुझे टीवी. देखने नहीं दोगी।"

"बस नाया (दादी) यह प्रोग्राम खत्म ही होने वाला है" टीवी. पर नजरें गड़ाये जुनायती बोली।

टी. वी. पर चल रही परिचर्चा नाया (दादी) के पल्ले नहीं पड़ रही थी- "भाषा तो मैं समझ नहीं पा रही हूँ लेकिन इतना तो मालूम पड़ता है बहुत तीखी बहसबाजी हो रही है।"

"हाँ, नाया (दादी) विषय ही कुछ ऐसा है।"

"किस विषय पर, मैं भी तो जानूँ।"

समग्र परिचर्चा को संक्षिप्त में समझाती हुई जुनायती नाया (दादी) से बोली- " आप इतना समझ लीजिए कि एक व्यक्ति है उसे लाइलाज बीमारी है। सालों से उसकी स्थिति में कोई सुधार नहीं हो रहा। अपनी दशा से तंग आकर उसने कोर्ट से अपनी मौत की गुहार लगाई है। यानी कि वह अपनी इच्छा से अपने जीवन का अंत करना चाहता है।"

"ओह 'मिसि-मुह' !"

"क्या कहा नाया (दादी) आपने ? " चौंकते हुए जुनायती ने पूछा।

"हाँ 'मिसि-मुह' यानी स्वेच्छा से मृत्यु का वरण।"

" अच्छा इसके लिए हमारी ईदु भाषा में पारिभाषिक शब्द भी है !!"

" होगा क्यों नहीं..! ईदु-मिश्मी समाज में इसका चलन था।"

" क्या..!" आश्चर्य से जुनायती का मुँह खुला का खुला रह गया।

बिना चेहरे पर कोई भाव लिए नाया (दादी) कहने लगी- " देखो नये जमाने के साथ अनेक चीजें पीछे छूट जाती हैं। बहुत छोटी थी तब मैंने कई लोगों को बदतर जीवन को त्यागकर मृत्यु को गले लगाते देखा।"

" रुकिए नाया (दादी)..मैं कुछ समझ नहीं पा रही। क्या देखा आपने..आत्महत्याएँ ?"

आत्महत्या और स्वेच्छिक-मृत्यु के अंतर को समझाती हुई नाया (दादी) बोली- " देख जुनायती दोनों के बीच एक महीन सी रेखा है। 'मिसि-मुह' में होता क्या है कि एक व्यक्ति को उसकी मृत्यु की प्राप्ति के लिए सगे-संबंधी, संगी-साथी और तो और पूरा गाँव उसकी सहायता करता है।"

"आपने किन-किन परिवारों में ऐसा घटित होते देखा ?"

" अरे ज्यादा दूर जाने की क्या आवश्यकता। मेरे मोगे नाबालिया (मोगे चाचा) ने यह कदम उठाया।"

जुनायती ने विस्मय से अपनी हथेलियों से मुँह ढक लिया। कुछ देर मौन रहकर आग्रह भरे स्वर में वह बोली- "नाया (दादी) विस्तार से बताइए न।"

नाया (दादी) ने अपनी आँखें बंद कर ली। बंद सजल आँखों में वर्षों का फ़ासला तय करती हुई अतीत के खुरदरी जमीन पर लौट गयी।

***

मक्खियों की भिनभिनाहट से मोगे की नींद उचट गयी। जब भी शरीर पोर-पोर दुखता वह इसी प्रकार सोने का असफल प्रयास करता। पल भर के लिए नींद आ भी जाती परंतु शरीर पर मंडराती मक्खियों के शोर से अक्सर नींद कच्ची रह जाती। मोगे को 'चेदे-चे' (कुष्ठ रोग) है। शुरूआत में काँख के पास एक फफोला निकला था। आहिस्ता-आहिस्ता पूरा शरीर फफोलों से भर गया। पहले थोड़ा चल-फिर लेता था किंतु अब फफोलों और छालों से उपजे सूजन के कारण घर के एक कोने में कराहता बेकार वस्तुओं की गठरी की तरह पड़ा रहता। केवल चेहरा बचा रह गया था, जाने चेहरे पर कब छालें उभर आयें। जिस कोने को वह अपना ठिकाना बनाता, छालों से निरंतर रिसता मवाद और पीव से उस कोने में दुर्गंध भभकने लगती। अपने ही शरीर की दुर्गंध से उसे उबकाई आने लगती।

इन सात महीनों में मोगे और उसके परिवार पर क्या-क्या न बीता। वे सारे प्रयास करके हार चुके थे। जंगली औषधीय पौधे आजमाया, ईगु (पुजारी) से झाड़-फूंक कराया, चार-पाँच सूअरों की बलि चढ़ाकर अनुष्ठान भी करवाया मगर नतीजा सिफ़र! गुजरते समय के साथ स्थिति बिगड़ती जा रही थी। मोगे की असहनीय पीड़ा और यातना को देख सिवाय रोने के उसके परिजन कुछ भी कर नहीं पा रहे थे। सबसे अधिक व्यथित और असहाय था मोगे का प्यारा 'आप्या' (भैया) चेपोस। वह मोगे पर जान छिड़कता था। उसके संकट और भय को अपना संकट और भय समझने वाला चेपोस के मन की शांति एकाएक गुम हो गयी जब से मोगे को यह दारुण रोग लगा। आस-पड़ोस गाँव के तमाम ईगु (पुजारी) के घरों की दौड़ लगाते-लगाते उसकी हालत भी पस्त हो चुकी थी। जब भी इलाज के लिए कोई नया ईगु (पुजारी) बुलाया जाता एक आस जगती कि मोगे की सेहत में कुछ तो बेहतरी होगी लेकिन सुधार तो दूर की बात उल्टे तबीयत में लगातार गिरावट आती जा रही थी। बड़े से बड़ा ईगु (पुजारी) आमंत्रित कर भव्य पूजा-अनुष्ठान कराया। विधि-अनुष्ठान संपन्न होने के बाद प्रत्येक ईगु (पुजारी) क्षमा-याचना में कहता- "मोगे के ऊपर खिनु (बुरी आत्मा) का प्रकोप है। इस खिनु के पास अपार शक्ति है। इसकी शक्ति का काट हमारे पास नहीं है। क्षमा करें।" पिछले छह-सात महीनों में यह वाक्य इतना दोहराया गया कि सुन-सुनकर चेपोस के कानों के पर्दें बस फटने ही वाले थे। मोगे की नारकीय दशा देखकर अब तो घर वाले भी उसके लिए मौत की कामना करने लगे। परंतु चेपोस को अब भी किसी चमत्कार की उम्मीद थी। उसे लगता रहा, अवश्य कुछ दिव्य घटित होगा और मोगे एकदम से भला-चंगा हो जायेगा। मगर मोगे के उस निर्णय ने चेपोस की सारी उम्मीदों की लौ को बुझा दिया, समस्त आशा-आकांक्षाओं पर तुषारापात कर दिया।

चेपोस ने एक भरपूर निगाह मोगे पर डाली फिर पूछा- " तो तुम्हारा फैसला अटल है ?"

" हाँ आप्या (भैया)। मुझे मुक्ति चाहिए इस अंतहीन पीड़ा से।" मोगे का आत्मविश्वास देख चेपोस चकित रह गया। आगे कुछ कहने का साहस नहीं हुआ। बिल्कुल मौन साध लिया। चेपोस की लम्बी चुप्पी से मोगे असहज हो उठा। गला खँखारते हुए कहा- " आप्या (भैया) कुछ कहिए भी।"

" वाकई तुम सुनना चाहते हो ?"

" हाँ आप्या (भैया)।"

एक-एक शब्द बमुश्किल से उगला- "तुम कायर हो, तुम बहुत स्वार्थी हो। तुम तो बड़े आराम से अपने जीवन का अंत करके चले जाओगे लेकिन जो पीछे छूट जायेगा..उसका क्या ! क्या तुम्हारी यादें उन्हें नहीं सतायेगी। क्या वे चैन से रह पायेंगे? व्यक्ति जन्म लेता है फिर मर जाता है। जन्म और मरण के बीच वह स्मृतियों की पूंजी संचय करता है। और वस्तुओं की भाँति वह स्मृतियों की पूंजी अपने साथ लेकर नहीं जाता। यदि ऐसा होता तो किसी की मृत्यु के साथ ही उसकी सारी यादें भी मिट जानी चाहिए थी। पर नहीं, स्मृतियों की पूंजी यहीं रह जाएंगी। यह पूंजी बड़ी विचित्र है, जितना खर्च करो बढ़ती जायेगी और मन को मथती जायेगी।" कहते-कहते चेपोस की आँखें भीग गयी। मोगे से आप्या (भैया) की आँखों में आँसू देखा नहीं गया। अपनी नजरें चेपोस के चेहरे से हटाकर दूसरी दिशा की ओर देखते हुए बोला- "आप मेरे बारे में जो भी सोचना चाहते हैं, सोचिए। आपको पूरा अधिकार है। ऐसा कौन भाई होगा जो दूसरे भाई की स्वाभाविक मृत्यु नहीं चाहेगा...! किंतु मेरी परिस्थिति बहुत भिन्न है और विशेष भी। मैं अपनी स्वाभाविक मृत्यु की प्रतीक्षा करता रहा हूँ तो इसकी पूरी संभावना है कि इस रोग से घर-गाँव के अन्य लोग संक्रमित हों। मैं तो अकथनीय वेदना भोग रहा हूँ, कोई मेरे कारण यह वेदना क्यों भोगे।" कमजोरी के कारण मोगे बोलते-बोलते रुक जाता, थोड़ा विराम लेता फिर कहना जारी रखता- "आप्या (भैया) आपको लगता है मैं बुज़दिल हूँ। नहीं आप्या (भैया) नहीं।" एक रूखी हँसी हँसते हुए- "मैंने भी इस जीवन से बहुत प्रेम किया मगर प्रेम में छला गया !! दरअसल आप्या (भैया) मैं पूरी हालात को एक दूसरी दृष्टि से देख रहा हूँ। एक शानदार दृष्टि ! जीवन मुझसे कह रहा है अपने परमाधिकार का प्रयोग करो, विरले को ही यह सौभाग्य मिलता है। आपको तो पता ही है बचपन से मुझे साहसिक कार्यों में कितना आनंद आता था। आपसे कहा भी था कि मैं बड़ा होकर भालू मारुंगा। बाद में भालू मारा भी। वह भालू भी न मेरी कल्पना से अधिक ताकतवर निकला। भालू के साथ मैं भी ढेर हो जाता वह तो ऐन मौके पर आकर आपने मेरा प्राण बचा लिया। मालूम है, इस बार भी आप मुझे बचाना चाहते हैं। मगर आप्या (भैया) यह मेरे जीवन का अंतिम साहसिक कार्य होगा, इसमें आप कोई विघ्न नहीं डालेंगे मैं कह देता हूँ। पूरी निष्ठा के साथ मैं स्वयं इसे अंजाम देना चाहता हूँ।

मौत भी इतनी मनहूस है कि सब लोग इससे भय खाते हैं लेकिन मैं नहीं आप्या (भैया)। पूरे होशो-हवास में अपने परमाधिकार का प्रयोग करते हुए अपनी इच्छा से मैं अपने लिए मौत को चुन रहा हूँ। हूँ न मैं हिम्मतवाला..?"

चेपोस भला क्या उत्तर देता। मोगे के तर्क ने उसे निरुत्तर कर दिया। चेपोस से कोई उत्तर बनता न देख मोगे ने आगे कहा- "जीवन को भार जैसा ढोता हुआ जीना नहीं चाहता और मौत भी घिनौनी नहीं चाहिए। अपने लिए एक शानदार मौत चाहता हूँ। बस आपसे सहायता चाहिए। मेरी एक अंतिम इच्छा है।" अंतिम शब्द सुनकर चेपोस का दिल बैठ गया। किसी तरह स्वयं को संयत करते हुये चेपोस बोला- "बेहिचक बोलो।"

"आप्या (भैया) मृत्यु के बाद मेरी रोगी आत्मा पुरखों के लोक में प्रवेश पा भी जाए तो वे मेरा आव-भगत करेंगे कि नहीं इसे लेकर मेरे मन में शंका कुलबुला रही है। पुरखों के संग उठना-बैठना, खाना-पीना नसीब होगा कि नहीं मैं नहीं जानता।" कुछ ठहरकर व्यंग्य भरी हँसी के साथ- "उस लोक में मेरी मलिन रोगी आत्मा का क्या हश्र होगा खैर यह तो वहाँ पहुँचकर देखा जायेगा। पर इतना तो निश्चित है इस लोक से मैं हँसी-खुशी विदा होना चाहता हूँ। अपनी मौत का जश्न मनाता हुआ। सबको दिखलाना चाहता हूँ अरे मौत उतनी भी अप्रिय नहीं जितना लोगों ने इसे समझ रखा है। कल आप सारे रिश्तेदारों को एकत्र करेंगे दावत के लिए। अंतिम बार सबको देखूंगा फिर सब साथ भोज करेंगे। तन-मन से तृप्त होकर इस लोक से महाप्रस्थान करूं यही मेरा इरादा है।" आने वाले कल के बारे सोच मोगे की आँखें आशा से चमक उठीं। अरसे बाद चेपोस ने अपने भाई की वीरान बुझी आँखों में यह चमक देखी थी। सूनी आँखों से निकलने वाली रोशनी में मोगे का समूचा व्यक्तित्व नहा उठा। सो भला चेपोस कैसे न कहता। रजामंदी में उसने बोला- "ऐसा ही होगा।"

****

मोगे का करुण निमंत्रण चेपोस ने घर-घर और दूसरे गाँवों में रहने वाले सभी संबंधियों तक बड़े जतन से पहुँचाया। जिसने भी दया पूरित आमंत्रण को सुना उसके मुँह से सर्द भरी आहें निकलीं। भेंट के रूप में जो भी लोगों के पास था..सूअर, मुर्गी, मदिरा सब चेपोस के घर भिजवाया ताकि दावत में कोई कोताही न रह जाए।

चेपोस के घर की किशोरियाँ जंगल जाकर टोकरी भरकर साग-सब्जी तोड़ लायीं और चावल से कंकड़ चुनकर धोकर भात और सब्जी पकायीं। घर की अधेड़ महिलाएँ ध्यानमग्न मदिरा छानने में व्यस्त तो लड़कें मदिरा और पानी पीने के लिए बाँस काटकर चोंगे बनाने में निमग्न थे। घर के वयस्क पुरुषों ने भेंट में मिला सूअर-मुर्गी को मारकर स्वादिष्ट माँस पकाया।

एक-एक कर परिजनों का घर में आना प्रारंभ हुआ। चेपोस द्वार पर खड़ा सबका स्वागत कर रहा था। लोगों की बढ़ती संख्या को देख चेपोस को अनुमान हो गया घर दावत के लिए छोटा पड़ रहा है। घर के भीतर झांका तो देखा पांव धरने तक की जगह नहीं। कोने-कोने तक लोग बैठे हुए हैं तो कुछ पसरे हुए हैं।

चेपोस ने लड़कों को बुलाकर कहा लोगों को सम्मान के साथ घर के नीचे वाले समतल भूमि पर ले जाओ। पहाड़ी टीले पर स्थित घर से लोगों की पंक्ति धीरे-धीरे उतरती हुई समतल मैदान में आ गयी। मेजबानों ने भोज के सभी व्यंजनों को नीचे पठार पर व्यवस्थित किया। सारे बंदोबस्त के बाद चेपोस और कुछ लड़के मोगे को नीचे लोगों के बीच उतार लायें। सबकी आँखें मोगे की ही राह देख रही थी।

ज्यों ही लोगों की दृष्टि मोगे पर पड़ी श्रद्धा और करुणा से अँखियाँ नम हो आईं। मोगे के चेहरे पर जरा सी भी शिकन नहीं थी। अनुपम कांति से चेहरा रौशन, उसकाआह्लाद उसकी आवाज में स्पष्ट झलक रहा था- " आप सबको एक साथ यहाँ देखकर मन धनेश पक्षी के पंखों के समान हल्का हो आया। आप लोगों से विनती है आप में से कोई नहीं रोएगा। आँसुओं का गीला बोझ लेकर मेरी आत्मा यात्रा नहीं कर पायेगी। मार्ग फिसलन भरा होगा। दुआ करें मेरी यात्रा सुगम हो। मैं समझता हूँ यह वक्त लम्बी-चौड़ी बातों का नहीं, जश्न का है। आप सबको शोक मनाने के लिए नहीं, मृत्यु-उत्सव मनाने के लिए आमंत्रित किया है मैंने। वैसे भी अपने मन की सारी बातें आप्या (भैया) से कह चुका हूँ। हाँ..एक बात कहना भूल गया था कि मेरी मृत्यु का संस्कार किस ईगु (पुजारी) के देख-रेख में संपन्न होगा? अपने लिए उत्कृष्ट और असाधारण मृत्यु चाहता हूँ तो ईगु (पुजारी) भी तेजस्वी और दिव्य शक्तिधारी चाहूँगा। ईगु में सर्वश्रेष्ठ ईगु कोतिगे मिमि को मैं चुनता हूँ। यह अच्छा होगा कि वही मृत्यु के समस्त विधि-नियमों को संपन्न कराकर मुझे अनुग्रहित करें।" ईगु कोतिगे अति सम्मानित ईगु (पुजारी) था। सभी उनकी अलौकिक शक्ति से परिचित थे। उनके विषय में कई किस्से-कहानियाँ लोक में प्रचलित थीं। मोगे की बुद्धिमत्ता की सबने दाद दी।

दावत परोसा जाने लगा। लोगों ने पेट भर भात-माँस खाया, खूब छककर मदिरा पीया। मोगे अधरों में मृदु हाँस सहेजे तब तक खाता पीता जब तक अघा नहीं गया। फिर नशे में होकर बेसुध लुढ़क गया।

****

भोर की तंद्रा को पक्षियों के कलरव ने तोड़ा। मोगे महीनों बाद गहरी और मीठी नींद सोया था। जागा तो मन हल्का-फुल्का इतना कि कुछ देर के लिए तन का सारा कष्ट बिसर गया। शारीरिक कष्टों पर जीत से अधिक उसे अपनी मानसिक दुर्बलता पर फतह की खुशी ज्यादा थी। बीमार शरीर को लेकर लम्बे समय तक निर्णय-अनिर्णय की दुविधापूर्ण स्थिति से जूझा था। दोराहें पर खड़ा जीवन के लिए एक राह तो चुनना था ही। जीवन में पहली बार भान हुआ चुनने की आजादी व्यक्ति का सर्वोत्तम अधिकार होता है।

चेपोस पहले जाग चुका था। अपने अनुज की प्रसन्नचित्त मुखमुद्रा देख पुलकित स्वर में कहा- " अनुष्ठान में प्रयोग के लिए बाँस और पत्ते लाने के लिए लड़कों को निकट के जंगल में भेज दिया है।" मोगे ने द्वार की ओर ताकते हुए कहा- " ईगु कोतिगे भी आते ही होंगे।" बस कहने भर की देरी थी। ईगु कोतिगे अपने आनुष्ठानिक पोशाक में सज-धज कर साथ दो सहायकों को लेकर दरवाजा पर नमूदार हुये।

आते ही ईगु कोतिगे और उनके सहायक अनुष्ठान की तैयारी में लग गये। लड़के भी जंगल से आ गए पत्तों और बाँसों के साथ। ईगु कोतिगे से निर्देश पाकर उनके सहायकों ने मोगे का नाप लिया ताकि उसके माप की 'आग्रा' (टोकरी) बुनी जा सके जिस पर सवार होकर मोगे 'ब्रो' (कब्र) तक का सफर तय करेगा। कुष्ठ रोगियों के शव को इसी रीति से ब्रो (कब्र) तक पहुँचाया जाने का रिवाज था। किशोरों ने मिलकर अपने भुजा-बल का प्रदर्शन करते हुए चंद घंटों में ही मिट्टी खोदकर ब्रो (कब्र) तैयार किया। मोगे की भाभी और अन्य औरतों ने मोगे के कपड़े-लत्ते, खाने-पीने के बर्तन वगैरह पोटली बनाकर बाँध दीं, पोटली को ब्रो (कब्र) में डालना आवश्यक था वर्ना मोगे की आत्मा अपने साजो-सामान खोजती हुई घर में वापस लौट आएगी।

मोगे शांतचित्त होकर अपनी मृत्यु का सारा इंतजाम देख रहा था। जिज्ञासा भरी आँखें देख रही थी ब्रो (कब्र) की खुदाई जहाँ लेटकर कभी न जागने के लिए अनंत निद्रा में वह सोने वाला था। देख रहा था भाभी को अपने वस्तुओं की पोटली बाँधते हुए, वे वस्तुएँ जिसकी उपयोगिता अब उसके लिए समाप्त हो चुकी थी। देख रहा था बाँस के पतले-पतले रेशों को आग्रा (टोकरी) का आकार लेते हुए जिस पर वह लदकर अपने अंतिम गंतव्य तक पहुँचने वाला था। देख रहा था विदाई देने के लिए गाँव-गिराँव के लोगों को उमड़ते हुए। मोगे अविचल होकर सब देख रहा था..सब कुछ अनुभूत कर रहा था..जीवन-डोर को क्षण-क्षण टूटते हुए ! मोह के सारे जकड़नों को तोड़ फेंकने का गर्व था उसे। आखिर व्यक्ति के लिए जीवन के मोह से बढ़कर बड़ा मोह होता भी है कोई !!

चेपोस ने इस उम्मीद से आखिरी बार मोगे को गौर से देखा कि कहीं वह अपना विचार बदलने का तो नहीं सोच रहा। मन से चाह रहा था काश ऐसा हो। मगर मोगे की आँखों में जीवन के प्रति घोर विरक्ति और अनासक्ति का भाव दिखा। फिर कुछ पूछने-पाछने का साहस नहीं हुआ। उसने भी अपना हृदय कठोर कर लिया। एक बार उसने उड़ती हुई निगाह से लोगों का रेलमपेल देखा जो मोगे के निर्णय के सम्मान में जा जुटे थे।

लगभग सारी तैयारियाँ पूरी हो गई थी। ईगु कोतिगे का मंत्र बुदबुदाता होंठ रुककर 'बादु' (कंबल) लाने का आदेश दिया। कंबल लाया गया। उन्होंने कंबल मोगे की देह पर लपेटा। उन्होंने और चेपोस ने साथ मिलकर मोगे को आग्रा (टोकरी) पर चढ़ाया। टोकरी पर चढ़ने से पूर्व मोगे ने लोगों से अनुरोध किया कि वे रोयें नहीं, रोने से उसकी यात्रा दुसाध्य और दुर्गम होगी। पर यह लोगों के लिए कितना कष्टकर था, लाख प्रयासों के बावजूद वे अपनी सिसकियाँ दबा नहीं पा रहे थे। ईगु कोतिगे आग्रा (टोकरी) को पीठ पर लादकर घर से ब्रो (कब्र) की ओर चल पड़ा। ब्रो (कब्र) के पास पहुँचते ही झुककर आग्रा (टोकरी) को नीचे किया। चेपोस ने आगे बढ़कर मोगे को आग्रा (टोकरी) से उतरने में सहायता की । मोगे ने उमड़ी भीड़ की ओर अंतिम दृष्टि डाली। उस दृष्टि में आद्रता थी, उत्साह और उत्कंठा भरी आद्रता। नयी यात्रा के आरंभ का एक उतावलापन था। ईगु कोतिगे और चेपोस की मदद से वह ब्रो (कब्र) में उतरा। उतरते ही पहले से बिछा

बिछावन में लेट गया। ईगु कोतिगे ने लेटे मोगे के हाथों में बाँस की पतली-लंबी हरी पत्तियाँ थमा दी ताकि दूसरे लोक में मच्छर-मक्खियों को पास भिनभिनाने से दूर भगाया जा सके। उसके बाद मोगे ने दोनों आँखें मींच लीं। ईगु कोतिगे ब्रो (कब्र) से ऊपर आये, अंजुरी में मिट्टी भरकर चेपोस को दिया। चेपोस ने नीचे लेटे भाई के शरीर पर पहली मिट्टी डाला। फिर लोग आगे आते गए और हथेलियों में मिट्टी लेकर डालते गए। ब्रो (कब्र) मिट्टी से भर गया तब बड़े-बड़े गोल शिलाखंडों से ब्रो (कब्र) को चारो ओर से ढक दिया गया। चेपोस ने ऊपर नभ की ओर ताकते हुए एक तीर खींचकर छोड़ा। मोगे ने भालू मारा था। मरा हुआ भालू की आत्मा मोगे की यात्रा में खलल डाल सकती थी, इसका पूरा अंदेशा था। भाई के प्रति अपने कर्तव्य को चेपोस ने मनोयोगपूर्वक पूरा किया।

****

"'नाबा' (पिता) चेपोस ने एक बूँद आँसू नहीं बहाया। सारी पीड़ा भीतर-भीतर ही ज़ज्ब कर लिया। दोनों ही भाई बहादुर थे।" कहकर नाया (दादी) ने एक लम्बी साँस भरी। नाया (दादी) के पलकों के कोर से कुछ अश्रु के कण चुहचुहा रहे थे। डबडबाती आँखों से जुनायती ने कहा- "पर नाया (दादी) आजकल चेदे-चे (कुष्ठ रोग) लाइलाज नहीं है।" नाया (दादी) ने हाँ मिलाते हुए कहा- "हाँ आज का समय होता तो नाबालिया (चाचा) मोगे का उचित उपचार होता। वह ठीक हो जाता। अपना घर-संसार बसाता। उनके बाल-बच्चे होते। नाती-पोते होते। केवल नाबालिया (मोगे) की ही बात नहीं, उन सभी लोगों की बात कर रही हूँ जिनको इस रोग ने ग्रसा। पर जुनायती मैं इतना ही कहूँगी प्रकृति के अंतर में अनेक अबूझ रहस्य छिपे हैं जो समय के साथ खुलता है। तब नहीं खुला था अब खुल गया।"

जुनायती सोचने लगी आज भले ही युवा ईदु-मिश्मी अपने समाज के उस कड़वे अतीत को पचा नहीं पाये किंतु वह उस दौर का त्रासद सच था।

(**परिचय :** लेखिका युवा कवयित्री एवं कहानीकार हैं। वर्तमान में राजीव गांधी विश्वविद्यालय, ईटानगर, अरुणाचल प्रदेश के हिंदी विभाग में असिस्टेंट प्रोफ़ेसर पद पर कार्यरत हैं।)

त्रासदी

महेंद्र भीष्म

संपर्क- 8004905043

भारत गणराज्य के उत्तर प्रदेश प्रांत की राजधानी लखनऊ कभी बागों के शहर के नाम से जानी जाती रही है। आज भी यहां के कई मोहल्लों के नाम के साथ बाग लगा है जैसे सुंदरबाग, बादशाहबाग, ऐशबाग, आलमबाग, चारबाग इत्यादि। चारबाग क्षेत्र, यहां वर्तमान में एक भी बाग नहीं है, चारबाग के नाम से प्रसिद्ध है। प्रसिद्धि का एक बड़ा कारण यहां स्थित रेलवे स्टेशन की बनी भव्य गुंबदाकार इमारत है, जो पहली बार लखनऊ आए किसी भी पर्यटक का दिल मोह लेने के लिए पर्याप्त है। इस इमारत और इसके साथ फैले रेलवे परिक्षेत्र को चारबाग रेलवे स्टेशन के नाम से जाना जाता है। कहानी इसी चारबाग रेलवे स्टेशन के प्लेटफार्मों के बीच की है।

वंशी साफ-सफाई के कार्य के लिए यहीं पर नियुक्त था। सुंदर और सुघड़ धर्मपत्नी रति और तीन बच्चों के साथ उसका जीवन सुखमय व्यतीत हो रहा था। रेलवे कॉलोनी में स्थित उसके क्वार्टर में ब्लैक एंड व्हाइट टीवी और फ्रिज; दोनों थे। उनकी दोनों जुड़वा बेटियां केंद्रीय विद्यालय में कक्षा चार की छात्रा थीं और इकलौता बेटा दीपक चार साल का हो रहा था जिसे इसी वर्ष के नये शैक्षणिक सत्र से स्कूल जाने के लिए वंशी व रति प्रोत्साहित कर रहे थे।

वंशी में अच्छाई यह थी कि वह हँसमुख, मिलनसार और किसी भी प्रकार के नशे का आदी नहीं था। दूसरों की मदद करना, ड्यूटी लगन से करना और घर की साफ सफाई व कार्यों में रति का हाथ बंटाना; उसका शगल था।

बंशी सांवला जरूर था पर कद-काठी व स्वस्थ शरीर का तीस-बत्तीस वर्ष का सुंदर सलोना पुरुष था। घुंघराले बाल और हंसने-बोलने पर चमकते सफेद दांत देखने में अच्छे लगते। इसी तरह रति भी आकर्षक मुख्य मुद्रा और तीखे नैन-नक्श के साथ गौर वर्ण होने के साथ मोहिनी थी। जो एक बार उसकी ओर देख लेता तो विश्वास ही नहीं करता था कि वह सफाई कर्मचारी की पत्नी है। वह ऊंचे घर-परिवार की या किसी अधिकारी की पत्नी से कम नहीं लगती थी। कई बार तो वंशी के संगी साथी व उसे जानने वाले अटकलें लगाने लगते कि वंशी जरूर अपनी बीवी को कहीं से भगा के लाया है। दोनों पति-पत्नी के बीच भरपूर प्रेम था। कभी-कभी जब वे खाली होते तो किसी प्लेटफार्म की किसी भी खाली पड़ी बेंच पर बैठकर घंटों बतियाते। देखने वाले यात्रीगण महसूस करते 'प्रेमी जोड़ा है' और मन ही मन कनखियों से रति को जरूर देखते और बंशी के भाग्य की सराहना करते न थकते और सफाई कर्मी की वेशभूषा में बैठे बंशीऔर सजी-संवरी रति की जोड़ी के तार अमृतलाल नागर रचित उपन्यास 'नाच्यौ बहुत गोपाल' के नायक-नायिका से जोड़ते, कल्पना करते।

ऐसे ही किसी एक दिन पता नहीं किसकी बुरी नजर इस जोड़ी को लग गयी। रति के ऊपर पहाड़ टूट पड़ा। इंजन की शंटिंग के दौरान पता नहीं किस बेख़्याली में डूबा वंशी दुर्घटनाग्रस्त हो गया। मौके पर ही उसकी देहलीला समाप्त हो गयी।

अनुकम्पा के आधार पर रति को पति के स्थान पर जल्दी ही नौकरी मिल गयी, रहने को आवास था ही। नन्हा दीपक दोनों बड़ी बहनों के साथ स्कूल जाने लगे। रति अपनी ड्यूटी जाने लगी।

पति का अभाव उसे हर पल, हर पग पर महसूस होता था। उसकी निर्दोष सुंदरता के आकर्षण से आकर्षित कामुक-व्यभिचारी उस पर कुदृष्टि रखने लगे थे। अच्छे-बुरे की परख में कच्ची रति को उनकी लुभाती बातों में दया और उदारता दिखती पर, क्रमशः उस दया और सहानुभूति के पीछे छिपी मंशा उसे समझ में आने लगती और धीरे-धीरे वह ऐसे लोगों से किनारा करने लगी।

बंशी के देहावसान को पांच माह ही बीते थे कि बहुत दिनों से वासना के दो भेड़ियों ने घात लगाकर एक दिन जेठ मास की कड़ी दोपहर में मौका पाकर रति को दबोच लिया और उसे गलत इरादे से मालगाड़ी के खाली डिब्बे में पकड़ कर ले गये। दुष्टों ने उसका मुंह पूरी तरह दबा रखा था, चिल्लाना तो दूर; वह कराह तक नहीं सकती थी...ईश्वरीय संयोग ! प्लेटफार्म पर ही लोगों को नाच-गाना दिखा कर अपना पेट पालने वाली हिजड़ा सुंदरी ने रति के साथ हो रही जोर-जबरदस्ती को दूर से देख लिया था। वह भागी-भागी उस मालगाड़ी के डिब्बे में पहुंच गई जहां वहशी अपना वहशीपन करने जा रहे थे। सुंदरी बेतहाशा चिल्लाते हुए उन दोनों पर टूट पड़ी। बदमाशों के चंगुल से छूटी रति भी चीखने-चिल्लाने लगी। जल्दी ही जी.आर.पी. के दो सिपाही चीख-पुकार सुनकर वहां आ गये। दोनों दुष्ट बदमाश तब तक सुंदरी को चाकू से बुरी तरह घायल कर भागने लगे, पर भाग न पाए और पकड़े गये।

सुंदरी का रेलवे अस्पताल में लंबा इलाज चला। लगभग एक माह अस्पताल में भर्ती रही, फिर रति उसे अपने क्वार्टर में ले आई। इस एक माह में दोनों के बीच जिस प्रेम ने जन्म लिया, उसे आत्मिक प्रेम या आज की भाषा में अशरीरी फार (प्लेटोनिक लव) कहा जा सकता है। एक हिजड़ा और एक स्वस्थ सुंदर विधवा स्त्री के मध्य विकसित प्रेम गंगा की तरह पवित्र, एक दूसरे के दुःख-दर्द को समझते हुए आकार लेने लगा। रति के बच्चे सुंदरी को बुआ का संबोधन देने लगे। सुंदरी पूर्व की भांति अपना साज-श्रृंगार कर नाचने-गाने जाने लगी, पर चाकू के वार से बिगड़ गया चेहरा, पहले की तरह लोगों को आकर्षित कर इनाम पाने में मुश्किलें पैदा करने लगा। हां लोग हिजड़ा समझ भिखारी की तरह उसे व्यवहार करने लगे और इनाम के स्थान पर भीख-सी दे अपना पीछा उससे छुड़ाने लगे। हिजड़ा रूप से पहले से दुःखी सुंदरी अपनी कुरूपता से मन ही मन और दुखी रहने लगी थी।

सुंदरी की स्थिति से रति अनभिज्ञ न रह सकी। वह उसकी मनोदशा देख उसे खुश रखने का प्रयास करती, उसे प्रोत्साहित करती रहती। लोगों के तानों को अनसुना कर देती कि रति एक हिजड़ा से दिल लगा बैठी है। लोगों के बीच उन दोनों के रिश्ते को लेकर तरह-तरह की काल्पनिक बातें पनपने लगी थीं। रति ने

किसी की कोई परवाह न करते हुए सुंदरी को अपने पास रखा। अब वह सुंदरी को अपने साथ ड्यूटी पर भी ले जाने लगी थी। सुंदरी के साथ रहते रति को अपने चारों ओर सुरक्षा का आवरण-सा महसूस होता। पहले होने वाली छींटाकशी से उसे मुक्ति-सी मिल गयी थी। पुरुष प्रधान समाज में छुपे सफेदपोश भेड़ियों से उसकी रक्षा करने में एक सुंदरी जैसी हिजड़ा काफी था।

दिन, महीने और वर्ष बीतने लगे। रति ने दोनों जुड़वा बेटियों का विवाह अच्छे वर ढूंढ़कर कर दिया। बेटा दीपक पढ़ाई में कमजोर निकला और गलत सोहबत में पढ़ आवारागर्दी करने लगा था। उसे सुंदरी बुआ फूटी आंखों न सुहाती थी। लोगों की तानों और कटुवाणी को पूछता-सुनता वह बड़ा हुआ था। मां से सुंदरी को लेकर अक्सर लड़ जाता था और पैसे लेकर अपनी जिद पूरी करता। सुंदरी के एवज में रति द्वारा बिगड़ैल बेटे की अच्छी-बुरी जिद पूरी करते चले जाना दीपक के आवारागर्दी की ओर बढ़ते जाने का एक कारण बन गया। इधर प्रौढ़ हो चुकी रति पेट दर्द से बचने व शौचालय जाने के समय बीड़ी पीने की बुरी आदत पाल बैठी थी और यह बुरी लत उसे सुंदरी से मिली थी। मां का बीड़ी पीना और सुंदरी से बातें करना दीपक को जरा भी नहीं भाता था, सो सुंदरी ने अपना डेरा रति के घर से हटाकर चारबाग रेलवे स्टेशन पर पूर्व की भांति जमा लिया था, जहां ड्यूटी से खाली हो रति उससे मिलने-बतियाने पहुंच जाती। वहीं सुकून से सुंदरी के साथ बीड़ी पीती, सुख-दुःख की बातें करती, फिर वापस अपने क्वार्टर में आ जाती। सुंदरी से मिलना और बीड़ी पीना धीरे-धीरे उसने कम कर दिया था, दीपक के सामने तो कतई नहीं।

जहां रति बेटियों के सुखद गृहस्थ जीवन से खुशी थी वहीं बेटे की आवारागर्दी से दुखी रहती थी। अब बेटे के धंधे-पानी के जमने और उसके ब्याह को लेकर रति चिंतित रहने लगी थी।

मनुष्य का जीवन त्रासदी भरा रहता है। जब तक वह जीवित है, त्रासदियाँ उसके इर्द-गिर्द बनी रहती हैं। कॉलोनी में ही रहने वाली एक लड़की से दीपक के संबंध बन गए थे। वह लड़की दीपक के बच्चे की मां बनने वाली थी। लड़की के मां-बाप ने रति के पास आकर बवाल काटा। पंचजनों की राय बनी और दीपक का ब्याह उसी लड़की से दीपक की मर्जी के बिना कर दिया गया। दीपक ने सारे फसाद की जड़ में सुंदरी का योगदान ज्यादा समझा। वह सुंदरी से पहले से ही चिढ़ता था, अब उससे मन ही मन नफ़रत करने लगा था। उसे जीवन साथी के रूप में स्वप्न सुंदरी चाहिए थी और मिल गई साधारण रंग-रूप वाली, जो भी जग-हँसाई के बाद, जबकि सत्यता कुछ और थी। समाज के चार लोगों का दबाव था, बेटा बलात्कार के इल्जाम में जेल की चक्की पीसे या शादी करे। रति ने जवान बेटे को जेल जाने से बेहतर उसका ब्याह कर देना ठीक समझा। बहु सुंदर नहीं थी पर इतनी बुरी भी नहीं थी। रहने, बैठने-ओढ़ने का सलीका उसे आता था। खाना बनाना और घर के अन्य कार्यों के अलावा सास की सेवा पूरे मनोयोग से वह करती। जल्द ही रति से वह घुल-मिल गयी। समय आने पर एक सुंदर स्वस्थ बेटे को जन्म देकर बहू ने रति का हृदयांगन खुशियों से भर दिया। रति को लगा जैसे दीपक ने पुनः उसकी कोख से जन्म लिया हो। पोता बिल्कुल उसके बेटे पर गया था और बेटा दीपक उसके स्वर्गवासी पति की प्रतिमूर्ति था। सो पति और बेटे दोनों के अक्स पोते में पा रति

निहाल हो उठी। बेटियां चंगलियां साथ लाईं, सप्ताह भर हंसी-खुशी रहीं, फिर अपनी-अपनी ससुराल लौट गईं। बेटियां क्षणिक सही पर अपना सच्चा स्नेह प्यार अपनी मां पर लुटा चली गयी।

रति की तनख़्वाह से घर-गृहस्थी ठीक-ठाक चल रही थी। रोज की तरह एक दिन रति अपनी ड्यूटी समाप्त पर प्लेटफॉर्म नंबर पांच पर सुंदरी से दीपक के लिए प्लेटफार्म पर ही रेलवे से स्वीकृति ले पूड़ी-सब्जी का ठेला लगाने की बात कर रही थी। तभी दीपक मां को ढूंढता वहां आ पहुंचा। मां को सुंदरी से हँस-हँसकर बातें करते और बीड़ी का कश लगाते देख दीपक के तन-बदन में आग सी लग गयी। वह कुछ बोला नहीं, आगे बढ़ा और सुंदरी को गाली देता उस पर झपट पड़ा। रति जवान बेटे के बलिष्ठ हाथों से सुंदरी को बचाने का प्रयास करने लगी। लोगों का हुजूम एकाएक हुए बवाल को देखकर उस ओर बढ़ आया। वर्षों की नफ़रत से भरे दीपक ने आव देखा न ताव सुंदरी को गठरी-सा उठा लिया और प्लेटफॉर्म के नीचे फेंक दिया। तभी वहां धड़धड़ करता हुआ मेमू ट्रेन का इंजन आ गया और सुंदरी की चीख घुटकर रह गयी। देखने वालों की आंखें पलक झपकते घटी इस हृदय विदारक घटना को देख फटी की फटी रह गईं। रति की उंगलियों के नाखून दीपक के कंधे पर पड़ गये। वह खड़ी न रह सकी और तेज चीख के साथ वहीं प्लेटफार्म पर ढह गयी।

(**परिचय :** लेखक चर्चित कथाकार हैं। वर्तमान में उच्च न्यायालय, लखनऊ में निबंधक सह प्रधान न्यायपीठ सचिव के पद पर कार्यरत हैं।)

निशी आदिवासी किंवदंती

तानी

डॉ. जोराम यालाम नाबाम
संपर्क- 9436044288

कोई आवाज़ नहीं थी, चारों ओर गहरा सन्नाटा.....निस्तब्धता का अनंत विस्तार....न कोई रंग, न कोई हलचल। प्रकाश भी नहीं, अंधकार भी नहीं। एक विशेष अवस्था अस्तित्व में थी, जिसे 'सेदी', 'जिमी-जमा', 'न्योदो', 'दोत:'. 'मिलो', 'मेदाङ्' आदि नामों से पुकारा गया। इन समस्त नाम-शब्दों का एक ही अर्थ है---'महाशून्य'। इसे 'महागर्भ' भी माना जाता है, जिसे 'जिमी तानी' अथवा 'जमा तानी' कहा जाता है। जिमी शब्द स्त्रीलिंग है, जबकि जमा पुल्लिंग। स्मरणीय है कि सेदी और मिलो को भी स्त्री प्रतीक माना जाता है तथा न्योदो और दोत: को पुरुष प्रतीक।

महाशून्य का न कोई रूप है, न कोई आकार। उसे स्त्री और पुरुष, दोनों का सम्मिलित स्वरूप स्वीकार किया जाता है। यह महाशून्य सर्वत्र व्याप्त है तथा सर्वदा मौन है। विश्वास किया जाता है कि समस्त जीव इस महाशून्य से ही उत्पन्न हुए हैं, अत: सब उसी के हैं। इस कारण उसकी बलि नहीं चढ़ाई जाती है। महाशून्य अथवा महागर्भ को जिमी और जमा कहा गया है और विश्वास है कि जिमी (स्त्रीलिंग होने के कारण) माता तथा जमा (पुल्लिंग होने के कारण) पिता है। इस विश्वास के चलते यह माना जाता है कि ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी दृश्यमान है, वह माता जिमी तथा पिता जमा का ही व्यक्त स्वरूप है।

महाशून्य (महागर्भ) से अचानक सूर्य, चन्द्रमा और तारे उत्पन्न हुए। इन्हें आँखें कहा गया। आँखें साक्षी होती हैं।

सूर्य के अनेक नाम हैं--- 'अजङ्', 'मीदो', 'दोनी', 'अजी' आदि। उसे माता, मौसी, नाना, नानी, सास आदि भी माना गया है। उन्हें माता जिमी और पिता जमा की आँखें कहा गया है। विश्वास है कि माता सूर्य की दृष्टि जहाँ-जहाँ पड़ती रही, वहीं-वहीं जीवन के अंकुर फूटते रहे। अग्नि भी माता सूर्य का ही स्वरूप है। धरती के भीतर भी सूर्य का अंश विद्यमान हैं, जिसे 'माता दुगनन' कहा जाता है। सूर्य माता दुगनन के रूप में हमेशा उदित होता है, लेकिन उसका स्वभाव और कार्य पुरुष का माना जाता है।

चन्द्रमा के भी एकाधिक नाम हैं, जैसे 'पोलो', 'हाई' आदि। जल को भी उसी का रूप माना जाता है। सूर्य के समान चन्द्रमा को भी कभी ससुर, कभी मौसा, कभी नाना के रूप में देखा गया है। उसे पिता भी माना गया है। शीत ऋतु में उसे 'माता दाक्का आने' कहा जाता है।

जब अंधकार अपने चरम पर होता है और प्रकाश की आवश्यकता होती है, तो पोलो आता है, ठीक वैसे ही, जैसे संकट काल में पिता अपनी संतान की रक्षा के लिए सामने आ खड़ा होता है। पोलो अपनी किरणों के हाथों में अपनी संतानों के हाथ थाम कर उन्हें गंतव्य तक पहुँचाता है।

चन्द्रमा अधिकतर काम माता के रूप में करता है, सूर्य से कहीं अधिक। इसके बावजूद उसे पिता कहा गया है, क्योंकि वह कई-कई दिन दिखाई नहीं देता, अर्थात् अपनी संतान के निकट नहीं रहता, जबकि माँ हमेशा रहती है, इस कारण वह पिता की भूमिका में मानी जाती है।

चन्द्रमा 'पोल', अर्थात् ऋतु है। जब उसकी कलाएँ आधी होती हैं, तो मनुष्य के शरीर में कुछ बदलाव दिखाई देते हैं, जैसे कमर में दर्द का होना। जब उसकी कलाएँ बढ़ती हैं और उसका आकार बढ़ने लगता है, तो चूहे शोर करते हुए अपने बिलों से बाहर आने लगते हैं। जब आसमान में पूरा चाँद विराजने को होता है, तो यह इस बात का संकेतक माना जाता है कि बाँस इस्तेमाल के लिए तैयार हो गया है। अगर उसे अभी नहीं काटा गया, तो उस पर दीमक हमला कर देगा और बाँस की फसल किसी काम नहीं आ सकेगी। आकाश में चन्द्रमा के चमकने की एक दशा ऐसी होती है, जब एक चिड़िया गाने लगती है। वह गा-गा कर संकेत करती है कि फसल की कटाई का समय हो गया है। इस प्रकार चन्द्रमा को वह शक्ति माना गया है, जिसके कारण मौसम का अनुमान किया जा सकता है और जिसके प्रभाव में मनुष्य जीवन-यापन का निर्धारण करता है। इसी कारण ऋतु को 'पोल', अर्थात् चंद्रमा कहा गया है।

सूर्य और चन्द्रमा की उत्पत्ति के कारण दिन और रात अस्तित्व में आए, तब काल का प्रारम्भ हुआ। इसे 'कोलो' या 'कोलो तानी' तथा 'कुरियुम' या 'कोरियुम तानी' कहा गया। कोलो का अर्थ है, प्रकाश और कोरियुम का अर्थ है, अंधकार। इन दोनों को भी माता जिमी की संतान और एक-दूसरे की शक्ति माना गया है।

कहा जाता है कि छ: सूर्य उत्पन्न हुए थे। इनके नाम हैं—'जीकू', 'जीत', 'जीतन', 'जीयर', 'जीगी' और 'जीनिनायक'। इनमें से केवल एक ही बचा रह सका, 'जीनिनायक'। शेष पाँच अपने ही तेज में जल कर नष्ट हो गए। जीनिनायक ही हमारा वर्त्तमान सूर्य है। इसे सृजनकर्ता और पालनकर्ता माना जाता है। विश्वास किया जाता है कि हमारे वर्तमान सूर्य की भी आयु है। जैसे ही समय आएगा, माता जिमी और पिता जमा उसे अपने में समा लेंगे। जिसकी उत्पत्ति है, उसका अंत भी होना ही है। जो प्रकट होता है, वह विलीन भी होता है। यही क्रम है।

एक जोरदार ध्वनि हुई और पृथ्वी प्रकट हुई। पृथ्वी को 'तानी मोमेन' (जहाँ तानी क्रीड़ा करते हैं) कहा गया। सूर्य के तेज की अधिकता के कारण पृथ्वी पर जीवन नहीं पनपा। इस सूर्य को 'जीतन दोन्यी'---

अर्थात् वह सूर्य, जिसने जीवन को पनपने के पूर्व ही मार डाला-- कहा गया। पृथ्वी भी दो बार नष्ट हुई। हमारी आज की धरती माता तीसरी बार उत्पन्न हुई धरती है। समय आने पर यह भी नष्ट हो जाएगी।

मिट्टी और जल साथ-साथ उत्पन्न हुए थे, लेकिन शुरू में धरती की अवस्था मुख्यत: द्रव-रूप ही थी, क्योंकि जल की मात्रा अधिक थी। धरती की इस अवस्था को 'रुलुम-रलह' कहा जाता है। जब जीनिनायक दोनी--- अर्थात्, जिसमें तेज/ताप संतुलित रूप में हो--- की किरणों ने धरती का स्पर्श किया, तब धरती धीरे-धीरे ठोस होनी शुरू हुई और उसे 'माता सचङ्' कहा गया।

माता जिमी ने धरती में प्राणवायु का संचार किया। ध्वनि की उत्पत्ति धरती के साथ ही हुई थी, इस कारण हवा 'री री' की आवाज़ के साथ बहाने लगी। जल ने बादल का रूप ग्रहण किया और संगीतमय स्वर के साथ धरती पर बरसने लगा। जल और मिट्टी का मिलन हुआ। जीवन का प्रारम्भ हुआ। आज भी कभी-कभी सुनने को मिलता है कि हम 'न्योदो', अर्थात् बारिश की संतान हैं। मान्यता है कि जल की बूंदों के धरती पर बरसने से विभिन्न वनस्पतियों, पेड़-पौधों, पशुओं आदि की उत्पत्ति हुई। जल, मिट्टी, वायु, पत्थर और अग्नि से निम्नांकित की उत्पत्ति हुई—

- निग तानी : पेड़-पौधे और पंखों वाले पक्षी।
- निब तानी : मिथुन, गाय, बकरी, सूअर, हिरन, बारहसिंघा, हाथी।
- नीबङ (नीकूर) तानी : बिल्ली, शेर, चीता, बाघ।
- नीसी तानी : जल-जीव।
- नीमा तानी : लघु आकार वाले मानव।
- न्यीदक तानी : विष और दोल्यी (रोग)।
- नीया तानी : विविध रंगों और आकारों वाले मानव।

इन सभी को 'दोनी', अर्थात् सूर्य और 'सचङ', अर्थात् धरती के विवाह के फलस्वरूप उत्पन्न माना जाता है। सम्पूर्ण प्राणी जगत की उत्पत्ति का रहस्य सूर्य और धरती का संबंध ही है।

'तानी' में 'ता' का अर्थ है, सूर्य और 'नी' का अर्थ है, साँस लेने वाला प्राणी। सूर्य के दौला (वीर्य) से उत्पन्न प्राणियों को 'तानी' कहा गया। इसी से 'तानी-संस्कृति' का आविर्भाव हुआ। आज भी इससे जुड़े अधिकतर पुरुषों के नाम का पहला अक्षर 'त' होता है। आबोतानी लोग 'दोनी', अर्थात् सूर्य से अपने वंश की गणना प्रारम्भ करते हैं। वे दोनी>नीया>नीतू>न्यी>निकुम>निया>आबोतानी के अनुसार अपने वंश की पहचान कराते हैं। दूसरी ओर कुछ लोग 'माता सिची' अथवा 'सिसी' से वंश-गणना करते हैं। इनके मत में सिसी>सीबुक>बुकसिन>सिंतु>तूरी अथवा रिनी अथवा आबोतानी का निर्माण हुआ है। सिची को 'सेदी' भी कहा जाता है और कुछ लोग वंश की गणना सेदी>दीलिङ>लितुङ>तूये>येपे>पेदुङनाने>दोनी तानी, अर्थात् सूर्यवंशी आबोतानी के अनुसार करते हैं।

'नीया तानी' धरती के पहले मानव थे। नीया मानवों में पहले नारी की उत्पत्ति हुई। यह इसलिए कि उसे गर्भ धारण करना था। पहली नारी को 'सचङ', अर्थात् धरती पुकारा गया। अपने गर्भ से जन्म देने के कारण वह माता कहलाई। उसने भार वहन किया, अत: उसे पुरुषरूपा भी माना गया। यह भी कहा गया कि नारी आकाश (बादल) अथवा न्योदो का रूप भी है और उसका कार्य भी उसके समान है। बादल बन कर मिट जाता है और सृजन का कारण बनता है। नारी भी यही करती है।

नीया तानी (प्रथम मानव) की दो संतानें हुईं, 'पोय तानी' और 'निया तानी'। नीया का अर्थ होता है, मनुष्य और पोय का अर्थ है, वह आत्मा, जिससे चलने वाले व सोचने वाले प्राणी उत्पन्न होते हैं। इन्हें स्थानीय भाषा में ऊईयू (जिसका एक अर्थ देवता भी होता है) कहा जाता है। मान्यता है कि ऊईयू से किर, ल्यार, पोमतलोम, चुङत, पीलिया आदि का जन्म हुआ, जिनके वंशज, मङजङ, चिन्, सिकी आगे चल कर आबोतानी के दुश्मन हुए।

'निया तानी' ने माता 'पेदुङ' के साथ विवाह किया, जिनसे कई पुत्र हुए, यथा; 'रोबो', 'तापिन', 'दोदिर' आदि। इन्हीं में आबोतानी भी थे, जिनके वंशज आज भारत के अरुणाचल, असम राज्यों और चीन देश में रहते हैं। आबोतानी को 'नीबो' भी कहा जाता है। अपने भाइयों में आबोतानी सबसे छोटे थे। उनकी एक बहन थी, जिसका नाम 'दोलियाँ चांजा' था। वह भाई-बहनों में सबसे छोटी थी।

माता पेदुङ नाने में धरती तत्त्व अधिक था। वह शांत, सौम्य, धर्यशील, और स्नेही थी। उनमें चन्द्रमा की शीतलता थी। पिता निया तानी (जिन्हें दोरे आबो भी कहा जाता है) वायु, मिट्टी, पत्थर, और सूर्य तत्त्व से युक्त थे। उनके नाम का एक अर्थ ही है, वह आत्मा, जो धरती के ऊपरी हिस्सों में मौजूद रहती है। आज भी अगर किसी अनुभवी बुजुर्ग को भविष्य जानना होता है, तो वह पत्थरों पर ध्यान केंद्रित करता है और विश्वास किया जाता है कि पत्थर उसकी सहायता करते हैं।

'रोबो' 'आबोतानी' का बड़ा भाई था। उसे तारो, तारु, बारो, ओब आदि कई नामों से पुकारा जाता है। रोबो का स्वरूप तो मानव का था, लेकिन बुद्धि से वह मूर्ख पशु के समान था। वह मोटा-तगड़ा था तथा हमेशा भोजन की तलाश में रहता था। उसकी आवाज़ भारी थी। उसमें और तानी में बस एक ही समानता थी, वह यह कि दोनों ही प्रेम की चाहत से युक्त थे। रोबो था तो अबोध, किन्तु अपने को तानी से बुद्धिमान सिद्ध करने की कोशिश करता रहता था। आबोतानी में सूर्य के दौला (वीर्य) का तेज और शक्ति थी तथा चन्द्रमा की शीतलता थी। आबोतानी का एक नाम 'बङ्'नी भी था, जिसका अर्थ होता है, मानव। वह ज्ञान का रूप था। उसकी आँखें बड़ी-बड़ी, आगे निकली हुई और दृष्टि तेज थी। केश काले लंबे घुंघराले और बिखरे हुए थे। उसकी चौड़ी छाती, गोरा बदन और सुन्दर चेहरा किसी के भी मन में ईर्ष्या पैदा कर सकते थे। जिद्दी और अड़ियल भी था। विश्वास किया जाता है क उसे माता पेदुङ नाने ने बेंत और चिड़ियों के पंखों से

बना 'गेम्पू' कटि-वस्त्र के रूप में पहनना सिखाया था। पिता ने उसे जानवरों की खाल से निर्मित वस्त्र धारण करना सिखाया।

तानी को 'न्यीपो तानी' भी कहा जाता है, जिसका अर्थ होता है, बड़ी और निकली हुई आँखें। उनका असली नाम 'दोनी' था, लेकिन उनकी बुद्धि और तेजस्विता को देख कर माता ने उन्हें सूर्या वंशी आबोतानी, अर्थात् सबका पिता कह कर पुकारा। तभी से उनका नाम आबोतानी पड़ गया। वे बचपन से ही विलक्षण और माँ के दुलारे थे। कहा जाता है कि उनके जन्म के समय पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों में आनंद छा गया था, जिसे देख कर माता समझ गई कि उनका पुत्र कोई साधारण मानव नहीं है।

रोबो आबोताने की बुद्धि और शक्ति से जलता रहता था। दोनों भाइयों के बीच हमेशा झगड़ा रहने के कारण माता-पिता ने उन्हें अलग-अलग रहने को कह दिया। अब तानी सूर्य था, तो रोबो चन्द्रमा। तानी दिन था, तो रोबो रात। तानी प्रकाश था, तो रोबो अंधकार। दोनों बराबर के बली थे-- अंतर था, तो केवल बुद्धि का। लेकिन यहाँ भी एक विशेष बात थी, वह यह कि तानी और रोबो एक दूसरे के पूरक थे। तानी ज्ञानी था, रोबो उस ज्ञान को बढ़ाने वाला। तानी अत्यधिक चालाक था, रोबो मासूम। तानी का स्वर तेज और तीखा था, रोबो की आवाज़ भारी। दोनों की विशेषताएँ मिल कर दोनों को पूर्ण मानव बनाती थीं।

दोलियाँ जाँचां को तानी संस्कृति की प्रथम पुजारी माना जाता है। कहते हैं उन्होंने कभी विवाह नहीं किया। उन्होंने कई बार तानी की रक्षा की तथा उन्हें पूजा और ध्यान की विधियाँ पत्थर पर लिख कर दीं। यह भी कहा जाता है कि इस पत्थर को सिकी के लोगों ने छीन लिया था। दोलियाँ जाँचां की प्रेरणा से 'तोड़े', 'लोमे', 'रूपू', 'रूलू', 'लामी', 'लाया' आदि अनेक स्त्री-पुजारी बनीं, जिन्हें बड़ा ज्ञानी माना जाता है। यह भी प्रचलित है कि दो पुरुष पुजारियों ने ईर्ष्या के कारण कई प्रकार के लांछन लगा कर दोलियाँ जाँचां को पुजारी बनने से रोकने की कोशिश की थी। इस कोशिश को आबोतानी द्वारा सख़्ती से कुचल दिया गया था। दोलियाँ जाँचां को आबोतानी की चौथी, कभी-कभी पाँचवीं आँख भी कहा गया है। उन्हें ज्ञान की देवी माना जाता है। प्रत्येक पूजा उन्हीं के नाम से शुरू होती है।

मान्यता है कि अमृत की एक-एक बूँद से एक-एक भाषा की उत्पत्ति हुई है। मिट्टी, पत्थर, पेड़-पौधे, घास-वनस्पतियां, पहाड़--- सभी को जीवित माना गया है और यह भी कि इन सबकी अपनी-अपनी भाषाएँ हैं। आज भी कुत्ते पेड़-पौधों से मार्ग पूछते हैं। संसार की सभी भाषाओं का स्रोत नारी है। किसी भी पुरुष तानी की भाषा का अस्तित्व मौजूद नहीं है। बच्चों ने अपनी माताओं से ही भिन्न-भिन्न भाषाएँ सीखीं। उन्होंने अपने बच्चों को पहनने-ओढ़ने, केश संवारने के समान ही भाषा का ज्ञान भी कराया।

(**परिचय :** लेखिका राजीव गांधी विश्वविद्यालय, ईटानगर, अरुणाचल प्रदेश के हिंदी विभाग में सहायक प्रोफ़ेसर पद पर कार्यरत हैं।)

नागालैंड की लोक कथाएँ

डॉ. चंद्र शेखर चौबे
संपर्क- 7355620345

(1) हॉर्नबिल के पंख

कई साल पहले सेमा जाति के एक गाँव में दो औरतें रहती थीं। दोनों के एक-एक बच्चे थे। एक की बेटी और दूसरे का बेटा। जब भी ये दोनों औरतें अपने खेतों में काम करने जाती तब वे अपने बच्चों को भी साथ ले जाती। दोनों बच्चे एक साथ खेलते और हमेशा साथ में समय बिताते। जब कभी भी एक बच्चा खेत पर नहीं आता तो दूसरा दिन भर रोता और अपनी माँ को काम करने नहीं देता। बच्चों के इस व्यवहार को देखकर लोग आश्चर्य में थे। जैसे-जैसे दोनों बच्चे बड़े होते गए उनका एक दूसरे से लगाव और बढ़ता गया। बच्चों का इतनी छोटी उम्र में एक दूसरे से इस तरह का प्रेम और लगाव देखकर लोग आपस में यह बात करने लगे कि दोनों बच्चों की हरकतें एकदम अलग हैं और जब ये दोनों बड़े होंगे तब इनका आपस में रिश्ता कैसा होगा ? समय बीतता गया। माँ खेतों में काम करती और बच्चे साथ खेलते। धीरे-धीरे दोनों बच्चे बड़े होते गए और अपने माँ के काम में भी हाथ बटाने लगे। धीरे-धीरे दोनों बचपन से किशोरावस्था में पहुँच गए। दोनों का रिश्ता और प्रगाढ़ होता गया। युवावस्था आते-आते दोनों के बीच प्रेम जागृत हुआ। यद्यपि दोनों एक ही जाति के थे पर दोनों के परिवारों की आर्थिक स्थिति समान नहीं थी। खाउली का परिवार अमीर था और किविगो का परिवार गरीब था। फिर भी दोनों एक दूसरे से अटूट प्रेम करते हुए सुंदर भविष्य के सपने देखने लगे। युवा किविगो हमेशा अपने मन में सोचता था कि वह खाउली के घर जाकर उसके माता-पिता से अपने विवाह के संबंध में बात करेगा लेकिन उसके कदम खाउली के घर की तरफ जाते-जाते ठिठक जाते, वह वापस लौट आता था। खाउली ने किविगो के मन की दुविधा को जान लिया था। उसने किविगो को साहस दिया। अमीरी और गरीबी भाग्य और कर्मों का परिणाम है। इससे हमारा प्रेम निर्बल नहीं हो जाता। खाउली की बातों से किविगो को थोड़ा बल मिला। एक दिन किविगो साहस बटोरकर खाउली के घर की ओर चल दिया। खाउली के घर पहुँचकर सामान्य शिष्टाचार के बाद उसने साहस बटोरकर खाउली के पिता से उसका हाथ माँगा। किविगो को जिसका अंदेशा था वही हुआ। खाउली के माता-पिता ने किविगो का अपमान करते हुए अपनी बेटी को यह कहा कि इस लड़के को कुत्ते की थाली में खाना परोसकर दे और घर से भगा दे। खाउली को अपने माता-पिता

के ऐसे व्यवहार की उम्मीद नहीं थी। खाउली ने उत्तर देते हुए कहा – "मैं भी इंसान हूँ और वह भी इंसान है।" यह कहकर वह रसोई में चली गई। उसने अपनी थाली में खाना परोसकर किविगो को खिलाया।

खाउली के माता-पिता उसके भविष्य को लेकर चिंतित थे और उसका विवाह किसी अच्छे और अमीर घर में करना चाहते थे। तभी एक दिन उनके पास समीप के एक गाँव से खाउली के लिए एक अच्छे घराने का रिश्ता आया। उन्होंने खाउली की इच्छा के विरुद्ध रिश्ता स्वीकार कर लिया और शीघ्र ही खाउली का विवाह कर दिया। खाउली विवाह के बाद अपने पति के घर चली गयी। अब किविगो बहुत दुखी और उदास रहने लगा। किविगो के साथियों को विश्वास नहीं हो रहा था कि किविगो के उदासी का कारण खाउली का उससे हमेशा के लिए दूर चले जाना है। उन्होंने किविगो के सच्चे प्रेम की परीक्षा लेने की योजना बनाई। उन्होंने किविगो के सामने यह शर्त रखी - "अगर तुम खाउली से सच्चा प्रेम करते हो तो अपने हाथों में जलता कोयला लेकर खाउली के ससुराल तक जाओ।" किविगो ने अपने दोस्तों की चुनौती स्वीकार करते हुए वैसा ही किया। किविगो के साथियों को बहुत पछतावा हुआ। वे अब समझ चुके थे कि किविगो खाउली से सच्चा प्रेम करता है। उधर किविगो जब खाउली के ससुराल पहुँचा तब रात हो चुकी थी। वह खाउली के घर के बाहर ही था कि खाउली घर से बाहर निकली। उसने किविगो को देखा और पहचान लिया। उसने किविगो को एक बड़ी सी टोकरी में छुपा दिया। अगले दिन अपने पति को जल्दी से खाना देकर उसे खेत पर भेज दिया। आस-पास के सभी लोगों के काम पर चले जाने के बाद खाउली किविगो से मिली। उसने किविगो के प्रेम का साहस और मन की दशा देखकर यह निश्चय किया कि वह उसके साथ उसके गाँव वापस चली जायेगी। बिना विलम्ब किये दोनों उसी समय अपने गाँव को चल दिए। रास्ते में चलते-चलते खाउली बहुत थक गयी। उसे बहुत तेज भूख और प्यास लगी। पहाड़ी झरने से दोनों ने प्यास बुझाई। खाउली अपनी भूख सहन नहीं कर पा रही थी। कुछ दूर चलने पर उसे एक फलदार वृक्ष दिखाई दिया। खाउली ने पेड़ के फल खाने की इच्छा व्यक्त की। किविगो फल तोड़ने के लिए पेड़ पर चढ़ा। पेड़ पर चढ़कर वह फल तोड़कर नीचे गिराने लगा। खाउली फल खाती जा रही थी,उसकी फल खाने की इच्छा और बढ़ती जा रही थी। उसने किविगो से कहा कि वह उस पेड़ के सारे फल खाने के बाद ही आगे बढ़ेगी। किविगो फल तोड़ते हुए पेड़ पर चढ़ता चला गया पर वह नीचे नहीं उतर पाया क्योंकि कहावत थी कि किसी भी पेड़ के फलों को एक बार में तोड़कर नहीं खाते, पाप लगता है। अब किविगो को यह भान हो गया था कि वह कभी नीचे नहीं उतर पायेगा। उसने खाउली से यह कहते हुए अपने आपको एक हॉर्नबिल में बदल कर उड़ गया कि जब भी लोग किसी विचित्र पक्षी के बारे में बात करें तो समझ लेना कि वह पक्षी किविगो है। खाउली को अपने किये पर बहुत पश्चाताप हुआ। वह हताश और दुखी मन से पुनः अपने ससुराल लौट आई।

कुछ दिनों बाद जब खाउली अपने खेतों में काम कर रही थी तभी उसने लोगों को एक विचित्र पक्षी के बारे में बात करते सुना। वह भागकर उस पक्षी को देखने गयी। तब उस पक्षी का एक पंख खाउली के छाती

पर आ गिरा। खाउली ने उस पंख को संभालकर अपने हृदय से लगा लिया। उस रात किविगो खाउली के सपने में आया। खाउली ने किविगो से पूछा कि वह उस पंख का क्या करे ? तब किविगो ने उससे कहा कि इस पंख को विशेष पर्वों पर लड़के-लड़कियाँ इस्तेमाल करें, अपने सर पर मुकुट में लगायें और आभूषणों में सजाकर पहनें। इस प्रकार तब से हर नागा जाति में पीढ़ियों से विशेष सांस्कृतिक पर्वों में हॉर्नबिल पक्षी के पंख का प्रयोग किया जाता है।

(2)
परिश्रमी किसान पुलिए बाद्जे

प्राचीन काल की बात है। कोहिमा गाँव के दक्षिण दिशा की एक पहाड़ी पर पुलिए नाम का एक व्यक्ति रहता था। वह बचपन से ही बहुत परिश्रमी तथा ईमानदार था। उस पहाड़ी गाँव की आर्थिक स्थिति तब पूरी तरह कृषि पर आधारित थी। गाँव के लोग सामूहिक रूप से एक दूसरे के कृषि कार्यों में सहयोग देते। पुलिए भी पहाड़ी ढलान के एक छोटे से हिस्से में बनाए गए सीढ़ीदार खेत पर अपनी खेती करता था। काफी परिश्रम के बाद पुलिए ने झाड़ियों को काटकर जमीन को सीढ़ीदार बनाकर इस पहाड़ी ढलान के हिस्से को खेती के लायक बनाया था और पहाड़ी झरने से उस खेत की सिंचाई के लिए पानी की व्यवस्था की थी। पुलिए ने पहली बार जब खेती शुरू की थी तब खेत की जुताई अपने हाथों से की तथा उसमें धान के बीज डाला। थोड़े दिनों बाद ही खेत में धान के नन्हे-नन्हे पौधे उग आये। पुलिए उन पौधों को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। कुछ दिनों में धान के पौधे लहलहाने लगे। समय पर वह अपने खेतों की निराई करता जिससे अवांछित पौधे उसके फसलों को क्षति न पहुँचा सकें।

पुलिए का कठिन परिश्रम आखिर रंग लाया। फसल पककर तैयार हो गई। फसल काटने का समय आ गया। पुलिए अपनी उपलब्धि पर प्रसन्न था। वह जब भी अपने खेत के समक्ष होता तो अपनी खेती को देखकर उसे अनेक सुखद स्वप्न दिखाई देते। खेती को वह अपने अधिकार की संपत्ति समझता था। खेत में आते ही वह परिवार और समाज की बातें भूलकर स्वप्न में खो जाता। इस तरह अपने आस-पास की दुनिया को भूलकर अपने खेतों में खोये रहने की उसे आदत पड़ गई। वह अपने दोस्तों से कहता – "यह खेती मेरी है।" किशोर एवं युवावस्था आते-आते पुलिए में खेती के लिए अदम्य आकर्षण हो गया था। इसीलिये दुःख, विषाद एवं किसी भी कारण मन अशांत होने पर वह अपने खेत में जाकर शान्ति पाता।

मानव जीवन में अनेक ऐसी घटनाएँ घटती हैं जिनकी कल्पना भी मनुष्य नहीं कर पाता। ये घटनाएँ कुछ तो प्राकृतिक होती हैं, कुछ मानव निर्मित। पुलिए के जीवन में भी ऐसी ही एक दुर्घटना घटी जिसकी कल्पना उसने नहीं की थी। एक दिन जब वह अपने धान के खेत में गया तो उसने देखा कि किसी जंगली

जीव ने उसके फसलों को बहुत क्षति पहुँचायी है। काफी प्रयत्न करने के बाद यह पता लगाने में वह सफल हो गया कि उसकी फसलों को एक विषधर साँप नुकसान पहुँचा रहा है। यह जानकर वह विषाद से भर गया। दुखी मन लेकर वह गाँव में अपने माता-पिता के पास आया। वह मन-ही-मन फसल को क्षति पहुँचाने वाले साँप के विषय में सोचने लगा कि किस प्रकार उसका अंत हो जिससे उसकी फसल नुकसान न हो। अंततः उसने एक उपाय सोचा और साँप को मारने की योजना बनाई। अगले दिन वह खेत पर गया और योजना के अनुसार खेत के बाहर एक बड़ा सा गड्ढा खोदा। शाम ढलने को आई तब वह अपना दाव तथा भाला लेकर उस गड्ढे में छिपकर बैठ गया तथा साँप के आने की प्रतीक्षा करने लगा। पूर्णिमा की रात थी। चन्द्रमा अपने शीतल प्रकाश से धरती को प्रकाशित कर रहा था। स्वच्छ चाँदनी में सभी पेड़, पौधे और आस-पास के खेतों में खड़ी फसलें साफ दृष्टिगोचर हो रही थीं। आकाश तारों से भरा था। चाँदनी रात में दृश्य बहुत ही सुहावना था। रह-रह कर कभी-कभी पक्षियों तथा अन्य जंतुओं की आवाजें भी सुनाई देती थी। धीरे-धीरे आधी रात बीत गई। पुलिए उस गड्ढे में बैठकर साँप के आने की प्रतीक्षा करता रहा। कुछ देर बाद पुलिए ने अपने खेत में सरसराने की आवाज सुनी। पुलिए धीरे-धीरे दबे पाँव गड्ढे से बाहर आया। उसने देखा कि साँप प्रतिदिन की भाँति उसके खेत में धान खा रहा है। पुलिए इस दृश्य को देखकर क्रोधित हो गया। उसने अपना भाला फेंका और एक ही वार में साँप को मार डाला। तभी पुलिए ने अद्भुत दृश्य देखा। साँप की आत्मा शरीर से अलग हो चुकी थी। पुलिए जब तक कुछ समझ पाता, साँप की आत्मा प्रतिशोध लेने के लिए पुलिए की तरफ बढ़ी और क्षण भर में पुलिए जमीन पर ढेर हो गया। पुलिए का दु:खद अंत हो गया |

उधर गाँव में पुलिए के माता-पिता शाम को पुलिए के नहीं लौटने पर चिंता में पड़ गए। ऐसा कभी नहीं हुआ था कि खेतों में काम करके पुलिए शाम को घर न लौटा हो। पुलिए की मृत्यु के संबंध में गाँव में भी किसी को कोई जानकारी नहीं थी। पुलिए की कोई खबर न पाकर उसके माता-पिता बहुत बेचैन हो उठे। किसी तरह रात बीती। गाँव में तरह-तरह की आशंकाएँ व्यक्त की जाने लगीं। गाँव के लोग पुलिए के घर इकट्ठा होने लगे तथा इस घटना के विषय में विचार-विमर्श करने लगे। काफी विचार-विनिमय के बाद सबने यही सोचा कि शायद पुलिए अपने खेतों की रखवाली करने के लिए ही वहाँ रह गया हो। लेकिन दिन चढ़ने पर भी जब पुलिए घर वापस नहीं आया तो गाँव के लोग उसकी तलाश में पहाड़ के नीचे उसके खेतों की ओर चल पड़े। वहाँ पहुँचाने पर उन्हें एक साँप की लाश मिली लेकिन पुलिए का कोई पता नहीं लग सका। गाँव वाले तथा उसके माता-पिता ने चिल्ला-चिल्ला कर पुलिए को बुलाना शुरू किया। पुलिए को जोर-जोर से पुकारने पर अंततः उन लोगों को पुलिए की आवाज सुनाई दी। गाँव वाले उस दिशा की ओर बढ़े जिस तरफ से पुलिए की आवाज आयी थी। लेकिन सब कुछ व्यर्थ साबित हुआ, पुलिए वहाँ नहीं था। गाँव वाले जैसे-जैसे पुलिए का नाम पुकारते हुए आगे बढ़ते, वैसे-वैसे पुलिए की आवाज और दूरी पर सुनाई देती। इस प्रकार दूर से आती हुई आवाज के साथ पुलिए को खोजते-खोजते वे सभी पहाड़ की चोटी पर पहुँच गए, पर पुलिए वहाँ भी नहीं मिला।

अंत में गाँव वाले और पुलिए के माता-पिता सभी निराश हो गए और पुलिए के मिलने की आशा छोड़ दी। सबने मिलकर इधर-उधर बिखरे पत्थरों को एकत्र कर उसी स्थान पर पुलिए के बैठने के लिए एक चबूतरा बना दिया। उस दिन से आज तक इस पहाड़ को पुलिए बाद्‌जे के नाम से जाना जाता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि पुलिए के परिश्रमी शरीर के अवशेष उस पहाड़ की मिट्टी में मिल जाने के कारण पुलिए बाद्‌जे की उर्वरा शक्ति बढ़ गयी जिस कारण वहाँ नाना प्रकार के पेड़-पौधे और सुगन्धित फूलों के वृक्ष पाए जाते हैं। ये पुष्प गुच्छों के आकार में होते हैं। इस जगह की सुन्दरता और सुगन्धित वातावरण को देखने के लिए आज भी लोग उस पहाड़ पर जाते हैं और पुलिए को याद करते हैं।

(**परिचय :** लेखक क्षेत्रीय निदेशक के रूप में केंद्रीय हिंदी संस्थान (आगरा), दीमापुर केंद्र में कार्यरत हैं। लेखक के अनुसार- यह लोककथाएँ नागालैंड की हिंदी अध्यापिका तेन्तीमोंगला आयर और ईमसिबेनला आओ के सौजन्य से संकलित की गयी हैं।)

मिज़ोरम की मरा भाषा की लोक कथा

अनाथ लड़के की कथा

प्रो. संजय कुमार
एवं
डेविड के. अजयु

बहुत पुराने जमाने की बात है, मिजोरम के दक्षिणी भाग के किसी गाँव में एक अनाथ लड़का रहता था। वह बहुत गरीब था। गाँव वाले उस लड़के से बहुत नफ़रत करते थे। कोई भी उसे प्यार करने वाला नहीं था। जब गाँव का कोई शिकारी शिकार मारकर लाता तो मरा जनजाति की परंपरा के अनुसार गाँव वालों के बीच शिकार का भाग बाँटा जाता था। परंतु उस अनाथ लड़के को हर बार शिकार का सबसे खराब भाग ही नसीब होता था।

एक दिन की बात है उसके पास खाने को कुछ भी नहीं था और उसे काफी भूख लगी थी। उस समय उसके मन में विचार आया कि वह नदी पर चला जाए। ऐसा विचार आते ही वह नदी की ओर चल पड़ा। नदी के पास पहुँचकर वह नदी के उद्गम स्रोत की ओर चलने लगा। चलते-चलते अचानक एक स्थान पर उसे किसी पुष्प की अत्यंत मीठी खुशबू की गंध आयी। वह सोचने लगा- "इतनी अच्छी खुशबू कहाँ से आ रही है?" वह अपना सिर उठाकर ऊपर की ओर देखने लगा। ऊपर की ओर उसने एक बहुत सुंदर फूल को देखा। वह तुरंत ऊपर जाकर एक फूल तोड़कर सूंघने लगा। उस फूल को नाक से सूंघते ही उसकी भूख जाती रही और उस अनाथ लड़के का पेट भर गया। इसके बाद वह अपने भूख को भूल गया। इस बात का ज्ञान होते ही उसने एक बक्सा बनाकर उसमें बहुत सारे फूल भर लिया और घर लौट आया।

अब उस गरीब अनाथ लड़के को कोई काम करने की आवश्यकता नहीं रही। जब भी उसे भूख लगती वह उस फूल की खुशबू सूँघ लेता और उसका पेट भर जाया करता था। अब उसे अपने खाने-पीने की चीजें ढूँढ़ने कहीं बाहर जाने की जरूरत नहीं पड़ती थी। वह हमेशा अपने घर में ही बैठा रहता था। इस पर गाँव के सरदार (मुखिया) को उस अनाथ पर शक होने लगा कि आखिर वह क्या खाता है! यह पता लगाने के लिए उसने अपने नौकर को भेजा। नौकर अनाथ लड़के के घर जाकर छान-बीन कर लौट आया और सरदार (मुखिया) को बताया कि "उसके घर पर खाने की कोई भी चीज नहीं है।" इस पर मुखिया बहुत हैरान हुआ कि उस अनाथ लड़के के घर में खाने की जब कोई भी चीज नहीं है और वह कोई काम भी नहीं करता

है तो फिर वह अपना पेट क्योंकर और कैसे भरता है! उसके बाद सरदार ने अपनी नौकरानी को उसके घर के रहस्य का पता लगाने भेजा। नौकरानी अनाथ लड़के के घर जाकर हर तरफ़ तलाश कर हार गई पर उसे कुछ भी नहीं मिला। वह मन ही मन सोचने लगी कि खाना पकाने के लिए तो इसके घर में चावल तक नहीं है। तभी अचानक उसे एक स्थान पर टंगा हुआ एक बक्सा दिखाई दिया। वहाँ पहुँचकर उसने उस बक्से को नीचे उतारा और उसे खोल कर देखा तो पाया कि उस बक्से में बहुत खुशबूदार फूल रखे हुए हैं। उस फूल की खुशबू को नाक से सूंघते ही उसका पेट भी भर गया। तब उस नौकरनी को इस रहस्य का पता चल गया कि वह अनाथ लड़का उस फूल की खुशबू से अपना पेट भरता है। इस खबर को बताने के लिए वह दौड़ती हुई अपने सरदार (मुखिया) के घर जा पहुँची। हाँफती हुई वह सरदार को बतायी कि जिस चीज से वह अनाथ लड़का अपना पेट भरता है उस चीज का पता उसे लग चुका है। मुखिया नेअपनी जिज्ञासा को शांत करने के लिए पूछा-"अरे! वह कौन-सी चीज है?" नौकरनी ने जवाब दिया-"उस अनाथ लड़के के पास बहुत ही खुशबूदार फूल हैं, उस फूल की खुशबू सूँघकर कर ही वह अपना पेट भर लेता है। इस चीज के अलावा उसके घर में और कोई खाने-पीने की चीज नहीं है। मैंने भी जब उस फूल को सूँघा तो मेरा पेट भर गया। वहाँ जाते वक्त तो मुझे बहुत भूख लगी थी। लेकिन फूल की खुशबू सूँघते ही भूख मिट गयी। इसलिए वह लड़का उस फूल की खुशबू के सहारे ही आसानी से अपना जीवन यापन कर रहा है।"

तब मुखिया ने अपने नौकरों में से एक को उस अनाथ लड़के को बुलाने का आदेश दिया। सरदार (मुखिया) के आदेशानुसार वह अनाथ लड़का मुखिया के घर पहुँचा। तब सरदार ने उसे आदेश दिया कि- "जैसा फूल तुम्हारे पास है, वैसा ही फूल मुझे भी लाकर दो। यदि तुम वह फूल नहीं ला पाओगे तो मैं तुम्हें मार डालूँगा।" मृत्यु के भय से वह अनाथ लड़का उस फूल को लाने के लिए चल पड़ा। चलते-चलते वह बैंगन की बागवानी करती हुई एक स्त्री के पास पहुँचा। उस स्त्री ने पूछा- "हे अनाथ बच्चे! तुम कहाँ जा रहे हो?"उस अनाथ लड़के ने जवाब दिया- "मूंगा का फूल (Coral Flower) लाने के लिए जा रहा हूँ।" फिर उस स्त्री ने उससे कहा-"लौटते समय मुझे भी बुला लेना, एक साथ घर चलेंगे।"

उसके बाद वह अनाथ लड़का आगे चल पड़ा। चलते-चलते वह एक तीसई बस्ती में जा पहुँचा। तीसई बस्ती में भी एक स्त्री ने उस अनाथ से पूछा- "हे अनाथ बच्चे! तुम कहाँ जा रहे हो?" उस अनाथ लड़के ने पुनः जवाब दिया कि "मैं मूंगा का फूल (Coral Flower) लाने के लिए जा रहा हूँ।" उस स्त्री ने भी कहा-"तब तो लौटते वक्त तुम मुझे भी बुला लेना।" वह अनाथ लड़का आगे बढ़ता गया। चलते-चलते फिर वह मेईसाई बस्ती जा पहुँचा। वहाँ फिर उस बस्ती की एक स्त्री ने पूछा-"हे अनाथ बच्चे! तुम कहाँ जा रहे हो?" उस अनाथ लड़के ने पुनः जवाब दिया-"मैं मूंगा का फूल (Coral Flower) लाने जा रहा हूँ।" उस स्त्री ने भी कहा-"तब लौटते वक्त मुझे भी बुलाना।" उसकी बात सुनकर वह अनाथ लड़का आगे बढ़ गया।

चलते-चलते वह एक स्थान पर पहुँचा, जहाँ एक स्त्री घाघरा बुन रही थी। उस स्त्री ने भी पहले की स्त्रियों के समान ही प्रश्न किया और उस अनाथ लड़के ने उत्तर दिया कि-"मैं मूंगा का फूल (Coral Flower) लाने जा रहा हूँ।" फिर इस स्त्री ने भी पहली वाली स्त्रियों की तरह ही कहा-"लौटते वक्त मुझे भी बुलाना।" वह लड़का वहाँ से भी आगे बढ़ गया। चलते-चलते वह उस स्थान पर पहुँचा, जहाँ चाँद की स्त्री रहती थी। तब चाँद की स्त्री ने भी पहले वाली स्त्रियों की तरह ही सवाल किया और उस अनाथ लड़के ने उत्तर दिया कि-"मैं मूंगा का फूल (Coral Flower) लाने जा रहा हूँ।" तब चाँद की स्त्री ने कहा-"जरा ठहरो! अगर तुम मूंगा का फूल (Coral Flower) लाने जाने वाले हो तो मैं दो-तीन बातें तुम्हें बताना चाहती हूँ।" उस अनाथ लड़के ने उसकी बात मान ली। तब दोनों घर के अंदर गए। उस स्त्री ने कुछ जरूरत की चीजें, चूल्हे की राख और कुछ अन्य सामान उसके हाथ में दिये। साथ ही साथ मूंगा के पेड़ के पास सावधान रहने और उचित व्यवहार करने के तरीके भी उसको समझा दिया। फिर उसने उससे कहा कि-"लौटते वक्त मुझे भी बुलाना।"

वह अनाथ लड़का वहाँ से आगे बढ़ता गया और अंत में उस जगह पर जा पहुँचा,जहाँ मूंगा के पेड़ थे। मूंगा के फूलों को तोड़ने के लिए तब वह उसके पेड़ पर चढ़ गया। काफी देर तक वह मूंगा के पेड़ के ऊपर फूलों को तोड़ता रहा। मूंगा के बहुत सारे फूलों को तोड़ लेने के बाद जब वह पेड़ से नीचे उतरने लगा तो देखा कि पेड़ के नीचे कई नरभक्षी उसे खाने के चक्कर में इंतज़ार कर रहे हैं। तब उसने चाँद की स्त्री का दिया हुआ चूल्हे की राख़ अपने हाथ में लिया और उन नरभक्षियों को कहा-"तुम सभी लोग मेरी ओर देखो।" सभी नरभक्षी एक साथ उस अनाथ लड़के की ओर देखने लगे। तभी शीघ्रतापूर्वक उस अनाथ लड़के ने सभी नरभक्षियों की आँखों में राख फेंक दिया। आँखों में राख के पड़ते ही सभी नरभक्षी कुछ भी देख पाने में असमर्थ हो गए। तब तुरंत ही वह लड़का पेड़ पर से नीचे उतर कर वहाँ से भाग निकला। चलते-चलते वह चाँद की स्त्री के घर जा पहुँचा। वहाँ पहुँचकर उसने गीत के सुर में उस स्त्री को आवाज दी-

"थ्लपा जुआह जुआह वानों

पाकु चियाची पोनों चा आवोलाला"

अर्थात् : "हे चाँद की स्त्री,

मूंगा का फूल (Coral Flower) लेने आ जा, आ जा।"

तब चाँद की स्त्री ने भी अपने सुमधुर आवाज में जवाब दिया-"मेरा इंतज़ार कर। मैं भी तुम्हारे साथ चलती हूँ।" चाँद की स्त्री के घर से बाहर आने के बाद दोनों एक साथ आगे चल दिये। चलते-चलते वे उस जगह जा पहुँचे, जहाँ तारे की स्त्री रहती थी। उस अनाथ लड़के ने पुनः गीत के द्वारा उसे बुलाया-

"ओसी जुआह जुआह वानो

चियाचीपो चा आवोलाला"

अर्थात् : "हे तारे की स्त्री,

मूंगा का फूल (Coral Flower) लेने आ जा।"

तब तारे की स्त्री ने भी मधुर स्वर में जवाब दिया-"ठीक है! मेरा इंतज़ार कर। मैं भी तुम्हारे साथ चलती हूँ।" उसके बाहर आने के बाद वह अनाथ लड़का उन दोनों स्त्रियों के संग आगे चल पड़ा। चलते-चलते वे लोग तिसाइ बस्ती जा पहुँचे। जैसे गीतमय शब्दों में उसने पहले वाली स्त्रियों को बुलाया था ठीक उसी प्रकार उसने तिसाइ बस्ती की स्त्री को भी आवाज दी। अनाथ लड़के की आवाज सुनकर तिसाइ बस्ती की स्त्री भी उसके पीछे हो ली। इस प्रकार जाते समय उस अनाथ लड़के को राह में जो जो स्त्रियाँ मिली थीं, वे सब लौटते समय उसकी सुमधुर आवाज पर उसके पीछे चल पड़ीं। चलते-चलते सब एक साथ उस अनाथ लड़के के गाँव और घर जा पहुँचे।

सभी स्त्रियाँ उस अनाथ लड़के को प्रेम करने लगीं थीं। वे सभी उस अनाथ लड़के पर अपना प्रेम अलग-अलग तरीके से प्रकट कर रही थीं। कुछ उसके हाथ-पैर धो रही थीं तो कुछ उसके बाल धो रही थीं और कुछ उसके शरीर की मालिश भी कर रही थीं। इस प्रकार वे सभी उस अनाथ लड़के के प्रति अपने प्यार को प्रकट कर रही थीं। जब गाँव के मुखिया को इसकी खबर मिली तो वह बहुत नाराज हुआ। उसने अपने नौकरों में से एक को उस अनाथ लड़के को बुलाने के लिए उसके घर भेजा। उस अनाथ लड़के के घर पहुँचकर वह नौकर मुखिया का संवाद सुनाने के लिए अपना मुँह खोला ही था कि उसके "मुखिया...." कहते ही उन स्त्रियों ने नौकर से कहा-"तुम अपनी जीभ जरा बाहर निकालो।" ज्यों ही उस नौकर ने अपनी जीभ बाहर निकाली तो स्त्रियों ने चाकू से उसकी जीभ काट डाली। वह रोता हुआ अपने मुखिया के पास वापस चला गया। परंतु वहाँ जाकर भी वह कुछ बता नहीं पाया। तब नाराज होकर मुखिया ने दूसरे नौकर को भेजा। दूसरा नौकर भी जब उस अनाथ लड़के के घर पहुँचा तो उसकी जीभ भी उन स्त्रियों ने काट दी। कटी हुई जीभ लेकर वह भी मुखिया के पास रोता हुआ लौट आया और कुछ भी बता नहीं पाया। बाकी के नौकरों के साथ भी वैसा ही व्यवहार होता देखकर मुखिया बहुत क्रोधित हुआ। क्रोधित होकर उसने खुद ही वहाँ जाने का फैसला किया और वह स्वयं ही उस अनाथ के घर जा पहुँचा। वहाँ पहुँचकर उस अनाथ लड़के को चारों ओर से खूबसूरत स्त्रियों से घिरा हुआ पाकर मुखिया हैरान हो गया।

तब मुखिया ने उस अनाथ लड़के को चुनौती देते हुए कहा-"हम दोनों में प्रतियोगिता होगी और देखते हैं हम दोनों में से कौन जीतता है! इसके लिए हम दोनों आग के ऊपर से छलांग लगाएँगे।" तब दोनों आग जलाकर उसके ऊपर से छलांग लगाने को तैयार हो गए। मुखिया ने छलांग लगाकर उस आग को पार

कर लिया। वह अनाथ लड़का भी स्त्रियों की सहायता से आग को पार कर गया। अब मुखिया ने दूसरी योजना बनाई। उसने उस अनाथ लड़के को ललकारते हुए कहा- "अब हम दोनों एक बहुत बड़ी नदी में छलांग लगाएँगे और देखते हैं कि कौन उसे पार कर लेता है और जीतता है।" दोनों पास में ही बहने वाली एक बड़ी नदी में प्रतिद्वंद्विता करने चल पड़े। पुनः उन स्त्रियों ने उस अनाथ लड़के की सहायता की और वह भी नदी में छलांग लगाकर उसे पार करने में सफल हो गया। अब मुखिया ने उस अनाथ लड़के को तलवार (दाव) से युद्ध करने की चुनौती दी। मुखिया एक माँझा हुआ योद्धा था जबकि वह अनाथ लड़का उसकी तुलना में अभी बच्चा था। उसे ठीक तरह से तलवारबाजी नहीं आती थी। द्वंद्व युद्ध प्रारंभ हुआ। दोनों एक दूसरे पर आक्रमण करने लगे और अंत में मुखिया ने उस अनाथ लड़के को तलवारबाजी में मार दिया। सभी स्त्रियाँ उस अनाथ लड़के की किसी भी प्रकार से कुछ भी सहायता नहीं कर पायीं।

जब वह अनाथ लड़का मारा गया तो गाँव के मुखिया ने उन सभी खूबसूरत स्त्रियों को अपनी पत्नी के रूप में रखने का मन बनाया। उसने अपने एक नौकर को उन्हें बुलाने के लिए भेजा। परंतु मुखिया के पास जाने से बचने के लिए वे सभी स्त्रियाँ बहाना बनाकर टाल मटोल करती रहीं। वे कल-परसों आने का वादा करती थीं पर वे वहाँ नहीं जाती थीं। इस प्रकार दो-तीन बार पहले नौकर के खाली हाथ लौट आने के उपरांत मुखिया ने दूसरे नौकर को उन्हें बुलाने के लिए भेजा। पर वे स्त्रियाँ वहाँ जाने को तैयार नहीं थीं। वे पहले की तरह ही बहाने बनाती रहीं। अंततः वह मुखिया बहुत क्रोधित हुआ और स्वयं ही उन स्त्रियों को बुलाने चल पड़ा। जब वह उस अनाथ लड़के के घर पहुँचा तो उसने उन स्त्रियों के बीच उस अनाथ लड़के को जिंदा बैठा हुआ पाया। यह देखकर वह बहुत हैरान हुआ क्योंकि उस अनाथ लड़के को उसने स्वयं मार डाला था, अब वह जीवित कैसे हो सकता है। जिज्ञासावश उसने इस विषय में उन स्त्रियों से पूछा तो उन स्त्रियों ने उस अनाथ लड़के के पुनः जीवित होने के बारे में सारी बातें उसे बतायीं। उन्होंने कहा- "हमने उस अनाथ लड़के की लाश को सबसे पहले आग में जलाया और फिर उसकी हड्डियों को इकट्ठा किया तथा उसे खटखटाया। उसकी कू...कू...कू... करके आवाज करने वाली हड्डियों को हमने फेंक दिया और कि ...कि... कि ... आवाज करने वाली हड्डियों को सफ़ेद कपड़े में रखकर बाँध दिया और पानी के लहर के नीचे दफ़ना दिया। फिर तीन दिनों बाद जाकर देखा तो पाया कि वह अनाथ लड़का पहले से भी सुंदर और अच्छी कदकाठी में वापस आ गया है। जीवित हो जाने के बाद उस अनाथ लड़के को हम लोग अपने साथ ले आयीं।" उनकी बातों को सुनकर मुखिया ने उन स्त्रियों से आग्रह किया कि- "मैं बहुत काला और कुरूप हूँ। जिस प्रकार तुम लोगों ने उस अनाथ लड़के को सुंदर बना दिया है ठीक उसी प्रकार मुझे भी सुंदर बना दो।" मुखिया की बात मानकर उन स्त्रियों ने मुखिया को मार डाला। फिर उसकी लाश को जलाकर उसकी हड्डियों को जमा किया। उसकी जो हड्डियाँ कू ... कू... कू ... कर आवाज करती थीं उनको इकट्ठा कर रख लिया और जो कि ... कि ... कि ... कर आवाज करती थीं उनको फेंक दिया। इकट्ठा की हुई हड्डियों को उन्होंने काले

कपड़े से बाँधकर पानी की लहरों के नीचे दफ़ना दिया। तीन दिनों बाद जाकर देखा तो पाया कि मुखिया पहले से भी अधिक काला और बदसूरत शक्ल में जीवित हो गया है।

वे स्त्रियाँ उस मुखिया को उसके घर पहुँचा आयीं। घर वाले बदसूरत और खराब चेहरे के साथ उस मुखिया को देखते ही हक्के बक्के से रह गए। वह मुखिया भी यह जानकर परेशान हो गया कि यह क्या हो गया है? इतने बदसूरत और खराब चेहरे के साथ वह कैसे वापस जीवित हो सकता है! सभी गाँव वाले अब उसकी बदसूरती का मज़ाक उड़ाने लगे। मुखिया को अब अपनी करनी पर पश्चाताप होने लगा पर अब कुछ नहीं हो सकता था। मुखिया को अब अपनी बाकी जिंदगी अपने बदसूरत और खराब चेहरे के साथ गाँव वालों का ताना सहते हुए गुजारनी पड़ी। दूसरी ओर वह अनाथ लड़का अपनी कई खूबसूरत पत्नियों के संग बड़े मजे से और आजादी के साथ ज़िंदगी बिताने लगा।

(**परिचय** : प्रो. संजय कुमार मिज़ोरम विश्वविद्यालय, आईजॉल के हिंदी विभाग में अध्यक्ष पद पर कार्यरत हैं। संपर्क सूत्र: 9774517465) **(डेविड के. अजयु** मिज़ोरम विश्वविद्यालय, आईजॉल के हिंदी विभाग में शोधरत हैं।)

जितेन्द्र श्रीवास्तव- जीवन का प्रमेय गढ़ते हुए

मनोज पाण्डेय
संपर्क: 9595239781

'प्रमेय' जितेन्द्र श्रीवास्तव का प्रिय शब्द है। यह शब्द सिद्धि और साधना की अपेक्षा रखता है। जीवनानुभूति को काव्यानुभूति का विषय बनाती जितेन्द्र की काव्य-मनीषा उन प्रमेयों को सतत् गढ़ने की कोशिश करती जान पड़ती है जो अनछुए हैं, अनसुलझे या अनचिह्ने हैं -किन्हीं अर्थों में उपेक्षित और बहिष्कृत भी। उनकी कविताओं से गुजरते हुए बार-बार इन प्रश्नों से दो-चार होना होता है कि आखिर मनुजता की परिधि को व्यापक कैसे बनाया जाए। मानवीय संवेदना को कैसे सघन किया जाय कि उसका आयतन वृहद हो सके। दूसरे शब्दों में, उनकी चिंता का विषय ही मुख्यत: यही है कि मनुष्य की महत्ता को, गरिमा को कैसे बचाया जाय।

अभी तक उनके नौ काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। जाहिर है, उनकी काव्य-यात्रा एक लम्बा सफर तय कर चुकी है। यह भी कि, अपना एक चिर-परिचित रास्ता भी अख़्तियार कर चुकी है। यही वजह है कि उनका हर संग्रह एक तरह से पूर्व का ही विस्तार लगता है। उसमें वही प्रतिबद्धता, वैसा ही तेवर और वैसी ही चिंता झलकती है जो कि उनके कवि-मानस का जीवद्रव्य है। 'सूरज को अंगूठा' भी उसी द्रव्य से सृजित जीवन- प्रमेय की साधना है। इस साधना में कवि की पक्षधरता तो स्पष्ट दिखती ही है, अपने समय और समाज की वर्चस्ववादी संस्कृति के विरुद्ध तीखा प्रतिरोध भी दर्ज मिलता है। वे बड़ी गहराई से समाज की उन चुनौतियों को टटोलते-परखते हैं जिनसे मानवीय संवेदना का सीधा सरोकार है। कह सकते हैं कि कवि की चिंता के दायरे में वे लोग हैं जिन्हें उजास की तलाश है, जिन्होंने सपने देखने बंद नहीं किये हैं। सामाजिक सरोकारों पर चिंतन करते हुए, समस्याओं पर विचार करते हुए, दुख बतियाते हुए, पत्नी से गुफ़्तगू करते हुए, छोटे भाई की शादी में मां की चर्चा करते हुए, पिता को याद करते हुए , पुराने मित्र से मिलते हुए, आत्मबल को बटोरते हुए, आखिरी आदमी की चिंता करते हुए, आजादी के भावार्थ को परखते हुए नये कबीर की प्रतीक्षा में कवि जितेन्द्र रोजमर्रा के उन तमाम बुनियादी सवालों से टकराते हैं जिनसे उनकी कविताई विन्यस्त हुई है। और, जीवन के उन बहुविध रंगों, छटाओं, दिशाओं को एक प्रमेय की भांति सिद्ध करने की कोशिश करते हैं।

सूरज को अंगूठा दिखाते हुए एकतरफ़ कवि मानवीय सपनों, इच्छाओं को वाणी देता है तो दूसरी तरफ चुप्पी के समाजशास्त्र का भाष्य गढ़ता है। वह व्यथित है कि 'सब चुप हैं/अपनी-अपनी चुप्पी में अपना भला

ढूंढते/सबने आशय ढूंढ लिया है/जनतंत्र का/अपनी-अपनी चुप्पी में।' जिस तेजी से हमारे समय में जीवन के निहितार्थ बदलते जा रहे हैं, निजता सबसे बड़ा मूल्य होता जा रहा है, उसमें यह कहना कतई गलत नहीं कि 'हमारे समय में /जितना आसान है उतना ही कठिन चुप्पी का भाष्य।' जिस कदर प्रतिरोध की साँसे टूटती जा रही हैं, समझौतापरस्ती बढ़ती जा रही है, कोई भी अपनी निजता के दायरे से बाहर आने में सशंकित महसूस कर रहा है। जितेन्द्र सही कहते हैं 'लोग भी खूब हैं धरती पर/एक नहीं दिख रहा/इस ओर कहां ध्यान है किसी का/पैसा पैसा -पैसा/पद प्रभाव पैसा /यही आचरण /दर्शन यही समय का।' यह हमारे समय की सबसे बड़ी विडंबना है कि पद-प्रभाव-पैसा ही जीवन का एकमात्र मक़सद बन गया है। और इसे हासिल करने के लिए मनुष्य येन-केन-प्रकारेण सन्नद्ध है। नतीजा समाज में बढ़ती वैमनस्यता, भ्रष्टाचार-व्यभिचार-दुराचार। कुल मिलाकर, अव्वल दर्जे की अमानवीयता का नंगा-नृत्य। इसीलिए कवि चिंतित है गांधी के उस आखिरी आदमी के लिए जो जीवन के गुणा-भाग से दूर है,पर उसकी जिंदगी का, उसके सपनों का भी सौदा किया जा रहा है। वह ठीक कहता है 'अब भी दफ्तरों में टँगती है/महात्मा गांधी और डॉक्टर अंबेडकर की तस्वीरें/पर कोई ताकना भी नहीं चाहता/महात्मा गांधी के आखिरी आदमी की तरफ/डॉक्टर अंबेडकर के सपनों की तरफ/इन दिनों लोकतंत्र में/गांव का दक्खिन हो गया है आखिरी आदमी।'

जितेन्द्र की कविताओं के भूगोल की परिधि व्यापक है। उसमें पारिवारिक विन्यास के रास्ते जीवन की विविधता को प्रकट करने का कौशल है। वे बहुस्तरीय हैं। जीवन के बहुआयामी फलक को छूती हैं। इनके विषय हमें व्यापक जीवनबोध से रु-ब-रू कराते हैं। वे केवल संत्रास के, शुकून के, प्रेम के, भोग के, विरह के, आक्रोश के कवि नहीं हैं, न ही पूर्वजों की अस्थियों में विचरण करने वाले स्वप्नप्रिय हैं, और न ही निरा प्रतिरोध की लाठी भांजने वाले कवि हैं। ये सब उनके यहां मौजूद हैं लेकिन उनके अपने रंग और अपनी काया में- रचना के जीवद्रव्य की तरह। उनकी कविताओं की यही विशिष्टता है कि जैसे उसमें सबके अनुभव का संसार साझा होने को आकुल है। उसमें जीवन के सपने भी हैं स्मृतियां भी, गांव-देहात भी है खेत-खलिहान, किसान-मजूर भी, प्रेमराग भी है परिवार भी, प्रकृति भी है संस्कृति भी, मन को उर्वर बनाने की चेष्टा भी है और पृथ्वी को बचाने की आकांक्षा भी।कुल मिलाकर जीवन के विविध रसायनों से स्निग्ध हैं जितेन्द्र श्रीवास्तव की कविताएं।

स्वप्न पालना, हाथी पालना नहीं होता

जितेन्द्र स्वप्नदर्शी कवि हैं। सपने उनके लिए जिन्दगी की गतिशीलता के पैमाने हैं। सपने वही देखता है, देख सकता है जिसमें कुछ कर गुजरने की तमन्ना होती है। सपने पालना आसान काम नहीं होता। सपनों का सौदागर वही हो सकता है, जिसमें जीवन जीने का हौसला हो। जो समझौतापरस्त और गुलाम मानसिकता के अर्थात् बुझदिल होते हैं, वे सपनों के सौदागर नहीं हो सकते। कवि कथन है 'सपना पालना/हाथी पालना नहीं होता/जो शौक रखते हैं/चमचों, दलालों और गुलामों का/कहें जाते हैं स्वप्नदर्शी

सभाओं में/सपने उनके सिरहाने थूकने भी नहीं जाते।' स्वप्न सचेतनता का परिचायक होता है, वह कभी चुकता नहीं। सदियों से, पीढ़ियों से सपने मानव जीवन के सहचर रुप में मनुजता के विकास की कहानी बुनते रहे हैं। असल में वे जीवन में नूतनता के पहरुए होते हैं। जीवन में आलोड़न-विलोड़न चलता रहता है, पर मनुष्य नवाकांक्षा का सपना बुनता रहता है। यहां तक कि ' धीरे-धीरे बीत जाता है वक्त/नदियां सूख जाती हैं/उजड़ जाते हैं बाग-बगीचे/ विस्मरण लील लेता है बहुत-कुछ/बीत जाती हैं पीढ़ियां/पर बीत कर भी नहीं बीतता/नए का स्वप्न।'

यह सच है कि इंसान ताउम्र अपने सपनों को ही पूरा करने में लगा रहता है। वास्तव में उसकी जिजीविषा की कहानी बयां करते हैं उसके सपने। सपने नहीं होते तो इंसान शायद नवोन्मेष की तरफ लालायित भी नहीं होता, उसके जीवन में उमंग और उल्लास भी नहीं होता। जितेन्द्र सही कहते हैं 'इस सृष्टि में हर कोई प्रतीक्षा कर रहा है किसी न किसी स्वप्न के फलित होने का।' जाहिर है, हर किसी के अपने सपने हैं। 'स्वप्न की कोई एक देह नहीं होती/अलग-अलग समय में/अलग-अलग देशों में/अलग-अलग विचारधाराओं में/वह मिलता है बिल्कुल अलग ढंग से।' चूंकि सपने ही मनुजता की जययात्रा के वाहक हैं, इसीलिए पूरे विश्वास के साथ वह कहता है 'भीतर से कहीं उठती है आवाज/बीत जाएं मनुष्य यदि किसी दिन/नहीं बीतेंगे स्वप्न उनके साथ।' और सपने बचे रहें तो यकीन मानिए जीवन बचा रहेगा, जीवनेच्छा बची रहेगी। मनुष्यता के पक्षधर जितेन्द्र को पूरी उम्मीद है कि 'धरती पर मनुष्य/बचें न बचें/प्रकृति बचाती रहेगी पृथ्वी को/नि:स्वप्न होने से।'

ऐसे दौर में जबकि मनुष्य की संवेदना का आयतन निरंतर सिकुड़ता जा रहा है, उसकी आकांक्षा-एषणा का पहाड़ निरंतर वृहदाकार रूप धारण करता जा रहा है, शक्ति का महात्म्य सतत् बढ़ता जा रहा है, मनुष्यता उसी अनुपात में छिजती जा रही है, कवि आगाह करता है ' जब सब कुछ संभव है तब भी/मनुष्य होना मात्र एक-सा ढांचा होना नहीं है/सृष्टि में चाहे जितने विकास संभव हो जाएं/रोबोट इंसान नहीं हो सकेगा।' सच है कि मनुष्य के मनुष्य होने का सबसे बड़ा सबूत है उसमें मानवधर्मी चेतना का बचे रहना, उसकी मनुष्यता के जीवद्रव्य का बचे रहना। आज के इस घोर भौतिकतावादी दौर में मनुष्य विकास की गगनचुंबी सफलता के बावजूद महज एक कमोडिटी मात्र होकर रह गया है, उसकी आत्मा का रसायन छिजता जा रहा है।कवि की प्रत्याशा है 'एक कम मनुष्यता वाले समय में/चुनौती का शिखर है बचाना/एक साबूत मनुष्य का एक पूरा स्वप्न।'

स्मृतियां मनुष्य का ठिकाना हैं

कवि ही नहीं किसी भी संवेदनशील व्यक्ति के लिए स्मृतियां उसके जीवन का वह हिस्सा होती हैं जो किसी पड़ाव या छोर पर टूटती-छूटती नहीं हैं बल्कि वे चेतना का ऐसा हिस्सा बनकर बस जाती हैं जिन्हें

नींद नहीं आती है मृत्यु से पहले। स्मृति का कोलाज कवि की रागात्मकता का भी अता-पता बताता है, उसकी जीवन में हिस्सेदारी का भी परिचय देता है। जितेन्द्र की स्मृति में यूं तो उम्र के साथ बहुत-सी यादें चहलकदमी करती यत्र-तत्र दिख जाती हैं, पर कुछ स्मृतियों को वे बड़े जतन से सहेजकर रखे हुए हैं ,ऐसा 'तमकुही कोठी का मैदान' कविता को पढ़ते हुए लगता है। स्कूली जीवन के वे दिन , प्राणों से प्यारी साइकिल का खोना, हंगामेदार राजनीतिक सभाएं, लोकतंत्र को लेकर भरे जाने वाले हुंकार, वादे-नारे सब कुछ को वे अपनी यादों में संजोए हुए हैं। 'लेकिन मैं उस सभा को नहीं भूलना चाहता/मैं उन जैसी तमाम सभाओं को नहीं भूलना चाहता/जिनमें एक साथ खड़े हो सकते थे हजारों पैर/जुड़ सकते थे हजारों कन्धे/एक साथ निकल सकती थी हजारों आवाजें/बदल सकती थी सरकारें/कुछ हद तक ही सही/पस्त हो सकते थे निजामों के मंसूबे/मैं जिस तरह नहीं भूल सकता अपना शहर/उसी तरह नहीं भूल सकता/तमकुही कोठी का मैदान।'

इसी तरह 'गोरखपुर' जो उनका अपना शहर है, जिसने उन्हें सपने दिया और दिया उन सपनों को पाने का हौसला- यह शहर उनकी स्मृति के कोने में सुरक्षित है। उसे याद करते हुए, उसके प्रति कृतज्ञता जताते हुए कवि कहता है 'गोरखपुर ने सिखाया मुझे प्रेम का व्याकरण /अदेखे भविष्य को भर दिया प्रेम के उजास से/ उसने मुझे/मेरे होने का कारण दिया।' यही नहीं, 'जीवन महज दो आंखों का स्वप्न नहीं/इस मंत्र को/ मेरी आत्मा का रसायन बनाया गोरखपुर ने।' अपने बचपन के उस दृश्य को याद कर वे खिन्न हो उठते हैं यह देखकर कि हजारों टन अनाज गोदामों के बाहर सड़ रहा है, पर लोग भूखे-बिलखते हुए अन्न को तरस रहे हैं। आज भी यह स्थिति बदली नहीं है, बल्कि और भी बदतर होती गई है। सच है कि आज के बाजारीकरण के दौर में सरकारों का स्थायी भाव हो गया है देशी-विदेशी पूंजीपतियों का हित, उसे पहले उनकी परवाह है, सारी योजनाएं, सारी नीतियां उन्हें ही पल्लवित करने के लिए बनती हैं। यहां कवि की स्मृति में कैद उस दृश्य की बानगी अवश्य देखें- 'बचपन का एक दृश्य/ अक्सर निकल आता है पुतलियों के एलबम से/दो छोटे बच्चे तन्मय होकर खा रहे हैं रोटियां/बहन के हाथ पर रखी रोटियों पर/रखी है आलू की भूजिया/वे एक कौर में आलू का एक टुकड़ा लगाते हैं/..... बड़े चाव से खाते हैं/रोटियां खत्म हो जाती हैं/ वे देखते हैं एक दूसरे का चेहरा/जहां अतृप्ति है/आधे भोजन के बाद की उदासी है/.....बचपन का यह दृश्य/मुझे बार-बार रोकता है/पर सरकारों को कौन रोकेगा/जिनका स्थायीभाव बनते जा रहे हैं देशी-विदेशी पूंजीपति।'

बचपन की स्मृतियां ऐसी होती हैं कि ताउम्र वे पीछा नहीं छोड़ती। खट्टी-मीठी वे यादें जीवन के उजास को और उल्लसित बनाती रहती हैं। अपने घर आए मेहमान से बतियाते हुए कवि बचपन की स्मृतियों में खो जाता है और सही ही कह उठता है 'भइया आदमी जीवन में चाहे जितना आगे निकल जाए/उसकी स्मृति में शामिल हो जाएं चाहे ढेर सारी दूसरी बातें/या वह भुला दे बहुत कुछ सायास/फिर भी

नहीं भुला पाता अपना बचपन।' इसी प्रकार पिता के कोमल-कठोर स्पर्श भी यादों में रचे-बसे ही नहीं होते बल्कि गाहे-बगाहे मार्गदर्शक बनकर भी उपस्थित होते रहते हैं। सच, पिता होने के बाद ही पिता के स्थान का एहसास होता है। कवि कहता है ' अब मैं पुकारता हूं अपनी बेटियों को /तो जाने क्यों लगता है/जैसे मुझे ही पुकार रहे हैं पिता/मेरी आवाज़ में समाकर।'

जीवन-चक्र के साथ कुछ चीजों से मनुष्य का रिश्ता इतना गहरा बनता जाता है कि उनका साथ छूटने के बाद भी वे स्मृतियों में स्थायी आवास बना लेती हैं। चाहे वह पुश्तैनी मकान हो या जिन्दगी में शामिल होती जा रही जरूरत की तमाम चीजें जैसे आलमारी, कैंची,पलंग आदि। जितेन्द्र घर के बहाने पिता के श्रम को, उनके सपने को, उनकी अभिलाषा को याद करते हैं ' एक-एक पैसा जोड़कर/अपनी जरूरतों को घटाकर/रात-दिन खटकर बनवाया था पिता ने/सपनों का एक घर/..... हमारी आत्मा बसती थी इस घर में/ पर अब कोई नहीं रहता इसमें/ सब गए अपनी राह/ पिता के सपनों का यह घर/एक खाली मकान है अब।'

लोकतंत्र एक रहस्य है

लोक द्वारा लोक के लिए बनाया गया तंत्र लोक के लिए एक रहस्य ही रहा है सदा-सर्वदा। क्योंकि लोक द्वारा लोक का शासन होने के बावजूद लोक ही सबसे ज्यादा छला गया है लोकतंत्र में। माँ-पिता के वार्तालाप के जरिए कवि ठीक ही कहता है 'प्रेम की तरह लोकतंत्र दिखता है खुला-खुला सा/पर रहस्य है/जब जो चाहे/कभी भाषा से/कभी शक्ति से/कभी भक्ति से/कभी छल, कभी प्रेम से/अपनी सुविधा की व्याख्या रच लेता है/ और काठ के घोड़े-सा लोकतंत्र टुकुर-टुकुर ताकता रह जाता है।' इन दिनों लोकतंत्र स्वार्थतंत्र में तब्दील हो गया है। वह सत्ता और सुविधा के हिसाब से चल रहा है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के गणित से चल रहा है। अमर शहीदों के सपनों का अब कोई मूल्य नहीं। आज के लोकतंत्र का सच बयां करते हुए कवि पुकारता है 'आप भी देखिए/यह कैसी स्वतंत्रता है/कि पूंजीपतियों का सारा कारोबार/चल रहा है उधार पर/बैंक खड़े हैं उनके दरवाजे पर/लेकिन 'होरी' को कोई उधार देने को तैयार नहीं।' आम आदमी इस लोकतंत्र में सचमुच गांव का दक्खिन हो गया है। कहने को लोकतंत्र फल-फूल रहा है, गांव तक विकास की गाड़ी पहुंच रही है, वहां भी खड़ंजे बिछ रहे हैं, सड़कें बन रही हैं, बिजली पहुंच रही है, परन्तु आम आदमी की हालत में कोई खास परिवर्तन नहीं हो पा रहा है। विकास नजर आ रहा है कुछ चमचों, कारकूनों, अफसरों के बंगलों पर, उनकी आलीशान गाड़ियों में।आम आदमी आज भी महज वोटबैंक है। कवि अपने मित्र जगप्रवेश के माध्यम से लोकतंत्र के पहरुओं का असली चेहरा उजागर करता है- 'बात-बात में पता चला/जगप्रवेश विधायक होना चाहते हैं/उन्होंने खूब धन-बल जुटाया है बीच के दिनों में/टिकट का प्रबंध पक्का है/उन्होंने आंकडे इकट्ठा कर लिए हैं जातियों के/उनकी अपनी जाति के वोट हैं ढेर सारे।' यह हमारे लोकतंत्र की विडंबना ही है कि वोट की खातिर इंसान की पहचान महज एक जाति-वोट में तब्दील हो गयी है।सारे सामाजिक नाते जातीय गुणा-गणित से तय होने लगे हैं। इनसे ही रिश्तों के नए प्रमेय गढ़े जाने लगे हैं।

चीजें महज पैसा नहीं होती

रोजमर्रा की जिन्दगी में ऐसी बहुत-सी चीजें होती हैं जिनका इंसान के साथ एक सहज रिश्ता पनप जाता है। वे उसके जीवन में इसलिए मूल्यवान नहीं होती कि वे कीमती होती हैं, न ही इसलिए कि उनका स्थानापन्न कोई नहीं होता। बल्कि इसलिए वजूद रखती हैं कि वे उसके जीवन का सहचर बन चुकी होती हैं। पैसे से उनका मोल नहीं आंका जा सकता। किसी सगे की तरह उनकी जीवन में अनिवार्य उपस्थिति दर्ज हो चुकी होती है। कवि के लिए 'चीजें आती हैं पैसों से/लेकिन वे महज पैसा नहीं होती/एक लम्बा वक्त गुजारा होता है आपने उनके साथ/आपके जीवन में वे होती हैं/किसी सगे की तरह।' इसीलिए उनका जाना महज किसी वस्तु का जाना नहीं होता बल्कि किसी सगे का हमेशा के लिए दूर हो जाना होता है। जीवन में उसके शामिल होने से जो उल्लास आता है, उसके जाने से वह काफ़ूर हो जाता है। कबाड़ी को आलमारी सौंपते हुए कवि अपने दर्द को इन शब्दों में बयां करता है ' हमारा मूल्यवान संभालते-संभालते/ आज बेमोल बिकी वह/कबाड़ी के लिए एक जर्जर टीन की चादर है/उसके लिए शायद उसे होना भी चाहिए इतना ही/वह नहीं हो सकता भाव विह्वल/और हम भी जब खरीद कर लाए थे उसे/तब कहां थी वह स्मृतियों का ऐसा एलबम/जिसमें शामिल हो बेटियों का बचपन/और हम दिया-बाती की भरपूर जवानी।'

घर-गृहस्थी से जुड़ी ऐसी अनेक चीजें होती हैं जिनके होने से ही गृहस्थी बनती है। वे आदमी के किसी न किसी सपने का हिस्सा हुआ करती हैं। जितेन्द्र श्रीवास्तव के लिए 'हमारे लिए तो हर नई चीज/ किसी न किसी सपने का सच होना है/हमारे सपनों में कई जरूरी-जरूरी चीजें हैं/और खरीदी गई चीजों में बसे हैं कुछ पुराने सपने।' अर्थात् कवि भोगवादी संस्कृति ' यूज एण्ड थ्रो कल्चर' के बरअक्स ममत्व और अपनत्व की भावना का पक्षधर है।

प्रेमा पुमर्थो महान

प्रेम वह रसायन है जिसके बारे में कहा गया है कि प्रेमा पुमर्थो महान। जीवन में यही वह तत्व है जो मनुष्यता का मापक है। घृणा का विलोमार्थी यह शब्द ही स्थायी भाव है जगत में जीव का। कहना न होगा, प्रेम के बगैर मानव सामाजिकी की संरचना ही असंभव थी। जितेन्द्र जी तो कहते ही हैं 'अजर-अमर दिखने वाली चीजें रीत जाती हैं एक दिन/धराशायी हो जाते हैं शक्ति के सारे समीकरण/समय की आंच पर गल जाते हैं स्वर्ण प्रमेय/बीत जाता है सब कुछ/बस नहीं बीतते हैं प्रेम के कुछ पदचिह्न।' यह भी कहना होगा कि निश्चय ही वे बड़े भाग्यशाली होते हैं जिन्हें प्रेम का सलीका हासिल हो पाता है, वरना कवि कबीर तो चेता ही गए हैं कि 'पोथी पढि-पढि जग मुआं, पंडित भया न कोय/ढाई आखर प्रेम का ,पढ़ै सो पंडित होय'। वैसे समाज में आजकल यह दिखावे की चीज अधिक हो गया है, सच्चा प्रेम जैसे रीतता जा रहा है। वजह है स्वार्थ, आत्मकेन्द्रीयता, एकाधिकारवादी मनोवृत्ति। कवि सही कहते हैं 'लोग कहते हैं/सृष्टि का आधार है प्रेम/ पर कैसी विडम्बना है कि सबसे कम है/दुनिया में प्रेम का शऊर।'और प्रेम का शऊर न होने का नतीजा है भयंकर अमानवीयता, पशुता। कहा जाता है कि कभी सारे नाते नेह के ही हुआ करते थे, पर आज मनुष्य

इतना स्वार्थान्ध हो गया है उसके सारे नाते स्वार्थ की तुला पर तय होते हैं। इस प्रेम तत्व का स्खलन ही मानव-मन में बनने वाली खाईं की जड़ है। कवि की ये पंक्तियां कितनी सार्थक हैं 'हर रोज बढ़ रही है खाईं/मनुष्य-मनुष्य के बीच/अमीरी-गरीबी के बीच/राष्ट्र-राष्ट्र के दरम्यान/आजकल ऐसे लोग बढ़ते जा रहे हैं/जिनके होने से शर्मिन्दा हैं पशु।'

प्रेम का वह पक्ष भी जितेन्द्र की कविताओं में व्यंजित हुआ है, जो नितांत पारिवारिक है। वह चाहे पिता का कोमल-कठोर स्पर्श हो या माँ की ममता, नानी का दुलार अथवा पत्नी की शेखचिल्ली, जितेन्द्र श्रीवास्तव प्रेम की इबारत को सदैव शुभ्र और उदात्त बनाए रखते हैं। वर्षों बाद घर में आई रौनक के बहाने माँ के उल्लास को वाणी देते कवि कहता है 'आज वही घर सजा है/उसमें गीत-गवनई है/रौनक है चेहरों पर/गज़ब का उत्साह है माँ में/परसों उतारेगी वह बहू/पाँव जमीन पर नहीं हैं उसके/सब खुश हैं उसके उल्लास में।' और, नानी-दादी के स्नेह-सीख का तो दुनिया में कोई तोड़ ही नहीं होता। बड़े दुलार से ये दुनियादारी की ऐसी सीखें दे जाती हैं जैसे घुट्टी में पिला दिया हो। नानी के स्नेह को महसूस करते हुए कवि कहता है 'धीरे से कहती थीं नानी/मिलने से घटती हैं दूरियां/आने-जाने से बढ़ता है प्यार/शरमाने से बचती हैं भावनाएं/चलने से बनती है राह।' ऐसे ही मांसल प्रेम का एक उदाहरण भी देखें जो पत्नी के प्रसंग में है -' तुमने बांध रखा है सिर को तौलिए से/निकाल रही हो झाले कोने-अंतरे से/इन्हीं में से एक-दो आ गिरे हैं तौलिए पर/लटक रहे हैं तुम्हारे गालों पर/ऐसे में तुम अजब-गज़ब दिखती हो/मेरे टोकने पर हँस देती हो/और सचमुच बदल जाता है मेरी आँखों का रंग/मुझे महसूस होता है/जैसे सृष्टि के सारे फूलों का रंग/उतर आया है तुम्हारी हंसी में।'

ज़बाब कौन देगा

जितेन्द्र श्रीवास्तव की काव्य परिधि में ऐसे अनेक प्रश्न बार-बार उठते हैं जो मनुष्यता का नया प्रमेय गढ़ने के लिए जरूरी हैं। उनसे दो-चार हुए बगैर समकालीन समाज की कोई मुकम्मल तस्वीर बन ही नहीं सकती। किसान-मजदूर हों या उपेक्षित-बहिष्कृत समाज हो, फुटपाथ पर सपने बेचने वाली संजना तिवारी हों, आचरण का नया पाठ पढ़ाती रामदुलारी बाई हों या प्रतिरोध का सौंदर्यशास्त्र रचता तमकुही कोठी का मैदान अथवा कबीर या प्रेमचन्द, ये सब अपने साथ ऐसे सवाल लेकर खड़े होते हैं जो हमारे समय-समाज की अधिरचना को चुनौती देते हैं। रामदुलारी बाई दुनिया की आधी आबादी के हक और स्वाभिमान को लेकर खड़ी है। कवि उन्हें एक ऐसे योद्धा की तरह याद करता है जिसने सामाजिक संरचना की चूलें हिला दी- 'रामदुलारी ने वर्षों पहले/ जो पाठ पढ़ाया था अपने पति को/उसका सुख भोग रही हैं/गांव की नई पीढ़ी की स्त्रियां/उनमें गहरी कृतज्ञता है रामदुलारी के लिए/वे उन्हें 'मर्द मारन' नहीं/ योद्धा की तरह याद करती हैं।'

जितेन्द्र प्रेम के भी कवि हैं और प्रतिरोध के भी। कोई भी व्यक्ति जो मनुजता का पक्षधर होगा वह प्रतिरोध के ताप के बगैर मनुष्यधर्मी हो ही नहीं सकता, होगा तो परम्परापोषी, यथास्थितिवादी होगा। कवि

हाशिए पर खड़े समाज की आवाज को सुनता है तो उसे जैसे सदियों की चुप्पी के टूटने की अनुगूंज सुनाई पड़ती है, अनंतकाल से चली आ रही गलतियों पर अंतिम ब्रेक लगता दीखता है, वह नागरिक समाज से उनके साथ होने की अपील करता है ' वे हमसे पूछना नहीं/ अपने हक का भूगोल स्वयं बताना चाहते हैं/..... वे अनंतकाल से चलती चली आ रही/ गलतियों पर अंतिम ब्रेक लगाना चाहते हैं/..... सचमुच वे योद्धा हैं नई सदी के/..... निश्चय ही हमें इस संग्राम में/ होना चाहिए उनके साथ।' आज भी उन्हें प्रेमचन्द के करोड़ों 'गोबर' दिखते हैं जो 'जी रहे हैं जूठन पर/ उनके हिस्से में फटाकोट और फटा जूता भी नहीं है।' आजादी जिसे दशकों पहले धूमिल ने तीन थके रंगों के रूप में देखा था, आज इक्कीसवीं सदी के लगभग एक-चौथाई समय के बाद भी कारोबारियों के दरवाजे पर चाकरी करती दिख रही है। उसमें आम आदमी का अक्स नज़र ही नहीं आता। यह आजादी है केवल पूंजीपतियों , रईसों, नेताओं, अभिनेताओं के लिए। लोकतंत्र का चौथा खंभा भी इन्हीं के इर्द-गिर्द मंडराता रहता है, उसे आम जनता की कोई फ़िक्र नहीं। इस आजादी को प्रश्नांकित करते हुए कवि कहता है ' मीडिया चैनलों के पास ख़बर है/ प्रधानमंत्री के जुकाम की/अभिनेताओं के बदहज़मी की/ पर उनके पास बिलकुल समय नहीं है/ किसानों मजूरों के लिए।' आप इस पर भी कवि से यकीनन सहमत हो सकते हैं कि ' सत्ताएं तिजारत कर रही हैं संवेदना की/ अपने जन्म से/ उनसे मनुष्यता की उम्मीद करना/उन्हें शर्मिन्दा करना है।' इस घोर भोगवादी दौर में सब कुछ बाजारीकरण की भेंट चढ़ता जा रहा है हमारा सच भी, ईमान भी, संवेदना भी। बाजार संस्कृति ने सारी चीजों को ऐसे हड़प लिया है कि जन सरोकारों के अभिव्यक्ति के स्थल भी, मंच भी कहां बचे हैं। जितेन्द्र अपने शहर के तमकुही कोठी के मैदान की व्यथा बताते हुए जैसे पूरे हिन्दुस्तान के ऐसे स्थलों की दास्तां सुनाते हैं, जहां कभी रचा जाता था प्रतिरोध का सौंदर्यशास्त्र। वे कहते हैं ' समय बदलने का/ एक जीवन्त प्रतीक था तमकुही कोठी का मैदान/ लेकिन समय फिर बदल गया/ सामंतों ने फिर चोला बदल लिया/ अब नामोनिशान तक नहीं है मैदान का/वहां कोठियां हैं, फ्लैट्स हैं।'

कवि आशावादी है विचलन-विपथन के इस दौर में भी उसे उम्मीद की किरण दिखती है। फुटपाथ पर सपने बेचती संजना तिवारी के रूप में एक आश दिखती है। उसे यकीन है कि पुस्तक संस्कृति की प्रवृत्ति जो कि घोर सांस्कृतिक पराभव के इस दौर में लुप्त होती जा रही है, यदि उसे बचाया जा सके तो कहीं संभव है कि कुछ फर्क पड़े भले ही दाल में नमक के समान मात्र। इसीलिए वह अपील करता है 'दुनिया को देखिए संजना तिवारी की निगाह से/ जो इस बेहद बिकाऊ समय में/अब कम-कम बिकने वाली/ सपनों से भरी उन इबारतों को बेचती हैं/ जो फ़र्क करना सिखाती हैं/ सपनों के सौदागरों और सर्जकों के बीच/..... संजना तिवारी महज एक नाम नहीं/ तेजी से लुप्त हो रही एक प्रवृत्ति हैं/ जिसका बचना बहुत जरूरी है।'

(**परिचय:** लेखक राष्ट्रसंत तुकड़ोजी महाराज नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर, महाराष्ट्र के हिंदी विभाग में सहायक प्रोफ़ेसर पद पर कार्यरत हैं।)

सामाजिक व्यवस्था पर चोट करती कहानियाँ

ऋचा द्विवेदी
संपर्क : 08755192890

संदीप अवस्थी कोई नया नाम नहीं है। उन्हें हम हंस, नया ज्ञानोदय, वर्तमान साहित्य, समकालीन भारतीय साहित्य आदि प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में पढ़ते रहे हैं। उनकी लेखनी आज की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और धार्मिक व्यवस्था पर जिस त्वरा व तल्खी के साथ कटाक्ष करती हुई चलती है, वह अद्भुत है। आज की प्रशासनिक व्यवस्था पर भी प्रहार करने से वह नहीं चूकते, बल्कि उसका एक वीभत्स स्वरूप हमारे सामने लाकर उपस्थित कर देते हैं। उनकी कहानियों में हम कई बार संवेदनशीलता को तार-तार होते देख सकते हैं। रोंगटे खड़े कर देने वाली रोमांचकारी त्रासद स्थितियाँ, अब आगे क्या होगा? जैसे संशयात्मक प्रश्न संदीप अवस्थी की रचनाशीलता की ताकत है। यही कारण है, अवस्थी की कहानियाँ कहीं न कहीं पाठक के अन्तर्मन पर गहरी छाप छोड़ने में सफल हो जाती है। संदीप अवस्थी की कलम समाज से बेबाक, बेख़ौफ बात करती हुई, अहिर्निष प्रहार करती हुई निर्भीकता से चलती है। 'कलेक्टर साहब तथा अन्य कहानियाँ' उनका ऐसा ही कहानी संग्रह है।

'द आर्टिस्ट' कहानी में आप कल्पना कर सकते हैं कि अपने फन में कोई कलाकार किस तरह से पूरी निष्ठा और लगन से समर्पित है। लेकिन यह कलाकार बहुत ही अलहदा है। वह बहुत बड़ा विशेषज्ञ है, सिद्धहस्त है। कहानी पढ़ते हुए कई बार रोंगटे खड़े हो जाते हैं और आप रोमांच, भय, विद्रूपता से भर जाते हैं। 'सत्यं ज्ञानं अनंत ब्रह्म, जीवो ब्रह्मैव नापर' से प्रेरित वह अपने कार्य को बड़ी लगन से करता है। एक स्थान पर वह कहता है- "...मुझसे मुहब्बत भले ही मत कीजिए, पर नफ़रत भी मत कीजिए।" वह कुछ बड़े नामी लोगों को भी अपनी मोक्षदायिनी सूची में सम्मिलित करता हुआ स्वयं के लिए कहता है- "...क्या ?....मैं संत हूँ? भला आदमी हूँ? पागल हो क्या यार?...."

'कलेक्टर साहब' में जिस प्रकार सुमित, सोहनलाल त्रिवेदी की बेटी निकिता से अपनी पहचान छिपाकर विवाह बंधन में बंध जाते हैं, वहीं उनके पिता द्वारा वह बेनकाब भी होते हैं- "...हमार तो यही पेशा है मोचीगिरी का।

"निकिता के आगे धरती घूमने लगी, आसमाँ आग बरसाने लगा...। "निकिता सुमित से कहती है - "....सुमित जाटव की जगह सुमित गौड़, एक ब्राह्मण का मुखौटा पहन रखा था। ....और ऐसे व्यक्ति की

जिसकी खुद की कोई पहचान नहीं।.... तुमको स्वयं अपनी जाति पर शर्म है तभी अपनी असली जाति छुपाकर घूमते हो।"

यह मनुष्य के सामने छली नारी खड़ी थी। सुमित अपराध बोध से भरकर कहता है- " निकिता, मैं शर्मिंदा हूँ। मुझे माफ़ कर दो। "

आखिर में कलेक्टर साहब द्वारा कॉलेज के वार्षिकोत्सव में आरक्षण की वैशाखी त्यागने संबंधी शपथ पत्र का निर्णय सराहनीय और स्वागतोन्मुख है।

'भटकल' कहानी में ज़ेहाद के नाम पर किस तरह से नौकरी की तलाश में सुदूरवर्ती युवा पीढ़ी को आतंकवादी बनाया जा रहा है, इसका बखूबी बेखौफ़ वर्णन किया गया है।

कहानी 'गुनहगार' में लेखक ने बड़े ही मनोयोग से आज की युवा पीढ़ी को दिखाया है कि किस तरह से आज के युवा प्रेम के नाम पर लड़कियों को अपनी जरूरत तक इस्तेमाल करते हैं और मरने पर मजबूर कर देते हैं। उस पर भी कहते हैं -"...ज़िंदगी शह और मात है। वह मात देती उससे पहले मैंने उसे मात दे दी।"

'निकिता कहाँ हो' कहानी में लेखक ने दिखाया है कि एक मध्यमवर्गीय स्त्री जो अपने जीवन-संघर्ष से परेशान हो गई थी, और एक युवा लड़की जो कुछ लड़कों के द्वारा ब्लैकमेल से परेशान थी, आत्महत्या करने जा रही होती हैं, जिन्हें नियति एक दूसरे की ताकत बनाती है। वहीं एक कुत्ता आती हुई ट्रेन को देखकर उन्हें भौंक-भौंककर जैसे वहाँ से हटने को बाध्य करता है। और तीनों एक साथ मिलकर अपना आगे का सफ़र तय करते हैं।

कहानी 'नीली चिड़िया' में फोटोग्राफी की शौकीन नमिता के कैमरे में एक दिन अचानक एक युवा लड़की अपनी बालकनी से कूदने का प्रयास करती हुई नज़र आ जाती है। जिसे देख वह घबराकर उसे ऐसा न करने के लिए दुआ करती है। खुले विचारों की नमिता आखिर उस लड़के का पता भी लगा लेती है, जिसकी वजह से वह आत्महत्या का प्रयास करती है। लेकिन, बाद में, उसी लड़के के माध्यम से नमिता को पता चलता है कि वह लड़की उस लड़के से चार लाख रुपए लेकर अपने नए ब्वायफ्रैंड के साथ चली गई। आज के परिवेश का युवा पीढ़ी पर हो रहे कुप्रभाव का यथार्थ चित्रण है।

'गर्ल्स हॉस्टल' कहानी में लेखक ने विश्वविद्यालय हॉस्टल में बच्चियों के साथ कैसा व्यवहार होता है, इसका सजीव चित्रण किया है। जहाँ "वार्डन, प्रोफेसर से लेकर रसोइया, वॉचमैन, सर्विसमैन, ड्राइवर जब तब जहाँ जो लड़की मिलती उसके शोषण पर उतर आते थे।" रचनाकार को गर्ल्स हॉस्टल के नंगा सच को उजागर करने में पूर्ण सफलता मिली है।

कहानी 'मुझे चाँद चाहिए' में एक वरिष्ठ लेखक किस तरह नवोदित महिला रचनाकार को एक बड़ी रचनाकार बनाने का लालच देकर अपनी काम पिपासा को तृप्त करते हैं। समाज में प्रतिष्ठित इस वरिष्ठ लेखक का कोई कुछ बिगाड़ नहीं पाता। अनवरत उसका हर नयी रचनाकार के साथ यही क्रम जारी रहता है।

'कत्ल' कहानी में एक ईमानदार ए. एस. पी. को अपनी ईमानदारी की कीमत अपनी जान देकर चुकानी पड़ती है। ऐसी है हमारी सामाजिक, राजनीतिक और प्रशासनिक व्यवस्था। कितनी घृणास्पद, कितनी विद्रूपता है। जो मंचों से बड़ी-बड़ी बातें तो करते हैं, लेकिन उनके पीछे का सच कितना घिनौना है।

आज के सामाजिक, राजनीतिक, प्रशासनिक वातावरण के सच को उजागर करती संदीप अवस्थी कहानी साहित्य जगत में अपनी विशिष्ट छाप छोड़ती दिखाई देती हैं। कितनी प्रांजलता है, पर विद्रूपता को साथ लिए हुए।

कहानी 'हस्बैंड स्वैपिंग' आज के सामाजिक पारिवारिक रिश्तों को अलग ही ढंग से दिखाती है। 'लिव इन' कहानी में लेखक आज के अत्याधुनिक परिवेश को रेखांकित करने में पूर्ण सफल रहा है। आज की युवा पीढ़ी के महानगरीय जीवन के यथार्थ को दर्शाने में लेखक को पूर्णतः सफलता मिली है। जहाँ- " जब मर्जी होगी मैं तुमसे अलग हो जाऊँगी" - जैसे कथन से दीपाली की उच्छृंखलता का पता चलता है।

संदीप की अधिकांश कहानियों से लगता है कि अब वह समय दूर नहीं जब परिवार भी किसी परिवारवाद के रूप में हमारे सामने आएगा। जहाँ परिवार को कैसे बचाया जाय, यह मूल विषय होगा। अवस्थी के लेखन शैली में एक अलग प्रकार का ही नयापन है। कहानी संग्रह उबाऊ नहीं है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि संदीप अवस्थी की कहानियाँ रोमांच, थ्रिलर, सस्पेंस से शुरू होकर आज की भटकती युवा पीढ़ी, अत्याधुनिकता के नाम पर महिला पात्रों की उच्छृंखलता, सामाजिक, राजनैतिक और प्रशासनिक व्यवस्था पर प्रश्न चिन्ह एवं चोट करती हुई विमर्श की नयी दिशाएँ खोलने में पूर्णतः सफल हैं।

कहानी संग्रह- कलेक्टर साहब तथा अन्य कहानियाँ
लेखक- संदीप अवस्थी
पहला संस्करण -2018. पृ. सं.- 132
मूल्य -₹ 260/- प्रकाशक- अयन प्रकाश, नई दिल्ली

(**परिचय :** लेखिका युवा समीक्षक हैं, वर्तमान में महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के क्षेत्रीय केंद्र इलाहाबाद से संबद्ध होकर बतौर अतिथि प्राध्यापक अध्यापन कार्य कर रही हैं।)

लौटने की चाह में बचे रहने की उम्मीद

राहुल
संपर्क- 8669037004

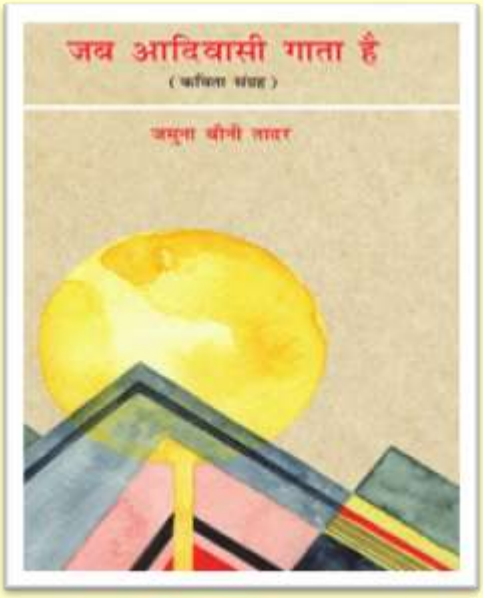

प्रकृति की संवेदनात्मक अनुभूति जब अपनी निरन्तरता और अतीतजीवी जीवन-मीमांसा के साथ शब्दों में उतरती है तो वह कविता के रूप में प्रस्फुटित होती है। ऐसी कविताएं किसी विध्वंस क्रांति/प्रतिक्रांति की बात नहीं करती और न ही प्रतिरोध की, बल्कि ये कविताएं विध्वंस के बाद उग आई उस दूब की तरह हैं जो बार-बार उखाड़े जाने के बाद भी उग आती हैं, अपने बचे रहने की अदम्य इच्छा शक्ति के साथ। दूब की जीवंतता यह बतलाती है कि सब कुछ ख़त्म नहीं हुआ है, अभी भी बहुत कुछ बाकी है, बहुत कुछ शेष है जिसे सहेजकर रखा जाना मनुष्यता की बेहतरी के लिए जरूरी है।

जमुना बीनी तादर का कविता संग्रह 'जब आदिवासी गाता है' इसी भाव बोध के धरातल का उत्स है। प्रकृति के साथ सहजीवता का संबंध और बचे रहने की उम्मीद इस कविता संग्रह का केंद्रीय भाव है। अतीत का मोह इतना कि वर्तमान का सुविधाभोगी जीवन नीरस लगने लगता है, मन बार-बार बचपन की यात्रा पर निकलने की छटपटाहट के साथ उसे एक बार फिर से पाना चाहता है। इस कविता संग्रह की पहली कविता इसी हवाले से रची गई है। रची भी क्या गई है, युवा कवयित्री जमुना बीनी स्मृतियों में उतरकर विस्मृति होते 'जीवन दर्शन' को एक बार फिर से आवाज देती हैं। 'वे अलसाये दिन' भी क्या दिन थे जहां संपन्नता की अभावग्रतता के साथ प्रसन्नता की कोई कमी न थी। वे दिन तो सपने बुनने के दिन थे। प्रकृति की नैसर्गिक सुंदरता हर किसी में व्याप्त थी और हर कोई अपनी इसी नैसर्गिकता के सहारे अपने सुंदरतम संसार की कल्पना करता। *"धान की/ हरी-हरी बालियों के बीच / रंग बिरंगी तितलियाँ/ आँख मिचौली खेलतीं/ मेरा अल्हड़ मन भी/ कोई रंगीन सपने बुनता।" वह दुनिया ऐसी थी जहां कोई प्रतिद्वंद्विता न थी, एक दूसरे के लिए प्रतिबद्धता, प्रेम और परस्पर सहयोग की भावना थी। "बांस के बने/इस घर में/ चौदह अंगीठियाँ हैं /... इन अंगीठियों के/ अगल-बगल / पूरा परिवार बैठकर दिन भर की/ किस्से-कहानियाँ/ एक दूसरे को सुनाता/ जल्द ही/ खा पीकर/ सो जाते सब/ कल फिर/मुँह अंधेरे सबको/ खेतों के लिए /निकलना है।"* बतकही के अंदाज में व्यक्त अतीत वर्तमान को उलाहना देता है कि कैसे कुछ टूट गया और बहुत कुछ

छूट गया। राजेश जोशी के शब्दों में कहें तो 'टूटने के क्रम में टूट चुका है, बहुत कुछ-बहुत कुछ।' अब कोई नहीं रहता इन बांस के घरों में, अब नहीं जलती एक साथ इतनी अंगीठियाँ कि घुप्प अंधेरे को उजास में बदल दें। एक रेखीय विकास मॉडल ने बहुत कुछ छीन लिया है हमारे जीवन से। अब न बतकही है, न नृत्य है, न गीत है, न संगीत है और न ही सपनों की वह रंग-बिरंगी दुनिया। एक ऐसी दुनिया जहां न ही एकरसता थी और न ही एकाकीपन। तितलियाँ ख़्वाब न थी, बल्कि सब कुछ तितलियों जैसा ही यथार्थ था।

"अब हमारा घर/ बनाता है कंक्रीट से/अब हम नहीं/ सोते बहुत जल्द/रात भर/ टी. वी., मोबाइल फोन/ या लैपटॉप में डूबे रहते हैं/ हमें जोड़े रखता है/ एस. एम. एस., फेसबुक/ और व्हाट्सएप्प अब।" इस संग्रह की अधिकांश कविताएं जीवन के रागात्मक बोध को व्यक्त करती हैं जो एकात्म होती दुनिया में कहीं खो सी गई हैं। अति भोगवादी हो चले समाज में जब व्यक्ति का टूटन एवं बिखराव इस कदर होता है कि वह अपने आपको अकेला पाता है, उसे किसी का सहारा नहीं मिलता और अपनेपन की क्षोभ में वह अतीत की डोर थामें स्मृतियों के सहारे उस जीवन-यथार्थ पर निकल जाना चाहता है जहां सब कुछ सबके लिए है। बचे रहने की उम्मीद लिए वह लौट जाना चाहता है उन्हीं जगहों पर जहां से शुरू की थी उसने अपनी जीवन यात्रा। 'बचे रहने की उम्मीद' शीर्षक से लिखी गई कविता में कवयित्री ने आदिवासी जीवन की व्यथा को संवेदनात्मक अभिव्यक्ति दी है। *"तुम्हारे/ आदिवासी-बोध ने बतलाया/ तुम्हें पहाड़ों/ और/ जंगलों की ओर/ भागना चाहिए/ वहाँ ऊपर/ दुश्मनों से/ महफ़ूज रहते आए/ अनगिनत काल से। ... तुम आश्वस्त होते हो/ कि /तुम्हारे लोग तुम्हारे बाद भी जीयेंगे/ तुमसे अधिक जीयेंगे/ संसार को बतलाने/ तुम्हारी अद्भुत-अनोखी संस्कृति/ आदिवासी संस्कृति के बारे में"* लौटना महज अपनी खुशी के लिए नहीं है बल्कि दीर्घजीविता के दर्शन को भावी पीढ़ी को सौपना है। आने वाली पीढ़ी को बताना है अपनी अद्भुत-अनोखी संस्कृति के बारे में कि कैसे किताबों के काले अक्षर उन्हें असभ्य एवं बर्बर करार देने पर आमादा हैं। गाँव को जिस तरह से

'ग्लोबल गाँव' में बदल देना चाहते हैं उसकी आधारशिला आदिवासियों के प्राकृतिक संसाधनों की लूट पर रखी गई है। विकास और ग्लोबल गाँव की अवधारणा के तहत ही इन्हें सभ्यता का पाठ पढ़ाया जा रहा है और विकास के नाम पर जल, जंगल जमीन की लूट मची हुई है। जमुना बीनी अपनी कविताओं में इसके दोनों पक्षों की बारीक पड़ताल करती हैं। 'एक रोचक कथा' शीर्षक कविता के माध्यम से वह लूट की रोचक कथा बयां करती हैं कि कैसे आदिवासी इनके लालच में फँसता है और मुआवज़े के नाम पर बाद में अपने आपको ठगा महसूस करता है। *"जमीन अधिग्रहण के बदले/ मुआवजा का/ लालच दिखाई/और/ किसानों ने/ पहली दफा/ मुआवजे के/ पैसों का/ स्वाद चखा/ उनके जीभ को/ यह जायका/ बहुत भाया/फिर/ होना क्या था/ किसानों की/ किसानी छूट गई/ ... कितनी रोचक/ और/ मनोरंजक है/ किसानी से/ गुंडागर्दी के/ रूपांतरण की यह कथा।"* कवयित्री इस 'रोचक कथा' के माध्यम से शोषण को व्यक्त

करती हैं। पूरे विश्व में अपने वैयक्तिक अस्मिता को बचाने के पक्ष में रहकर आदिवासी जिस अस्मिता के लिए संघर्ष कर रहा है वह आज ख़तरे में है।

जमुना बीनी की कविताओं में जो बार-बार लौटने का आग्रह है वह यथार्थ से पलायन नहीं है, बल्कि इसे नंग यथार्थ से मुठभेड़ के रूप में देखा जाना चाहिए, जिसे तथाकथित विकास की एक खास तरह की पट्टी से ढक दिया गया है। उस पट्टी को हटाने के लिए कवयित्री को लौटना जरूरी लगता है। इसलिए वह बार-बार लौटती भी हैं। मिट्टी का नेह कुछ ऐसा कि वह वापसी की राह दिखाती है। *"नातों-रिश्तों के/ जहान में/ एक नाता /और भी है/ नाता/ मिट्टी का।"* कवयित्री का जो नाता है, अपनी मिट्टी से है, अपने देस से है, उसकी सुद्बुध लेने वह लौटना चाहती हैं। अपनी मिट्टी की आत्मीयता उन्हें बिछुड़ने नहीं देती, बल्कि वापस बुलाती है- *"और रिश्तों के/ टूटन में/ जो दर्द होता है/ मिट्टी से/ उखड़ने का/ दर्द भी/ बहुत तेज होता है।"* विस्थापन का दर्द अस्तित्व के साथ ही परंपरागत ज्ञान एवं भाषाई अस्मिता पर भी प्रश्न चिन्ह लगाता है। वर्तमान समाज के नव मध्यवर्गीय युवक अपनी तटस्थता की नीति एवं उपभोग की जीवन पद्धति में मग्न है। भूमंडलीकरण के इस दौर में आदिवासी समाज जो परंपरागत जीवन शैली जी रहा है , उनके लिए नित नए विस्थापन की नीति राज्य सरकारें सांम्राज्यवादी ताकतों के साथ मिलकर बुन रही हैं। आदिवासियों का विस्थापन केवल जल, जंगल, जमीन का विस्थापन नहीं, बल्कि वह अपनी भाषा से, अपनी संस्कृति से, अपने स्वाद से एवं अपने जीवन-मूल्यों से भी विस्थापित हैं। 'जब आदिवासी गाता है' शीर्षक से लिखी गई कविता आदिवासी जीवन का निचोड़ बताने का सामर्थ्य रखती है कि कैसे आदिवासी समाज पर अज्ञानी, असभ्य, मूर्ख, भावनाओं एवं संवेदनाओं को व्यक्त न होने वाली भाषा का तोहमत लगाया जाता है। *"विलुप्त होती/ इस भाषा पर/ अक्सर सपाटबयानी का/ आरोप लगा। माखौल/ उड़ाते रहे/ कि/ इस भाषा की/ वाक्य-रचना कमजोर/ और/ व्याकरण सीमित है। इसलिए/ जीवन की/मूलभूत जरूरतों/ और/ मन के/ सरल भाव ही/ इसमें/ अभिव्यंजित हो पाती हैं/ जीवन की जटिलताएँ/और/मन के द्वंद्व नहीं।"* यह जो आरोप है, वह अपने को सुपर बताने के तहत लगाए गए हैं। निजी संपत्ति ने जो विकार पैदा किए वह भाषा में भी दिखता है।

आदिवासी जीवन उद्दाम जीवन है, उसमें जीवन की जटिलता नहीं है और न ही किसी प्रकार का द्वंद्व है, इसलिए भाषा सहज एवं सरल है। भाषा का सहज एवं सरल होना यह बतलाता है कि जीवन कितना सरल है। दुरूह जीवन बोध वाले समाजों में भाषा भी दुरुह एवं कठिन होती है। अपने को सभ्य एवं आधुनिकतम कहने वाला समाज अपनी भाषा के तर्कजाल से अपनी कमियों को ढकने का काम करते हुए आदिवासी समाज का दुष्प्रचार करता है। *"इस भाषा ने/ कभी कुतर्क/नहीं जाना/और/ सभ्यों की भाषा/ तर्कजाल से/ भरी है।"* भाषा का सवाल अस्मिता का सवाल है। अपनी भाषा में अपनी भावनाओं को न व्यक्त कर पाना सबसे दुखदायी है। *'युवा अरुणाचली'* कविता इस बात की गवाही देती है कि कैसे भाषा

का साम्राज्य खड़ा किया जाता है और एक संस्कृति को भाषा के माध्यम से नष्ट किया जा सकता है। *"युवा अरुणाचली/ अब नहीं बोलते/ अपनी बोली"* भाषा का मरना एक इंसान के मरने से कहीं ज्यादा खतरनाक है। भाषा और ताकत का ही खेल ही कि हम दूसरे भाषा-भाषी नायक-नायिकाओं को नहीं जानते। 'तथाकथित' शीर्षक कविता में कवयित्री की यह शिकायत जायज़ भी लगती है। 'देहात की याद', 'नदी के दो पाट', 'सुनहरा भविष्य', 'फुरसत', 'पहाड़', 'नाजुक तार', 'माँ', 'मिथुन' 'वे और हम', 'चाँद का कराह', 'लौट आओ' आदि कविताएं लौटने की इच्छा लिए वहाँ लौटना चाहती हैं जहाँ नीला आकाश धूसर नहीं दिखता, जहाँ नदियां गाती हैं और जहाँ जंगलों में अकेले में भी डर नहीं लगता। यह दीगर बात है कि लौटने की यह चाह पूरी नहीं होती और व्यक्ति नदी का दो पाट होकर रह जाता है। यह जरूर है कि लौटना उसी रूप में नहीं हो पाता जिस रूप में वह लौटना चाहता है। वह अपनी बोली-भाषा में लौटना चाहता है, अपने स्वाद में लौटना चाहता है। अपने ख़्वाब में लौटना चाहता है, जहां जीवन रागिनियाँ सप्तम स्वर के साथ मिलकर सब कुछ संगीतमय बना देती हैं जहां उसका बोलना ही गीत बन जाता है। वह हर उन जगहों में लौटना चाहता है जहां अब भी बाकी है जीवन जीने की जिजीविषा। नदियां, पहाड़ और जंगल उसे वापस बुलाते हैं।

जमुना बीनी तादर का यह कविता संग्रह 'जब आदिवासी गाता है' विषय वैशिष्ट्य के साथ सहज रूप में अभिव्यक्त हुआ है। संवेदना से सराबोर युवा कवयित्री की भाषा में एक प्रवाह है, जो भावों को सहज ही अभिव्यक्त करता है। एक ऐसी भाषा जिसे कवयित्री ने सप्रेम ओढ़ा है, ऐसी भाषा जिसका सच्चे अर्थों में नाभिनाल से कोई संबंध नहीं है। जमुना की कुछ कविताओं में संवाद की अधिकता है और कुछ में विवरण। ऐसा जान पड़ता है कि अरुणाचली कवयित्री का अन्तर्मन अंत:संचार कर संवाद करता है जो कविताओं में प्रतिध्वनित है। संचार के आधुनिक तकनीक के सहारे भी संवादहीनता का यह दौर समाप्त नहीं होता बल्कि बढ़ता ही जा रहा है तभी तो प्रकृति की तरह उद्दाम मन ऐसे में प्रकृति का साहचर्य ढूंढता है। वह लौट जाना चाहता है अतीत के उन्हीं पगडंडियों पर जिस पर चलकर कंक्रीट के जंगल तक का सफर तय किया है। मन के सांकल को उद्दाम प्रकृति हौले से छू भर देती है और यह बावरा मन अप्रतिम प्रकृति की ओर लौट जाने को बेचैन हो उठता है।

पुस्तक परिचय: जब आदिवासी गाता है (कविता संग्रह)/ कवयित्री- जमुना बीनी तादर
प्रकाशक- परिंदे प्रकाशन, नई दिल्ली / **प्रथम संस्करण-** 2018, मूल्य- ₹ 200/-

(**लेखकीय परिचय :** लेखक युवा समीक्षक हैं। डॉ. राहुल ने लतीफों/ जोक्स एवं लोक-साहित्य का जेंडरगत दृष्टि से विशेष अध्ययन किया है। वर्तमान में वह लोक-साहित्य से संबद्ध होकर कई महत्त्वपूर्ण विषयों पर स्वतंत्र लेखन कर रहे हैं।)

पूर्वोत्तर भारत के विविध रंग : कुमार गौरव मिश्र

अरुणाचल प्रदेश

असम

मणिपुर

नागालैंड

मेघालय

मिजोरम

त्रिपुरा

सिक्किम

'कंचनजंघा' संबंधी नियम व शर्तें

रचना आमंत्रण

1. भाषा, साहित्य, कला एवं संस्कृति से संबद्ध विषय विधागत वैविध्यता के साथ स्वीकृत किए जाएंगे।
2. अपनी रचनाएँ यूनीकोड Mangal -12 अथवा Kokila-16 फॉन्ट (हिंदी) में ही प्रेषित करें।
3. शोध-पत्र से संबंधित प्रपत्रों में संदर्भ-ग्रंथ APA पद्धति में स्वीकार्य होगा।
4. अपनी रचनाओं/लेखों को प्रेषित करने अथवा किसी भी प्रकार के पत्राचार हेतु निम्नलिखित ईमेल पर संपर्क करें –kanchanjanghapatrika@gmail.com

संबंधित को संबोधित

इस उपक्रम से संबद्ध सभी पद अवैतनिक हैं। जर्नल में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखक के अपने हैं, इससे संपादक एवं संपादक मण्डल की सहमति/असहमति अनिवार्य नहीं है। रचना की मौलिकता संबंधी किसी भी प्रकार के विवाद एवं चुनौती हेतु लेखक स्वयं उत्तरदायी होगा। रचना चयन का अंतिम अधिकार संपादक एवं संपादन समिति के पास सुरक्षित है। इस जर्नल से संबंधित किसी भी प्रकार के विवाद का न्यायिक स्थल सिक्किम होगा।

विशेष आभार

इस अंक का कवर पृष्ठ चर्चित कवि एवं चित्रकार कुंवर रवीन्द्र और अंतिम पृष्ठ डॉ. कुमार गौरव मिश्र द्वारा डिजाइन किया गया है।